हिम्मत है !
किरण बेदी
संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण
बंधन से मुक्ति व
गांधीवादी तरीका : यदि मैं पुलिस-कमिश्नर होती....

हिम्मत है!

संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

eISBN: 978-81-2882-237-7

प्रकाशक: डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II
नई दिल्ली-110020
फोन: 011-40712100, 41611861
फैक्स: 011-41611866
ई-मेल: ebooks@dpb.in
वेबसाइट: www.diamondbook.in
संस्करण: 2017
हिम्मत है!
लेखक: किरण बेदी

मेरी माँ **प्रेम पेशावरिया**
तथा
पिता **प्रकाश पेशावरिया**
के नाम
जिनके बिना मैं कुछ नहीं होती
संभवत: आजीवन दूसरों पर निर्भर बनी रहती
यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो ईश्वर से यही
प्रार्थना है कि वही फिर से मेरे माता-पिता बनें!

प्रस्तावना

परिवर्तन एक नियम है, वृद्धि वैकल्पिक है : बुद्धिमत्तापूर्वक चुनाव करें।

मैंने बहुत पहले कहीं ये पंक्तियाँ पढ़ी थीं और इन्हें कभी नहीं भूली। मैंने पूरी सजगता से, इसमें छिपे संदेश का अभ्यास किया है।

जिंदगी निरंतर आगे बढ़ती रहती है। मेरी पुलिस सेवा ने विस्तृत रूप में मेरे 'जनहित कार्य' के लिए राह बना दी। अब, सेवानिवृत्ति के पश्चात्; मैंने यात्राएँ कीं, लेखन पर ध्यान दिया, रेडियो कार्यक्रम प्रस्तुत किया, एक टी.वी. शो की मेजबानी की, वक्ता के रूप में सामने आई, कल्याणकारी कामों के लिए आवाज़ उठाई, अपनी गैर.लाभकारी संस्थाओं को फलते.फूलते देखा और इसके सिवा काफी कुछ किया।

दैवीय कृपा से, मैं अपने समय का सदुपयोग करना जानती हूँ, सभी विकल्प मेरे पास हैं या परिवर्तन की संभावनाएं भी। मैंने अपनी ही गति से, एक और यात्रा आरंभ करने का निर्णय लिया है, जिसमें मैं पहले से भी कहीं अधिक विकास चाहती हूँ.ताकि एक परिवर्तन ला सकूँ; फिर चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा।

मैंने 'विपश्यना' ध्यान से सीखा कि कुछ भी स्थायी नहीं है। जो भी है, वर्तमान ही है। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आने को है। मुझे यहीं ज्यादा से ज्यादा और आज ही करना है।

अत: मैं उन सभी को धन्यवाद देना चाहती हूँ जिन्होंने मेरे जीवन को निरंतर शिक्षण का एक स्रोत बनाया, वे भी जिन्होंने इसे मेरे लिए कठिन बनाया उनके बिना मैं वृद्धि के लिए कुछ सीख नहीं सकती थी। मेरे मन में किसी के लिए भी नकारात्मकता का भाव नहीं रहा तथा उन सभी से क्षमा चाहती हूँ, जिन्हें मैंने किसी भी रूप में चोट पहुँचाई हो।

मैंने इस पुस्तक को आधुनिक बनाया है। उद्देश्य यही है कि भारतीय पुलिस सेवा की पहली महिला अधिकारी का इतिहास, उसी के शब्दों में सब तक पहुँच सके।

क्योंकि एक दिन मैं इतिहास बनूँगी...

—किरण बेदी

कृतज्ञता ज्ञापन

‘हिम्मत है!’ के परिवर्द्धित व संशोधित संस्करण में, मैं निम्नलिखित के प्रति आभार प्रकट करना चाहूँगी, जिनकी सहायता व समर्थन के बिना मेरा प्राप्य संभव नहीं था और न ही मैं उतना बाँटने योग्य हो पाती:

- मेरे परिवार के सदस्य-पेशावरिया परिवार, बेदी परिवार, भरूचा परिवार, अरोड़ा व मेनन परिवार।
- मेरी सेवा/व्यवसाय.समग्र रूप में, भारतीय पुलिस सेवा जिसने मुझे एक पुरस्कृत व्यावसायिक जीवन दिया व संयुक्त राष्ट्र, जहाँ मैं शांति कायम करने संबंधी गतिविधियों में कार्यरत रही।
- मेरे अध्यापक (शैक्षिक, व्यावसायिक तथा आध्यात्मिक).स्कूल से विश्वविद्यालय, और पुलिस अकादमी व उससे भी आगे।
- मेरे वे दोनों मित्र, जिन्होंने मुझे प्यार दिया, जिन्होंने प्यार नहीं दिया।
- मेरी गैर-लाभकारी संस्थाएँ.जो निरंतर मुझे यथार्थ से जोड़े हुए हैं और वे सभी जो किसी न किसी रूप में इन संस्थाओं से जुड़े हैं।
- मेरी अंग्रेजी पुस्तक ‘आई डेयर’ के प्रकाशक अशोक चोपड़ा सी.ई.ओ. और एम.डी., के.जी. रवीन्दर (सम्पादक) जिनकी मदद के बिना यह कार्य संभव नहीं था। इसके अतिरिक्त प्रोडक्शन मैनेजर, राकेश कुमार तथा डिज़ाइनर एषणा रॉय का भी इस कार्य में योगदान रहा।
- मेरा रेडियो म्याऊँ कार्यक्रम, मेरा टी.वी. ‘आपकी कचहरी’ तथा ‘हिंदुस्तान टाइम्स’ में मेरे पाक्षिक स्तम्भ व अन्य प्रकाशन। उन्होंने मेरी प्रतिभा को बाहर लाने में मदद की।
- मेरे पारिवारिक चिकित्सक, विशेष रूप से डॉ. चंचल सलूजा, जिनके बिना मैं तथा मेरा परिवार, अच्छी सेहत का सुख भोग सकते थे।
- नई दिल्ली के मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज में मेरे दंत चिकित्सक, जिनका स्पर्श भी स्वास्थ्यकर है।
- मेरा व्यक्तिगत स्टॉफ, जिसके बिना जिंदगी काफी मुश्किल होती।
- वे सभी लोग, जिनके प्यार व प्रशंसा के बल पर ही, मैं बड़ी से बड़ी चुनौतियों का सामना कर सकी।
- रेमन मैग्सेसे फाउंडेशन जिन्होंने पुलिस शक्ति द्वारा अपराध निवारण व सुधार के मूल्य को पहचाना और मेरे काम को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दी।
- मेगन डोनेमान व लारेन डोनेमान को उनके वृत्तचित्र ‘यस’, ‘मैडम सर’, के लिए, जिसने कई फिल्म महोत्सवों में पुरस्कार पाए हैं।

अनुक्रमणिका

1. निर्भीक कदम
2. नए जीवन का शुभारंभ
3. विजेता बनने की राह पर
4. विवाह: अपने समय से कहीं आगे
5. मदर टेरेसा का स्नेहालिंगन
6. 'क्रेन' बेदी
7. दिल्ली से गोवा का रोमांचक सफर
8. कल्याणकारी पुलिस व्यवस्था
9. अंत:प्रेरित कर्म : प्रवर्तित व सुधारात्मक पुलिस
10. दुर्दम क्षेत्र में नियुक्ति
11. किरण की अग्निपरीक्षा: वकीलों की हड़ताल
12. उत्तर से पूर्वोत्तर: कठिन परिश्रम से संकट तक
13. स्वतंत्रता की राह पर
14. भय से मुक्ति : जेल सुधार के लिए ब्ल्यू प्रिंट का निर्माण
15. जेल में सुधार के हर संभव प्रयास
16. तिहाड़ कैदियों को मिला स्वर
17. तूफानों से निकली राहें
18. सुधार
19. नए मानदण्डों की स्थापना
20. ध्यान के माध्यम से सुधार
21. तिहाड़.घटनाओं का केन्द्रबिंदु
22. उत्तरदायी नेतृत्व : प्रेरक बल
23. तिहाड़ से सबक
24. ऊँचे पद : हीन मानसिकता व असुरक्षा
25. किरण के बाद तिहाड़
26. तिहाड़ के बाद किरण: भावी पीढ़ियों के लिए लेखन
27. 'इट्स ऑलवेज पॉसिबल' : एक रिकॉर्ड
28. गवर्नर हाऊस के खुले द्वार: भाग्य की विडंबना
29. सफलता व त्रासदी: चंडीगढ़ में लंबे 41 दिन
30. मानवीय पुलिस व्यवस्था
31. अपने से भी परे : विविध कार्य
32. उनकी धारणाएं

33. संयुक्त राष्ट्र में पदार्पण
34. न्यूयार्क में बीता समय
35. किरण की संयुक्त राष्ट्र से विदाई
36. बंधन से मुक्ति
37. गांधीवादी तरीका: यदि मैं पुलिस कमिश्नर होती......
38. समय का सदुपयोग: सेवा के लिए धनोपार्जन
परिशिष्ट 1. रैमन मैग्सेसे पुरस्कार
परिशिष्ट 2. किरण का जीवन परिचय
परिशिष्ट 3. पुलिस सुधारों पर किया गया न्याय: भारत के सुप्रीम कोर्ट की कार्रवाइयों का रिकॉर्ड

1

निर्भीक कदम

भव्य और आलीशान राष्ट्रपति भवन को जाने वाली सड़क राजपथ अपने पूरे वैभव में जगमगा रही थी। ऐसा हर वर्ष 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस के अवसर पर होता ही है। वर्ष 1975 की 26 जनवरी को भी ऐसा ही हुआ। अगर कुछ भिन्न था तो यह कि मार्च पास्ट में पहली बार दिल्ली पुलिस के पुरस्कृत दस्ते का नेतृत्व एक महिला अधिकारी कर रही थी। उस महिला का कार्यनिष्पादन इतना अधिक प्रभावशाली रहा कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने सहायकों को इशारे से उस महिला अफसर की पहचान करवाई और अगली ही सुबह उसे नाश्ते के लिए आमंत्रित किया। वह अधिकारी और कोई नहीं किरण बेदी ही थीं। किरण की पहली नियुक्ति उस समय चाणक्यपुरी, नई दिल्ली में सब-डिवीजनल अधिकारी के रूप में हुई थी।

दरअसल किरण को बिल्कुल आखिरी समय पता चला कि उन्हें परेड का नेतृत्व नहीं करना है। वह दिल्ली पुलिस के तत्कालीन महानिरीक्षक पी. आर. राजागोपाल से मिलने के लिए तत्काल पहुंचीं और उन्होंने प्रश्न किया, ''सर, मुझे बताया गया है कि परेड का नेतृत्व मैं नहीं कर रही हूँ?''

''देखो किरण, पंद्रह किलोमीटर तक मार्च करना है, और तुम्हें इतना लंबा रास्ता भारी तलवार थामकर तय करना होगा, कर पाओगी?''

''सर इतने गहन प्रशिक्षण के बाद भी मुझे इस प्रश्न का उत्तर देना पड़ेगा?” किरण ने हैरान होकर पूछा था और परेड का नेतृत्व किरण ने ही किया।

कुछ वर्ष बाद इसी राजपथ पर 5 नवंबर, 1979 को एक विस्मयकारी नाटक खेला गया। लंबे-लंबे कुर्ते पहने, पेटियों में खाली म्यानें लटकाए, हाथों में तलवारें थामे सैकड़ों सिख बड़े धमकी-भरे अंदाज़ से राष्ट्रपति भवन की ओर बढ़ रहे थे। जैसे-जैसे वे अपनी मंज़िल के निकट पहुंच रहे थे, वैसे-वैसे उनके रवैये की आक्रामकता बढ़ रही थी। आख़िर वे भयानक रोमांचकारी रणनाद करते हुए बेतहाशा दौड़ने लगे। धार्मिक उन्माद से ग्रस्त वे लोग निरंकारी सिखों द्वारा पहले आयोजित संत समागम के विरोध में जुलूस निकाल रहे थे। किरण बेदी ने चिल्लाकर प्रदर्शनकारियों को आगे बढ़ने से रोका। वे उस समय दिल्ली पुलिस के एक दल का नेतृत्व कर रही थीं। इसके उत्तर में उन्होंने पुलिस दल पर आक्रमण कर दिया। किरण बेदी के सिपाही तो मैदान छोड़कर भाग निकले, लेकिन सिर्फ़ अपनी हैलमेट और बैटन के सहारे उस समूह पर किरण ने धावा बोल दिया। घूसों की बौछार के बावजूद, किरण ने अभूतपूर्व साहस का प्रदर्शन

करते हुए तब तक प्रदर्शनकारियों का डटकर मुकाबला किया जब तक वे उनके साहस और संकल्प से भयभीत नहीं हो गए। तभी उनके सिपाही लौट आए और पूरी स्थिति पर काबू पा लिया गया।

अपने फ़र्ज़ की अपेक्षा से आगे बढ़कर यह कार्य करने के लिए किरण बेदी को उनके पराक्रम के लिए 10 अक्टूबर, 1980 को पुलिस पदक प्रदान किया गया।

किरण तत्कालीन पुलिस कमिश्नर जे. एन. चतुर्वेदी को बहुत स्नेहपूर्वक स्मरण करती हैं, क्योंकि वह हमेशा किरण के काम की सराहना करते थे और पहल करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। इस पदक का पूरा श्रेय वह जे. एन. चतुर्वेदी के उस नेतृत्व को देती हैं जो कार्यकाल के आरंभिक दौर में एक आदर्श साबित हुआ।

उस तिथि के ठीक चौदह वर्ष बाद फिलीपिंस की राजधानी मनीला में किरण बेदी को एशिया का सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार प्रदान किया गया। वह संसार की एकमात्र पुलिस अधिकारी हैं जिन्हें शांति पुरस्कार मैग्सेसे से सम्मानित किया गया।

इस तरह का पुरस्कार प्रदान किया जाना पराकाष्ठाओं के असामान्य मेल का द्योतक है। ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि वह जो कुछ भी करती रहीं उसे सिर्फ़ अपनी ड्यूटी समझकर अपने पूरे कार्यकाल में उन्होंने पूरी योग्यता और निष्ठा से निभाया। घोषित रूप से हिंदुत्व की समर्थक भारतीय जनता पार्टी (भा. ज. पा.) के नेता और बाद में दिल्ली के मुख्यमंत्री बनने वाले मदनलाल खुराना ने 1986 में केदारनाथ साहनी जैसे अन्य नेताओं के साथ इकट्ठा होकर एक भारी जुलूस का नेतृत्व करते हुए लालकिला मैदान में एकत्रित होकर धनी मुस्लिम आबादी के नज़दीक के इलाकों में आने का आग्रह किया। जिला पुलिस कमिश्नर (डी. सी. पी., उत्तर दिल्ली) होने के नाते किरण बेदी ने उन्हें भीतर जाने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया। किरण को यकीन था कि कोई कुछ भी दावा करे, इस जुलूस के परिणामस्वरूप विस्फोटक सांप्रदायिक तनाव हो जाने की संभावना है और पुलिस के लिए स्थिति को नियंत्रित करने में दिक्कतें पेश आएंगी। किरण और भाजपा नेता अपनी-अपनी ज़िद पर टिके रहे। वे तीन सप्ताह तक धरने पर बैठे रहे। उनकी एकसूत्री मांग थी. किरण बेदी को बरखास्त किया जाए।

सात वर्ष बाद जब मदनलाल खुराना दिल्ली के मुख्यमंत्री के रूप में तिहाड़ जेल गए तब किरण महानिरीक्षक (जेल) थीं। उन्होंने तिहाड़ में किए गए सुधारों की मुक्तमन से सराहना की और अपने धरने की भी चर्चा की। उन्होंने पूरे नौ हज़ार कैदियों को संबोधित करते हुए कहा कि किरण बेदी ने तब भी अपना कर्तव्य निभाया था, आज भी वह वही कर रही है। गिरगिट की तरह रंग बदलना राजनेताओं के लिए एक सामान्य-सी बात है।

जब-जब किरण बेदी ने अतिरिक्त आत्मविश्वास का परिचय दिया है तब-तब उनसे चूक भी हुई हैं। लेकिन किरण में एक गुण यह भी है कि जब वह संकटग्रस्त होती हैं, जब भी उन्हें सामने 'पराजय' शब्द लिखा नज़र आता है, वह उस संकट से निकलने का रास्ता निकाल ही लेती हैं।

चंडीगढ़ में किरण निरुपमा मांकड-वसंत के विरुद्ध राष्ट्रीय टेनिस का फाइनल मैच खेल रही

थीं। किरण ने पहला सेट 3-6 से हारा था। कुँवर महेंद्रसिंह बेदी और भूतपूर्व एशियाई चैंपियन लक्ष्मी महादेवन रेडियो पर विवरण सुना रहे थे।

कुँवर महेंद्र ने लक्ष्मी से पूछा, ''आपके विचार से क्या किरण पराजित हो जाएगी?'' लक्ष्मी को उस समय किरण के विरुद्ध खेला गया अपना वह मैच याद आ गया जो असम में खेला गया था। उस समय किरण ने पहला सैट 0-6 से हारा था और दूसरे में 0-5 से घिसट रही थीं। इसके बाद वह पूरे प्रतिशोध भाव से मैदान में उतरीं और 0-6, 7-5, 6-0 से विजयी हुई थीं। इसलिए लक्ष्मी ने ज़ोर देकर कहा था कि यह नहीं कहा जा सकता कि वह हार जाएगी। किरण ने अंततः निरुपमा को 3-6, 6-3, 6-1 से हराया था।

लक्ष्मी जनवरी 1976 में गोहाटी (अब गुवाहाटी) में खेली गई ईस्ट इंडिया चैंपियनशिप की चर्चा कर रही थीं। सितंबर 1975 में किरण ने बेटी सुकृति को जन्म दिया था और वह अभी भी स्वास्थ्य-लाभ कर रही थीं। टेनिस मैच में खेलने के लिए किरण को अपने पति बृज की नेकर और टी-शर्ट पहननी पड़ी थी क्योंकि किरण के अपने नाप के वस्त्र छोटे पड़ गए थे। उन्हें तब ऐसा महसूस हुआ कि उस समय जो काम उनके हाथ में था उसमें भीतर की नारी रुकावट बन गई है। ऐसा लगा जैसे उन्हें कुछ साबित करना है और उन्होंने बखूबी वैसा कर दिखाया।

उन्हें अपना आदर्श मानने वाले युवक-युवतियों के पत्र बड़े चाव से दिखाते हुए किरण बेदी कहती हैं, ''मेरे लिए पुलिस अधिकारी होना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि इससे ज़्यादा महत्त्व इस बात का है कि मैं उस स्थिति में हूं जहां से मैं अपने लिए समुचित मानसिक और भौतिक सामग्री एकत्रित कर सकती हूं। इस स्थिति में होने के कारण मैं मसलों का मूल्यांकन कर सकती हूँ, स्वयं निर्णय ले सकती हूँ और फलस्वरूप बिना किसी को दोषी ठहराए परिणाम को भोग या झेल सकती हूं। मैंने कोशिश करके अब वह पद पा लिया है। अब मुझे किसी बात का इंतज़ार करने तथा औरों से कुछ मांगने की जरूरत नहीं है, अब मैं दूसरों को कुछ दे सकती हूं। उनसे साझेदारी कर सकती हूं। कुछ उपार्जित कर पाने की लालसा ही मेरी समझ में अस्तित्व का मूल आधार है। मैंने इस पक्ष पर अनेक बार सोचा है और यह समझने का प्रयास किया है कि कैसे यह मेरे भीतर के चेतन व अवचेतन में विकसित हुआ है।''

अधिकांश भारतीय समाज की तरह किरण बेदी के परिवार का इतिहास पुरुषसत्ता-प्रधान परिवार का इतिहास है। इसके बावजूद किरण में एक महिला होने के नाते स्वतंत्र रहने और अपना लक्ष्य प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा और उसे पूरा करने का दृढ़ संकल्प है।

किरण का जन्म पेशावर (अब पाकिस्तान में) में एक पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार में हुआ था। परिवार बाद में अमृतसर में बस गया। किरण के लकड़दादा लाल हरगोबिंद एक सच्चे-सुच्चे खरे पठान थे और उन्होंने पेशावर से अमृतसर आकर कालीन-निर्माण की एक इकाई और बर्तनों की एक फैक्ट्री लगाई और उसमें उन्होंने सफलता पाई थी। उन्होंने अपना व्यापार पचास हज़ार रुपयों से आरंभ किया था और अपने ही जीवनकाल में उन्होंने अपना कारोबार बीस गुना बढ़ा लिया था। वे अपने पीछे इतनी संपत्ति छोड़ गए थे कि पेशावरिया परिवार को पीढ़ी-दर-पीढ़ी न सिर्फ़ व्यापार बढ़ाने का अवसर मिला बल्कि फलने-फूलने का भी मौका मिला। किरण के

परदादा लाला छज्जूमल बहुत ही सीधे-सादे और धार्मिक इन्सान थे, लेकिन उनके दादा लाला मुन्नीलाल कुछ अलग किस्म के व्यक्ति थे। उन्होंने पाठशाला जाना बंद करके चार वर्ष तक घर पर ही अंग्रेज़ी भाषा सीखी। बीसवीं सदी के आरंभ में ही उन्होंने अपने दादा से 50,000 रुपये उधार लेकर अपने पिता की कपड़े की थोक की दुकान के ऊपर अपना कार्यालय खोल लिया। उन्होंने इंग्लैंड में कपड़ा-निर्माताओं के साथ बड़ी मेहनत से सीखी अंग्रेज़ी भाषा में पत्र व्यवहार किया। बहुत जल्दी ही उन्होंने मैनचेस्टर से प्रसिद्ध 926 मलमल और ब्रैडफोर्ड से सलेटी और सफेद रंग की इतालवी फ़लालेन का आयात शुरू किया। उन्होंने एक सूखा तालाब ख़रीदकर उस पर एक धर्मशाला का निर्माण भी किया। इस धर्मशाला को उन्होंने अपने धार्मिक प्रवृत्ति वाले पिता को समर्पित किया। आज हरिद्वार, वृंदावन और अमृतसर में पेशावरिया धर्मशालाएँ हैं जिन्हें परिवार द्वारा गठित एक न्यास चलाता है।

लाला मुन्नीलाल ने जो भी प्राप्त किया था अपने बलबूते पर। लेकिन वह बहुत ज़िद्दी किस्म के पिता थे। एक सच्चे तानाशाह की तरह वह अपने परिवार और संपत्ति पर अपना संपूर्ण अधिकार जमाए रखते थे। उनको अच्छी जीवनशैली से प्यार था और अपने ऊपर वह काफ़ी धन व्यय करते थे, लेकिन शेष विशाल संयुक्त परिवार को परिवार के व्यवसाय में काम करने के लिए बहुत ही कंजूसी से भत्ता देते थे। अमृतसर में वह तीसरे ऐसे व्यक्ति थे जिनके पास मोटरकार थी।

किरण के पिता प्रकाशलाल के परिवार में चार भाई और तीन बहनें हैं और जिनके नाम हैं- बनारसो (जिनकी नातिन कंचन चौधरी भारत की दूसरी पुलिस अफ़सर बनी), पुष्पल, मोहिन्दर, मनोहर और नरेन्दर। प्रकाशलाल बहुत उत्कृष्ट टेनिस खिलाड़ी रह चुके हैं और आज भी हैं। प्रसिद्ध खेल विवरणकार डॉ. नरोत्तम पुरी के पिता अमृतसर कॉलेज के प्रिंसिपल थे। उन्होंने प्रकाशलाल को उनकी टेनिस के खेल में क्षमताओं को मद्देनज़र रखते हुए बी. ए. में प्रवेश और छात्रवृत्ति प्रदान की थी। प्रकाश के पिता ने उन्हें पढ़ाई न करने का आदेश दिया और फैक्ट्री में मदद करने की जिद्द की। प्रकाश के बड़े भाई मनोहर ने कॉमर्स में बी. ए. पास कर लिया था और फैक्ट्री के काम के लिए वह अधिक उपयुक्त थे। लेकिन उनकी अपने पिता के साथ बनती न थी इसलिए अधिक आज्ञाकारी, कर्तव्यनिष्ठ छोटे पुत्र को कॉलेज की पढ़ाई त्यागनी पड़ी।

प्रकाश एक संवेदनशील युवक थे जो समाज में महिलाओं को आज्ञाकारी परवश भूमिका से विचलित रहते थे, क्योंकि महिलाओं को हर प्रकार के अधिकारों एवं सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। इसलिए उन्होंने विवाह न करने का फैसला किया था। उनका मानना था कि संयुक्त परिवार में उनकी पत्नी की स्थिति परिवार की अन्य महिलाओं से बेहतर न होगी। उनके पिता की विधवा बहन भी उसी संयुक्त परिवार में रहती थीं। एक हतभागिनी बहन की मदद करने वाले एक सहृदय भाई के रूप में उनके पिता अपनी बहन की बात सुनते थे। उन्होंने अमृतसर के एक जाने-पहचाने सम्माननीय परिवार के साथ उनकी बेटी और प्रकाश के विवाह की बात की। जब प्रकाश ने विवाह करने से इनकार कर दिया तो उन्होंने खाना-पीना बंद कर दिया। इस तरह प्रकाश को मजबूरन उनकी बात माननी पड़ी।

बीस वर्ष की उम्र में प्रकाशलाल का विवाह अमृतसर के धार्मिक और संपन्न परिवार के लाला

बिशनदास अरोड़ा की बेटी जनक से हुआ। लालाजी गरीब और ज़रूरतमंदों को नियमित रूप से दान-दक्षिणा देते थे। जनक ने, जिसने बाद में अपना नाम बदलकर प्रेमलता रख दिया था, चौदह वर्ष की कम उम्र में रतन, भूषण, प्रभाकर सहित दसवीं की परीक्षाएं उत्तीर्ण कर ली थीं। इतनी कम उम्र में विवाह हो जाने के कारण वह आगे की पढ़ाई जारी न रख सकीं।

31 दिसंबर, 1945 को उन्होंने अपनी पहली पुत्री शशि को जन्म दिया। प्रकाश ने महसूस किया कि महिलाओं के संदर्भ में अब उनकी परीक्षा की घड़ी आ गई है। उन्होंने फैसला किया कि वह अपनी बेटी को वे सब अधिकार और सुविधाएँ देंगे जिनके बारे में वह अक्सर सोचा करते थे। तीन वर्ष की उम्र में शशि ने अंग्रेज़ी की वर्णमाला सीख ली। जब शशि पांच वर्ष की हुई तो उसे बेल्ज़ियम से आई मिशनरी नन्स द्वारा संचालित सैक्रेड हार्ट कॉन्वेन्ट में दाखिल करा दिया गया। जब लाला मुन्नीलाल को अपने बेटे की इस हरकत के बारे में पता चला तो वह बेहद नाराज़ हुए। प्रकाशलाल ने अपने पिता से कहा कि वह अपने बेटे के मामले में हस्तक्षेप कर सकते हैं लेकिन बेटे के बेटी के मामले में ऐसा नहीं कर सकते। इस गुस्ताख़ी और पिता की बात न सुनने की ज़िद्द के फलस्वरूप उन्हें दिया जाने वाला भत्ता बंद कर दिया गया।

यह जानते हुए कि वह स्नातक भी नहीं है, प्रकाशलाल अभी सोच-विचार ही कर रहे थे कि उनके ससुर ने उन्हें अपना व्यापार शुरू करने के लिए एक अच्छी-ख़ासी रकम दी। उन्होंने बज़ाज़े की दुकान खोली और उनका व्यवसाय खूब फला-फूला। 1948 में हुए भारत-पाक युद्ध के दौरान उन्हें यह व्यवसाय बंद करना पड़ा।

एक वर्ष बाद, 9 जून, 1949 को प्रेमलता ने एक और बेटी को जन्म दिया, नाम रखा गया किरण।

किरण का कहना है कि शिक्षा और खेलों के प्रति लगाव उन्हें अपने माता-पिता से वंशक्रम में दायस्वरूप प्राप्त हुआ। उनके माता-पिता पर एक रूढ़िवादी परिवार और कम उम्र में हुए विवाह के कारण जो दबाव पड़े उनके कारण वह महत्त्वाकांक्षाएं पूरी नहीं कर पा रहे थे। उनकी दमित इच्छाएँ उनकी बेटियों के विकास में मुखरित हुईं। माता-पिता ने अपने लिए ऊंचे स्तर के मानदंड स्थापित किए थे और इन्हीं मानदंडों के कारण उन्होंने बेटियों में खेल और शिक्षा में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करने की भूख जगाई।

पेशावारिया बहनें सैक्रेड हार्ट कॉन्वेंट में शिक्षा ग्रहण करने लगीं। स्कूल इनके घर से 16 किलोमीटर दूर था। सुबह-सवेरे उठकर स्कूल जाने की तैयारी के अलावा आने-जाने पर भी अतिरिक्त ख़र्चा करना पड़ता था। प्रेमलता पेशावरिया को सुबह चार बजे उठकर यह सुनिश्चित करना होता था कि ग्वाला उनकी मौजूदगी में गाय को दुहे ताकि दूध में पानी न मिलाया जा सके। सुबह-सवेरे बहनें नाश्ता खाकर पैदल भागती हुई पांच किलोमीटर दूर बस स्टैंड पर पहुंचतीं। उस समय चौदह वर्ष से कम उम्र के लिए वे कभी-कभी तांगे में स्कूल जाने वाली अपने से अधिक संपन्न सहेलियों से लिफ़्ट मांग लेती थीं। इस तरह पैसे बचाने का अर्थ था-माता-पिता के लिए पैसे कमाना। बचाए हुए ये पैसे वे हमेशा उन्हें लौटा देतीं। कभी-कभी स्कूल में फ़ीस जमा करवाने में देर हो जाती तो स्थिति काफी नाजुक हो जाती। ''शशि क्योंकि सबसे

बड़ी थी इसलिए वही स्थिति को संभालती। वह सातवीं कक्षा में थी और मैं पहली या दूसरी कक्षा में।'' किरण बताती हैं कि ऐसा भी नहीं था कि हम ग़रीब थे, बात सिर्फ़ इतनी-सी थी कि परिवार के धन पर एक तानाशाह असंवेदनशील कंजूस दादा का नियंत्रण था। अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों में किरण ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि माता-पिता द्वारा उन पर खर्च किए जाने वाले एक-एक पैसे का अच्छा-से-अच्छा उपयोग होगा और उसका हिसाब ज़िम्मेदारी से रखा जाएगा। स्कूल की हर गतिविधि में किरण ने हठपूर्वक भाग लेना शुरू कर दिया। किरण एन. सी. सी., नाटकों, वाद-विवादों में भाग लेने के अलावा टेनिस भी खेलतीं। पुस्तकालय के उपयोग और व्यायाम से संबद्ध कार्यक्रमों में भी वह भाग लेतीं। किरण ने मानो फ़ैसला कर लिया था कि माता-पिता द्वारा खरीदा गया एक भी क्षण बेकार साबित नहीं होगा।

बहन अनु के साथ किरण

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी (मंसूरी) में एक समारोह के दौरान साड़ी में किरण बेदी

महिला एशियाई चैंपियनशिप जीतने के पश्चात पिता प्रकाश लाल के साथ किरण बेदी
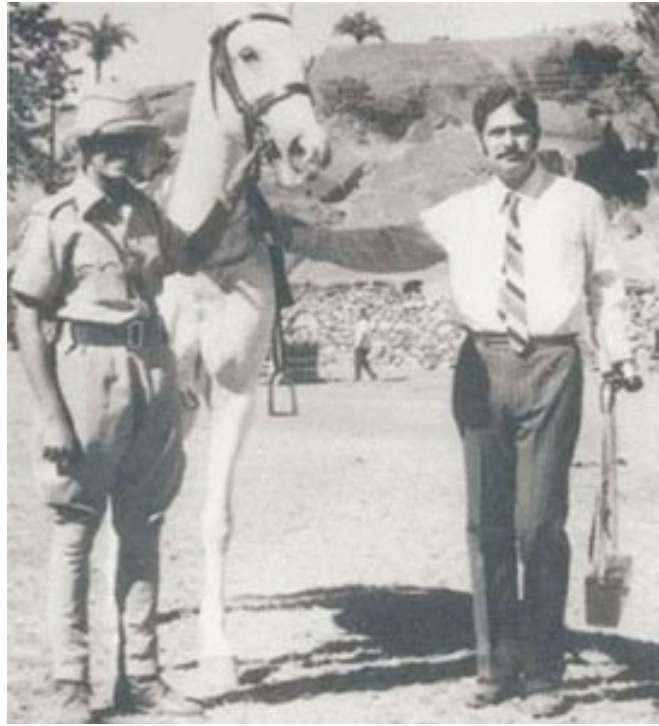
पुलिस अकादमी (माऊंट अबू) में पति ब्रिज के साथ किरण बेदी

गणतंत्र दिवस की अगुआई के बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ सुबह के नाश्ते पर

तत्कालीन गृहमंत्री यशवंत राव चह्वाण से पुलिस गैलेन्ट्री अवार्ड हासिल करती किरण बेदी

एशियाड खेलों के दौरान दिल्ली यातायात को नियंत्रित करती किरण बेदी

'कर्तव्यम' फिल्म के मुहूर्त पर अभिनेत्री विजयाशांति के साथ,
इस फिल्म को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।
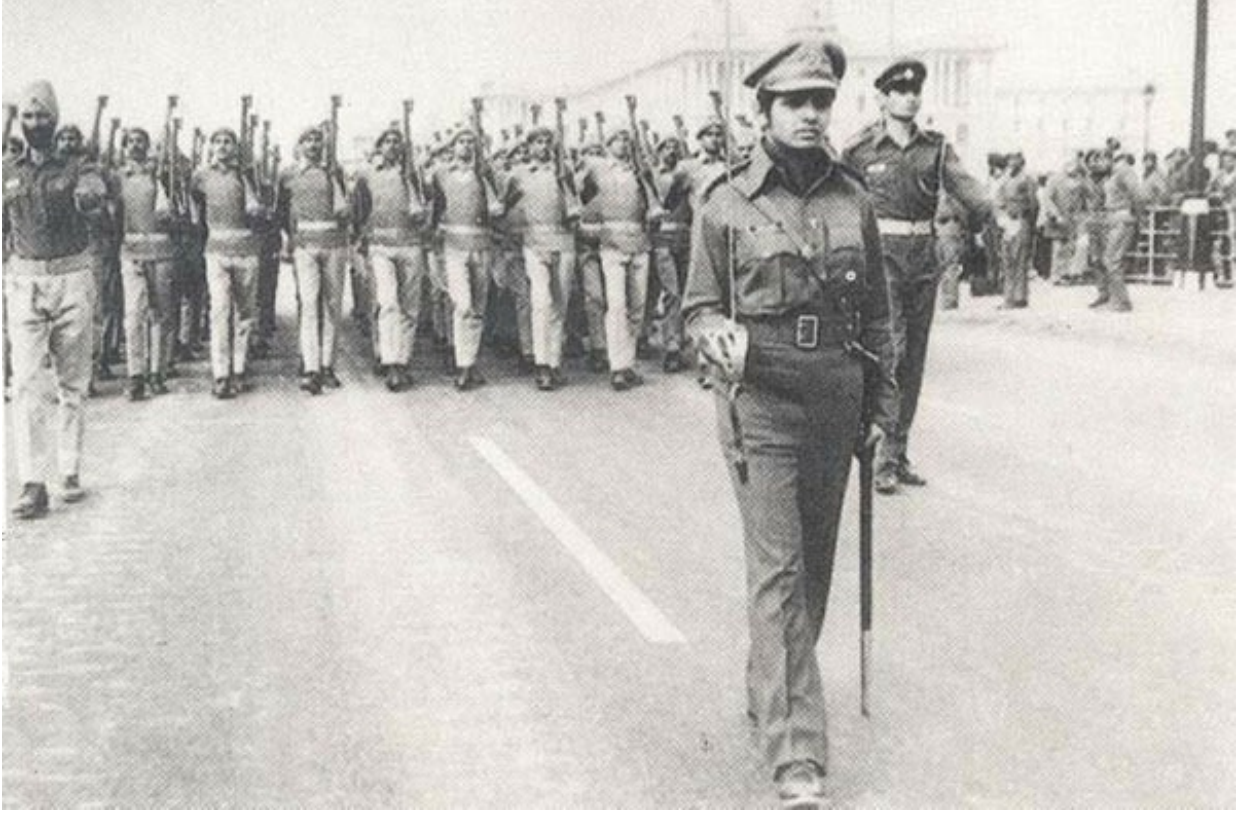
गणतंत्र दिवस पर दिल्ली पुलिस दल का नेतृत्व करती किरण बेदी (1975)

अकाली आंदोलन का अकेले मुकाबला

पिता और पुत्री (सायना)

माता और पुत्री (सायना)

पेशावरिया परिवार की चार बहनें-किरण, अनु, शशि एवं रीटा

आई. आई. टी., नई दिल्ली में अपने पी.एच.डी दीक्षांत समारोह के पश्चात
अपने अभिभावक एवं बहन के साथ किरण

जब किरण नवीं कक्षा में पहुंचीं तो उन्होंने अपने जीवन का पहला निर्णय स्वतंत्र रूप से लिया। आठवीं कक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद उन्हें अपना मनपसंद विषय विज्ञान चाहिए था। कॉन्वेंट में उन्हें मनपसंद विषय उपलब्ध न थे, उलटे उनको गृह-व्यवस्था विषय लेने की सलाह दी गई जिसमें एक अच्छी गृहलक्ष्मी बनने के सब गुणों के पाठ पढ़ाए जाते थे। किरण ने अपने प्यारे स्कूल से बचने का फैसला कर लिया था। वह एक निजी संस्था कैंब्रिज जा पहुंचीं जहां उन्हें विज्ञान और हिंदी विषयों के सहारे कक्षा दस की बोर्ड परीक्षाओं की तैयारी का मौका मिल गया। इस 'डबल प्रोमोशन' की संभावना ने उन्हें काफ़ी उत्तेजित कर दिया था। उस समय किरण के पिता अमृतसर में न थे, लेकिन उनकी माताजी का विचार था- ''अगर, तुम्हें यही ठीक लगता है तो ऐस ही करो।'' इस तरह जब किरण के संगी-साथियों ने नवीं कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण की तब किरण ने दसवीं कक्षा की परीक्षा दी। किरण ने डबल प्रोमोशन के लिए मेहनत की और सफल रहीं। बेशक किरण की सहपाठिनियों को उनसे ईर्ष्या थी लेकिन यह भी सच है कि अगर किरण को हिंदी में सिर्फ एक अंक कम मिलता तो वह अपनी सहपाठिनियों के साथ वापस नवीं कक्षा में पहुंच जातीं। फिर भी किरण ने अपने जीवन का पहला महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया था और वह सही-सलामत थीं।

2

नए जीवन का शुभारंभ

किरण ने महिला गवर्नमेंट कॉलेज, अमृतसर में दाखिला लिया। राजनीतिशास्त्र और एन. सी. सी. (नेशनल कैडेट कोर) ने किरण को सबसे अधिक प्रभावित किया। वैसे किरण की दिलचस्पी इतिहास और दर्शनशास्त्र में भी थी। पर वास्तव में वह राजनीतिशास्त्र का आधिकारिक रूप से अध्ययन करना चाहती थीं। राज्य प्रशासन, सत्ता और शासन-विधि उनकी कल्पना को विशेष रूप से प्रभावित करते थे। उन्हें लगता था यह विषय उन्हें सक्रिय नागरिक बनाता है और उनमें राष्ट्रवाद की भावनाएं विकसित करता है। एन. सी. सी. ने किरण को ख़ाकी का पहला अनुभव दिया। वह अपनी वर्दी से प्यार करती थीं, वर्दी को कलफ़ लगाकर प्रेस करके निर्मल, स्वच्छ रखने के लिए पूरा यत्न करतीं। आश्चर्य नहीं कि ऐसे स्वाभिमान और दृढ़ संकल्प के कारण वह जल्दी ही प्लाटून कमांडर बन गईं और साथ ही वार्षिक दिवस परेड का नेतृत्व करने के लिए चुन ली गईं। उस समय उन्हें यह पता नहीं था कि भाग्य उन्हें कहीं ले जाएगा, किंतु यह स्पष्ट था कि वह जिस देश को प्यार करती हैं, उसकी नागरिक होने पर उन्हें गर्व था और वह एक निष्ठावान सिपाही और सक्रिय भागीदार की भाँति सेवा करने को तैयार थीं।

कॉलेज के दिनों में भी किरण के व्यक्तित्व से सदा तत्परता का एहसास होता था। वह बिना एक क्षण गँवाए क्लासरूम से टेनिसकोर्ट और फिर लाइब्रेरी की ओर सदा भागती हुई-सी दिखाई देतीं। मित्रों के साथ मिल-बैठकर समोसा खाकर कुछ ठंडा पीते हुए आराम के कुछ क्षण बिताना किरण के लिए विरल बात थीं। निरर्थक बातचीत और गपशप में किरण की रुचि नहीं है यह बाक़ी लड़कियां जानती थीं और वे उन्हें किसी प्रकार की ओछी बातों में नहीं उलझाती थीं।

उनकी माताजी ने बताया कि किरण में समय का सदुपयोग करके उसका अधिकाधिक लाभ उठाने की उत्कट भावना थी। यदि किरण की दिनचर्या में से मात्र आधा घंटा भी बच जाता तो उसका उपयोग वह पेंटिंग अथवा टेनिसकोर्ट में करती थीं, वहां भी यदि कोई साथी न मिला तो वह दीवार के साथ अकेली टकराती रहती थी।

कॉलेज में थ्योरी कक्षा के बाद किरण साइकिल से घर लौटतीं ताकि कुछ क्षण मां के साथ बिता सकें और जल्दी से एन. सी. सी. की वर्दी पहन कॉलेज पहुंच जातीं। किरण को सदा ही अपनी मां से स्नेह रहा और उन दिनों में एक बार कुछ समय मां के साथ बिताने के लिए वह लगभग 12 किलोमीटर ज़्यादा साइकिल चलाने को भी तैयार रहती थीं। वह बड़ी सावधानी से अपने एन. सी. सी. किट कॉलेज ले जा सकती थीं, किंतु ऐसा करके वह उन अमूल्य क्षणों से वंचित रह जातीं। दोनों बहनों के पास एक ही साइकिल थी, जिसका सीधा अर्थ था छोटी रीता को पीछे बिठाकर साथ ले जाना। कॉलेज का जीवन अत्यधिक परिश्रम, अनुशासन और नियमित पढ़ाई का ज़माना था। किरण का संकल्प था कि एक दिन वे कुछ ऐसा कर दिखाएंगी

जिसकी उम्मीद भारतीय स्त्री से नहीं की जाती। वह क्या होगा, यह उस समय स्पष्ट नहीं था, पर इससे किरण की तैयारी में कोई बाधा नहीं पड़ी।

जिस वातावरण में किरण का पालन-पोषण हुआ उसने उसे उस समय में सामान्य रूप से स्वीकृत लिंग-भेद की रूढ़िवादी व्यवस्था को समझने की अंतर्दृष्टि दी। यह दृष्टि स्वयं ही विकसित हुई, इसके लिए किसी ने प्रयास नहीं किया। यह रूढ़िवादिता कुछ इस प्रकार थी- पुरुष बाहर के कामों के लिए, प्रभुत्व और खेलों के लिए, स्त्रियां घर के कामकाज के बाद डांट-डपट सुनकर आंसू बहाने के लिए, पुरुष उच्च शिक्षा वंश-वृद्धि के लिए, लड़कियां बलिदान के लिए और लड़के साहसिक कार्यों के लिए, पुरुष धन अर्जित करके नियम निर्धारण करने वाले और स्त्रियां विरासत में मिले स्वर्ण कॉलेज जाने की आवश्यकता नहीं हुई- यह सब तो स्वयं अपने ही घर में उन्होंने देखा और पहचाना। उनका घर एक पेशावरी संयुक्त परिवार था। किरण के दादा विशिष्ट प्रकार के तानाशाह थे जिनका प्रभुत्व पत्थर की लकीर था, और दादी भी उतनी ही विशिष्ट, जिनका मुख्य काम था, सोने और दूसरे प्रकार के आभूषण एकत्र करना। उस दौर में किरण के माता-पिता ही सबसे हटकर थे जिनके चार बेटियां थी, जिन्हें निश्चित रूप से वे ऐसी युवतियां बनाना चाहते थे, जिनके जीवन में स्वयं एक पहचान हो। किरण के दादा और चाचा-ताऊ इन लड़कियों के बारे में, जिन्हें वे 'बोझ' समझते थे, अक्सर बहुत चिंता व्यक्त किया करते थे। वास्तव में किरण के दादा अपने बेटों को यदाकदा परामर्श भी देते थे कि प्रकाश (किरण के पिता) के ऊपर चार-चार बेटियों की ज़िम्मेदारी है इसलिए जब भी बंटवारा हो ज़ायदाद का एक बड़ा भाग उसे मिलना चाहिए। दूसरे शब्दों में, वह आश्वस्त होना चाहते थे कि पोतियों के लिए अच्छे वर प्राप्त करने के लिए उचित मात्रा में दहेज़ की व्यवस्था हो।

किरण के माता-पिता ने अपनी बेटियों को कभी इस निगाह से नहीं देखा। उन्होंने अपने बच्चों को शिक्षा के साथ-साथ खेलकूद और दूसरे क्षेत्रों में आगे बढ़ने के पूरे अवसर प्रदान किए जिससे वे अपनी इच्छा के अनुसार जीवन बिता सकें। माता-पिता ने इस नज़र से लड़कियों को कभी नहीं देखा कि हाय, इनके लिए अच्छे पति तलाश करने होंगे, अपितु उन्हें ऐसे बच्चे माना जो बड़े होकर स्वयं अपनी भाग्यरेखा बनाएंगे और मनचाही ज़िंदगी बिताएंगे। किरण के पिता अक्सर उन्हें बताते कि किस प्रकार पं. जवाहरलाल नेहरू महिलाओं को हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करते हैं, और देश के भविष्य में महिलाओं के योगदान पर बल देते रहे।

किरण की माँ, उन्हें दूसरों पर निर्भर रहने के खतरों से आगाह करातीं। 'स्वावलंबन' उनके 'जीवन का मंत्र' था और उन्होंने अपने बच्चों में यह भावना भरी, किरण ने भी आजीवन इस सत्य को अपने से अलग नहीं किया।

उन्होंने सदा अपनी माँ या पिताजी के कहे या लिखे शब्दों को एक खज़ाना माना। ये शब्द उनकी अनमोल विरासत रहे, ये उनमें सकारात्मक ऊर्जा प्रवाहित करने का माध्यम बने, यहाँ उसी खजाने में से एक 'रत्न' दिया जा रहा है, जो उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए सहेज रखा है।

Kiri Beti:

Jan. 12/75

Received your letter and I am glad to know of the details. It is real achievement on strength of your both past and present records. God is great. He does reward you for your labours, your honesty and your sincerity.

Now go ahead as you really should. You are a practical person and you have to use your other abilities too. Think what any other person with imagination would do if he/she was in your job? And I tell you, you will earn laurels that no one before has ever earned. It is good you are acquiring first hand knowledge from the person you are to succeed. You will be able to improve upon his doings.

Beti I won't be coming to Delhi for your 26th January because of a few important things and I have to tape the commentary from the radio and the T.V. for my record. Love again.

Love Dady

अन्तर्देशीय पत्र कार्ड
INLAND LETTER CARD

Mrs. Kiran Bedi IPS.
Room No 11, G.O.'s Mess
Kingsway Camp
Delhi - 9.

Sender's name and address —

7 - Kabir Rd.
Amritsar
143001

3

विजेता बनने की राह पर

शैक्षिक वर्षों के दौरान ही किरण टेनिस की ओर गंभीरता और पूरी लगन से आगे बढ़ रही थीं। उन्होंने अपनी बहन रीता के साथ पंजाब यूनिवर्सिटी के लिए इंटरयूनिवर्सिटी महिला टीम चैंपियनशिप जीती। बाद में किरण ने राष्ट्रीय और अंत में एशियन चैंपियनशिप जीती। किरण यह अच्छी तरह समझती थीं कि हारने वाले के लिए दुनिया में कोई जगह नहीं है, यानी जो जीता वही सिकंदर। जिन तरीकों का इस्तेमाल टेनिस की बाज़ी जीतने के लिए किया जाता है, उन्हीं का उपयोग जीवन में भी किया जाना चाहिए। कोई भी लक्ष्य आसानी से प्राप्त नहीं होता, उसके लिए योजनाबद्ध तरीके से काम करना होता है। काम निश्चित रूप से कठिन था और आवश्यकता थी अत्यधिक परिश्रम की और लक्ष्य-प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चय की। किरण के लिए टेनिसकोर्ट नकारात्मकता और सकारात्मकता का प्रतीक था, जैसे विवेक-शक्ति का दुरुपयोग चापलूसी की सीमा तक और विजेता की भरपूर प्रशंसा करने की क्षमता जैसे गुण।

लड़कियों को न सिर्फ अपने यात्रा-भत्ते के लिए संघर्ष करना पड़ा बल्कि कोर्ट के चुनाव के लिए भी संघर्ष करना पड़ा। अनेक बाद सेमीफाइनल या फाइनल मैचों के दौरान लड़कियों को साइड कोर्ट में धकेल दिया जाता था। उन्हें मैच के अनुकूल कोर्ट में खेलने के अधिकार के लिए दृढ़ता के साथ लगातार संघर्ष करना पड़ता था। एक बार कलकत्ता में नेशनल टेनिस चैंपिशनशिप के दौरान फाइनल्स में काफ़ी देर हो गई, क्योंकि निरुपमा वसंत, सूसन दास, उदयाकुमार, किरण और अन्य अनेक लड़कियाँ मुख्य कोर्ट में खेलने के अपने अधिकार की मांग कर रही थीं। अंत में आयोजकों को झुकना पड़ा और लड़कियों की मांग पूरी हुई। इस घटना से किरण ने बहुत-कुछ सीखा। वह समझ गई कि इंसान को अपने अधिकार पाने के लिए लड़ना पड़ता है, नहीं तो आपकी उपेक्षा हो सकती है और यह भी कि जिन्हें प्रभावशाली समर्थन प्राप्त न हो उन्हें अपने चारों ओर के माहौल के बारे में सजग रहना चाहिए और जब जैसी जरूरत हो, अपना प्रभाव अवश्य जमाना चाहिए।

बंगलौर में इंटरयूनिवर्सिटी चैंपियनशिप के दौरान, किरण और बहन रीता का मुकाबला बंगलौर की उदयाकुमार और चंद्रिका के साथ था। किरण ने चंद्रिका से सिंगल्स का मैच जीता, किंतु रीता उदयाकुमार से पराजित हो गई। शाम ढलने को थी और रीता को स्पष्ट देखने में परेशानी हो रही थी, उसने डबल्स मैच अगले दिन खेलने का आग्रह किया। इस पर भी मैच की जीत का श्रेय डिफॉल्ट के कारण बंगलौर के जोड़ को दे दिया गया। बिना हतोत्साहित हुए, अगले दिन पंजाब को इंटरयूनिवर्सिटी टाइटल दिलाने के लिए दोनों बहनों ने दोनों रिवर्स सिंगल्स जीत लिए।

द एशियन लॉन टेनिस चैंपियनशिप 1972 में पूना में आयोजित की गई थी। सेमीफाइनल में किरण का मुकाबला उदयाकुमार से हुआ। किरण ने पहला सैट 6-3 से जीत लिया, दूसरे सैट में वह 5 -3 से आगे थीं, उसी समय अख़्तर अली नाम के विरोधी कोच के नेतृत्व में भीड़ ने कोलाहल मचाकर किरण को चक्कर में डाल दिया और तीसरे राउण्ड में 5-7 से उनकी स्थिति बिगड़ गई, जनसमूह अपने पंजों के बल खड़ा था और किरण 1-3 और 15-30 पर लुढ़क गई। किरण ने अपने पिता की ओर देखा जिनकी नज़रें कह रही थीं- किरण हथियार मत डालो, संभल जाओ। किरण ने अपने सिर को निश्चयात्मक झटका दिया और एक बार फिर जुट गईं और अंत में किरण 6-3, 5-7, और 6-3 से जीत गईं। फाइनल में किरण ने अपने विरोधी सूसन दास को हराया और एशियन चैंपियन बन गईं।

चैंपियनशिप की पूर्व संध्या पर उनके पिता जी ने एक नोट लिखा था, जिसे यहाँ दिया जा रहा है, इसे वे टेनिस शॉर्ट्स की जेब में रखती थीं। जब भी उनसे कोई भूल होती तो वे जेब को हल्का-सा छूतीं और जीतने की नीतियाँ फिर से तरोताजा हो जातीं।

उन दिनों उच्च कोटि की अधिकांश महिला-खिलाड़ियों के प्रशिक्षण की ज़िम्मेदारी अख़्तर अली पर थी, और वह चाहते थे कि किरण भी उनके कैंप में आ जाएं, लेकिन किरण अपने कोच रघुबर दयाल और पिता की देखरेख में रहना चाहती थीं। यही बात अख़्तर अली को अखरती थी और वह किरण को भी इसका एहसास करवाना चाहते थे जिसमें दुर्भाग्यवश उन्हें सफलता नहीं मिली, किंतु अख़्तर किरण के दो विशेष गुणों- हिम्मत और दृढ़ संकल्प की सदा सराहना किया करते थे।

धैर्यवान और दृढ़निश्चयी होने के बावजूद किरण खेल की भावना के आगे झुक जाती थीं। जब तक आप स्वयं अपनी बात को गलत साबित न कर दें, वह आपकी बात मानने को हमेशा तैयार करती हैं। उदाहरण के लिए 1972 की उत्तर भारतीय टेनिस चैंपियनशिप में किरण 6 फुट 2 इंच लंबी आस्ट्रेलियाई खिलाड़ी

1. FIGHT FIGHT FIGHT
2. Determination - Presence of Mind - Positive Attitude -
3. THAT LITTLE EXTRA
4. Concentration - Anticipation - Early Running - Early Swing - Early Position
5. Energy Like A Million Batteries
6. yet Cool - Cool and Thoughtful
7. TAKE YOUR TIME - FOLLOW THROUGH
8. BEND - BEND - BEND
9. Relaxed Limbs
10. Stroke High For GOOD LENGTH
11. ALWAYS KEEP OPPONENT OUT SIDE THE BASELINE
12. PASS VERY CALMLY DOWN THE LINE OR LOB WELL
13. SERVE - THROW - SWING WELL - BODY WEIGHT - OVER THE SERVICE LINE

ALWAYS BRING A PROPER SWING-FOLLOW THROUGH
RALLY — RALLY — RALLY HIGH
AVOID THE NET- AVOID GERK
GET NEAR AND UNDER THE
BALL - BEND - BEND - BENT
KEEP IN MIND THE COOL
AND STROKING PICTURE
OF KRISH IN MIND-
PLAY ALL COURT GAME
REMEMBER YOU YOURSELF
HAVE PLAYED AND WON GREAT
FINALS WHICH HAVE BEEN
ACKNOWLEGED NEAR WORLDCLSS
GOOD LUCK AND
MY BLESSINGS ARE WITH YOU

के साथ फाइनल मैच खेल रही थीं। किरण 6-3 और 3-1 से आगे थीं। आराम के दौरान वह खिलाड़ी अपने मुंह को कुछ ऐसे सिकोड़ लेती जिससे किरण उसके आंसू देख लें और किरण ने उसे उत्साहित करने का प्रयास किया। किरण के पिता को किसी गड़बड़ी का एहसास हुआ, वह उठे और किरण के पास जाकर उसे चेतावनी दी। आस्ट्रेलियाई खिलाड़ी ने अम्पायर से शिकायत कर दी कि किरण सहायता ले रही है। किरण 6-3, 3-6 और 4-6 से मैच हार गईं। उस शाम किरण अपने आपसे शर्मिन्दा होने के कारण जी भर के रोईं।

अगले ही सप्ताह पंजाब स्टेट चैंपियनशिप के लिए चंडीगढ़ में किरण ने उसी प्रतिद्वंद्वी का सामना किया। इस बार किरण उससे एक शब्द भी नहीं बोलीं, बस रैकट अपना काम बखूबी करता रहा। किरण ने उसे छः शून्य से करारी मात दी, यद्यपि खेलते समय किरण ने जो सोने की चेन पहन रखी थी वह कहीं गुम हो गई। पर इस विजय की खुशी में इससे कोई अंतर नहीं आया।

सोलह वर्ष की आयु में ही किरण राष्ट्रीय जूनियर चैंपियन बन गईं। किरण सात वर्ष की थीं,

जब उनके पिता ने उन्हें टेनिस खेलने के लिए प्रोत्साहित किया। वह दुबली-पतली-सी काली लड़की अपने बालों की कसकर चोटी अथवा पोनीटेल बनाती जिससे कि बाल आँखों के सामने न आएं। बालों को प्रतिदिन धोने और बाँधने में किरण झुँझला उठती थीं, शायद इसीलिए वह एक दिन उठीं, सामने नाई की दुकान पर गईं और बाल उस ढंग से कटवा लिए जैसे वह अब तक रखे हुए हैं। किरण को बताया गया कि इसे बॉय-कट कहा जाता है।

अमृतसर से बाहर किरण ने अपना प्रथम टूर्नामेंट चौदह वर्ष की उम्र में खेला। वह मैच दिल्ली जिमख़ाना कोर्ट में वर्ष 1964-65 में राष्ट्रीय चैंपियनशिप के लिए खेला गया। अमृतसर में जिस कोर्ट में किरण टेनिस खेलती थीं वहां के माली का बेटा ओमप्रकाश किरण के प्रथम प्रयास में उसका साथ देता था। एकदम बेदाग़, कड़क, सफ़ेद खादी की फ्रॉक पहने किरण का मुकाबला श्री विल्स के साथ था, जिन्हें विम्बलडन में खेलने का अनुभव और श्रेय प्राप्त था। यह बात पहला मैच खेलने वाले किसी भी खिलाड़ी को भयभीत करने के लिए काफ़ी थी। कलाई का अच्छा प्रयोग करने के बावजूद, कमज़ोर कंधों के कारण किरण यह मैच 0-6 और 1-6 से हार गईं, किंतु विम्बलडन के खिलाड़ी से लोहा लिया-यह सोचकर किरण प्रसन्न थीं। इसके दो वर्ष पश्चात ही वह राष्ट्रीय जूनियर चैंपियन बन गईं।

खेल के सिलसिले में किरण ने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक यात्राएं कीं, और वह भी रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे में। कई बार उसे डिब्बे के शौचालय के सामने अपने सामान पर बैठकर भी यात्रा करनी पड़ी। उन दिनों भारतीय टेनिस के खेल में बताने योग्य पैसे भी नहीं मिलते थे और लिंगभेद का बोलबाला था। मामूली से यात्रा-भत्ते के लिए भी किरण को संघर्ष करना पड़ता था और यह पैसा भी किरण अपनी माता को दे देती थीं। 1968 में जब किरण को राष्ट्रीय स्तर का ख़िताब मिला तब कहीं पहले दर्जे की यात्रा और 30 रुपये प्रतिदिन के भत्ते का लाभ हुआ। उन दिनों किरण ने अकेले और सामूहिक रूप में खूब यात्राएं कीं और शयनशालाओं में रहीं। बाद में उन्हें अच्छे होटलों में अलग कमरे में रहने की सुविधा प्राप्त हुई। किरण, विजय और आनंद अमृतराज, गौरव मिश्रा, जयदीप मुखर्जी, तथा प्रेमजी लाल की समकालीन थीं। वह उन्हीं कोर्टों में खेलती थीं, जहां नस्तासे और आयन तिरिआक और फ्रेड स्टौल लगातार भारत में आकर खेलते थे।

किरण टेनिसकोर्ट में अथवा यात्राओं में जो समय व्यतीत करती थीं उसके कारण उनकी शिक्षा में कोई रुकावट नहीं आई। उनके जीवन में टेनिस को निश्चित स्थान प्राप्त था किंतु किरण ने उसे उच्च प्राथमिकता नहीं दी। वह जानती थीं कि यह एक अल्पकालीन व्यवसाय है, और उनकी नज़र ऊँचे सरकारी ओहदे को पाने पर टिकी थी।

किरण ने तेरह से तीस वर्ष की आयु तक टेनिस प्रतियोगिताओं में भाग लिया। तब तक वह नौकरी पर लग चुकी थीं। अपनी पुलिस ट्रेनिंग के दौरान किरण भारत की दूसरे नंबर की खिलाड़ी थीं। माउण्ड आबू में ट्रेनिंग के दिनों में किरण ने समाचार पत्र में पढ़ा कि श्रीलंका में फोन्सेका ट्रॉफी के लिए भारत-श्रीलंका महिला टूर्नामेंट आयोजित होगा और इस टूर्नामेंट में भाग लेने वाली भारतीय महिला टीम को घोषणा कर दी गई है। किरण का नाम टीम में नहीं था।

क्रोधित किरण ने अधिकारियों के पास विरोधपत्र भेजे, अधिकारियों ने समझाया कि हमारा अंदाज़ा था कि सर्विस में होते हुए शायद आप खेलना पसंद नहीं करेंगी। उस समय जब टीम की सदस्य लड़कियां उदयाकुमार, निरुपमा, वसंत मांकड, सूसन दास भारतीय लॉन टेनिस प्राधिकरण के तत्त्वावधान में प्रशिक्षक और कोच के निर्देशन में अभ्यास कर रही थीं, तो दूसरी ओर किरण राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के तत्कालीन निर्देशक एस. जे. गोखले अथवा अपने सहकर्मी संजीव त्रिपाठी के साथ या फिर अकेले ही दीवार (जो विशेष रूप से उन्हीं के लिए बनवाई गई थी) को लक्ष्य बनाकर अभ्यास कर रही थीं। अंतत: किरण श्री लंका टीम की सदस्य में रूप में गईं, उन्होंने अपने मैच जीते, भारतीय टीम ने सामूहिक रूप से अच्छा प्रदर्शन किया और ट्रॉफी हासिल कर भारत लौटीं।

किरण का विश्वास है कि जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण और नीतियों का विकास टेनिस के माध्यम से हुआ। इस खेल ने उन्हें वह अनुभव दिया जो कोई पुस्तक नहीं दे सकती थी। शिक्षा और खेल, दोनों को साथ-साथ तभी बढ़ाया जा सकता है, जब हम एकचित्त होकर दोनों क्षेत्रों में सफलता-प्राप्ति के लिए कटिबद्ध हों। तब हमें जीवन में अन्य मनोरंजनों से वंचित रहना होगा, अन्य प्रकार के मनोरंजन के अवसर जीवन में आगे पर्याप्त आएंगे, क्योंकि जब नींव बन रही हो और संघर्ष का दौर चल रहा हो तो दूसरे सभी मनोरंजनों को मनोयोगपूर्वक भूल जाना चाहिए। किरण जानती थीं कि इस परिश्रम, लगन और मेहनत का पूरा-पूरा फल एक दिन मिलेगा।

टेनिस ने किरण को परिश्रम की कीमत तथा दिमाग़ी और शारीरिक रूप से मज़बूत होने की जरूरत से परिचित करवाया। अक्सर वह अंत:करण में झाँकती और केवल विजय के ही विषय में सोचतीं। अपने-आपको शारीरिक रूप से चुस्त रखने के लिए वह दिन में कई मील दौड़ लगातीं और समय को समझदारी से शिक्षा और गंभीर परिश्रम वाले खेल के बीच बांटकर व्यस्त रहीं। जो आत्मविश्वास किरण के व्यक्तित्व से टपकता था वह स्वयं प्रशिक्षण का परिणाम था। किरण निष्पक्ष खेल, टीम-वर्क, तल्लीनता, अश्रान्ति, सहनशक्ति, दृढ़ता और सबसे अधिक दबाव और थकावट की हालत में भी कुछ-न-कुछ कर गुज़रने जैसे अपने गुणों को टेनिसकोर्ट में व्यतीत किए इतने वर्षों का परिणाम मानती हैं।

किरण उन दिनों को याद करती हैं जब उन्हें लिंग-भेद और वर्ग-भेद का बराबर सामना करना पड़ता था। पुरुषों को महिलाओं से अधिक पैसा मिलता था, इस पर भी महिलाओं को अपने अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ता था। महानगरों के महिला खिलाड़ियों को अधिक बराबरी का दर्जा प्राप्त था, उदाहरण के लिए अमृतसर को शहरी ग्राम माना जाता था। महिलाओं के विरुद्ध पक्षपात की पोल इस एक बात से ही खुल जाती है कि किरण पंजाब टेनिस एसोसिएशन के सचिव शमशेर सिंह को अंकल कहती थीं और यही अंकल किरण को रेलवे रिआयतपत्र देने के लिए घंटों बाहर प्रतीक्षा करवाते थे। किरण अपने भाग्य को सराहतीं कि उन्होंने कमरे के बाहर बैठने के लिए कम-से-कम एक लकड़ी का बैंच तो रखा है। यही ग्लानि भरी प्रतीक्षा थी कि किरण ने शपथ ली थी कि अगर मैं कभी किसी को कुछ देने की स्थिति में हुई तो मैं कभी उस इन्सान को प्रतीक्षा नहीं करवाऊँगी।

सन् 1966 में, जब वह राष्ट्रीय जूनियर चैंपियन थीं, यह परंपरा थी कि जूनियर चैंपियन विम्बलडन में देश का प्रतिनिधित्व करेगा। लेकिन उस समय इसी अंकल ने अपने निहित स्वार्थो के कारण किरण की यात्रा रद्द कर दी।

आजकल भी खिलाड़ी अपनी-अपनी एसोसिएशनों के विरुद्ध जो बयान देते हैं, उससे पता चलता है कि उनमें से अधिकांश में आज भी राजनीति का ही बोलबाला है। यह स्थिति निस्संदेह दु:खद है क्योंकि आयोजक और चुनाव अधिकारियों के दांव-पेंच के कारण खिलाड़ी का पूरा भविष्य संकट में पड़ सकता है।

किरण ने टेनिस से एक सबक यह भी सीखा कि 'लोग क्या कहेंगे' के डर को अपने हितों पर कभी हावी न होने देने की क्षमता विकसित करना ज़रूरी है। एक लड़की, जो अपने लक्ष्य के लिए कठिन परिश्रम कर रही थी, कभी-कभी शादी-ब्याह में भी खेल की पोशाक में ही चली जाती, घर जाकर कपड़े बदलने या तैयार होने में उसका वह कीमती समय बर्बाद होता जो टेनिस के लिए था, जिसे वह किसी भी कीमत पर व्यर्थ गंवाना नहीं चाहती थी। इतनी छोटी-सी आयु में इतनी सारी उपलब्धियों ने किरण में आत्मविश्वास भर दिया था, वह अपने आपको किसी से हीन नहीं समझती थीं क्योंकि वह जानती थीं कि उनकी उपलब्धियां दूसरों के मुकाबले अधिक हैं। किरण के परिवार को टेनिस फैमिली की मान्यता मिल गई थी जिसने पंजाब के लिए जयपत्र प्राप्त किया था। किरण ने पंजाब के लिए स्टेट उपाधि, ज़ोनल उपाधि, राष्ट्रीय उपाधि और अंत में एशियन टाइटल प्राप्त की। अपनी बहन रीता के साथ तीन बार किरण ने इंटरयूनिवर्सिटी चैंपियनशिप जीती। पेशावारिया बहनों में सबसे छोटी अनु बाद में तीन वर्ष के लिए राष्ट्रीय चैंपियन रही, यही नहीं उसने यूनिवर्सिटी, स्टेट और एशियन चैंपियनशिप के साथ-साथ यूनिवर्सियाड और विम्बलडन में खेलने का श्रेय भी प्राप्त किया।

अनु के पुत्र आदित्य ने भी अमेरिका में कई टूर्नामेंट जीते हैं, जबकि अनु अब पेशे से एक वकील हैं। वहीं दूसरी ओर, किरण की टेनिस साथी, छोटी बहन रीटा ने विशेष शिक्षा के क्षेत्र में लेखन द्वारा नाम कमाया है। वे मानसिक विकलांगता के क्षेत्र में, एक अच्छी वक्ता हैं। ऐसा लगता है कि परिवार में टेनिस ने सभी लड़कियों को चैंपियन बनने की प्रेरणा दी है।

4

विवाहः अपने समय से कहीं आगे

अमृतसर टेनिसकोर्ट में ही किरण की भेंट, एक टैक्सटाइल इंजीनियर बृज बेदी से हुई। किरण व बृज, दोनों के पिता, शहर के सर्विस क्लब के सदस्य थे। बृज व किरण फैलो टेनिस खिलाड़ी थे। किरण राष्ट्रीय स्तर की खिलाड़ी थीं जबकि बृज विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ी थे। वे किरण के खेल के स्तर, वचनबद्धता व निजी अनुशाासन के लिए अक्सर उनकी सराहना करते। टेनिस की दोस्ती गहराने लगी और स्थायी संबंध में बदल गई। अमृतसर में, एक सादे समारोह में, वे दोनों परिणय सूत्र में बँध गए। 9 मार्च, 1972 को उनके माता-पिता व आत्मीय जन, दोपहर दो बजे, शिव मंदिर में पहुँचे। वहाँ किरण और बृज ने एक-दूसरे को मालाएँ पहनाकर, पति-पत्नी के रूप में स्वीकार किया। उसी सुबह किरण घर लौट गईं ताकि रोज़ की तरह, माँ के हाथ से दूध का बड़ा गिलास पी सकें और छोटी बहन अनु को सेक्रेड हार्ट कान्वेंट छोड़ सकें। वे अपनी बहन को एहसास नहीं दिलाना चाहती थीं कि दीदी का विवाह होने के बाद, उनका घर बदल गया है, वे बहन के लिए पूरी जिम्मेदारी निभा रही थीं।

फिर किरण अपने स्कूटर से महिला खालसा कॉलेज पहुँचतीं, जहाँ वे स्नातक कक्षाओं को राजनीति विज्ञान पढ़ाती थीं। छात्र व स्टॉफ यह जानकर भौंचक्के रह गए कि उसी सुबह उनकी मैडम का विवाह हुआ था, उन्हें तो किरण में कोई भी बदलाव नहीं दिख रहा था। किरण वैसी ही दिख रही थीं, वे पहले की तरह सादी वेशभूषा में थीं। न कोई गहने, न मेकअप; सब पहले जैसा था। तीन दिन बाद, दोनों परिवारों के संयुक्त रिसेप्शन में, किरण ने जिंदगी में पहली बार साड़ी पहनी।

वे साड़ी के विरुद्ध क्यों? वे कहतीं, “कुछ नहीं, ये तो एक गरिमायी परिधान है, जो स्त्रैण छवि देता है।” प्रश्न पूछा जाता, तो क्या वे स्त्रैण दिखना नहीं चाहती? वे कहतीं, “इसे इस तरह लें कि मुझे इसकी आदत नहीं है, मेरे हिसाब से पोशाक एक निजी मामला है और इससे आपकी मनोवृत्ति प्रतिबिंबित होती है।”

उनसे मिलकर एहसास होता है कि पुरुष-नारी की समानता किसे कहते हैं।

ये एक ऐसा विवाह था, जहाँ एक भी पैसा या मिनट बर्बाद नहीं किया गया था। रिसेप्शन भी दोनों के सांझे खर्च से हुआ थी। इस विवाह में किसी भी तरह का कोई लेन-देन नहीं हुआ था। ये सही मायनों में दो शिक्षित व समान स्तर के व्यक्तियों का विवाह था। किरण सिविल सर्विस की परीक्षा पास कर चुकी थीं तथा चयन की प्रतीक्षा कर रही थीं, जिसका उन्हें पूरा भरोसा था।

वे यह भी जानती थीं वे पारंपरिक लीक से हटकर कुछ नया करने जा रही हैं।

मार्च 1972 में विवाह के पश्चात्, उन्होंने गत वर्ष 16 जुलाई को मसूरी नेशनल एकेडमी (उत्तराखंड का एक हिल स्टेशन) में प्रशिक्षण के लिए रिपोर्ट करके, एक नया इतिहास कायम किया, वे भारतीय पुलिस सेवा में शामिल होने वाली पहली महिला कहलाईं। तीन महीने के फाउंडेशन कोर्स के बाद वे राजस्थान के माउंट आबू में नौ महीने की बेसिक पुलिस प्रशिक्षण के लिए गईं। वे अस्सी युवकों के बैच में अकेली लड़की थीं।

बाकी तो आप सब जानते ही हैं।

पुलिस अधिकारी के रूप में दिया गया पहला साक्षात्कार, जो 20 जुलाई 1973 के हिंदुस्तान टाइम्स में प्रकाशित हुआ था, यहां प्रस्तुत है। यह इस बात का संकेत है कि सेवा के प्रति उनका दृष्टिकोण इतने वर्षों में एक बार भी नहीं बदला है, चाहे उन्हें कितनी ही उथल-पुथल और तूफ़ानों का मुकाबला करना पड़ा।

जनसेवा में विश्वास करने वाली महिला पुलिस अधिकारी

किरण बेदी, भारतीय पुलिस सेवा में पदार्पण करने वाली प्रथम महिला जिसे सुर्ख़ियों में रहने की आदत है, एक विशिष्ट टेनिस खिलाड़ी। जैसा कि आज के साक्षात्कार में उन्होंने बताया, उन्हें सदा कुछ असाधारण करने की इच्छा रही है। उन्होंने विस्तार से समझाया कि यही कारण था कि "मैंने कोई साधारण नौकरी पसंद नहीं की - मुझे चुनौतीपूर्ण काम की तलाश थी।" भारतीय प्रशासनिक सेवा और विदेश सेवा में महिलाओं की भरमार थी।

यह पूछे जाने पर कि क्या वह चाहती हैं कि पुलिस सेवा में भी महिलाएं अधिक हों? श्रीमती बेदी ने कहा, "मैं निश्चय ही उन महिलाओं का आह्वान करूंगी जो शारीरिक रूप से फिट हैं और स्वतंत्र विचारों वाली हैं।"

अपने विषय में बताते हुए उन्होंने कहा, "मेरे माता-पिता ने मुझे स्वतंत्र विचारक होने की सदा प्रेरणा दी और आई.पी.एस. में जाने का निर्णय मेरा अपना था।"

उन्हें विश्वास था कि भारतीय पुलिस सेवा में उन्हें चुनौतियाँ स्वीकार करने और उनका सामना इस रूप में करने तथा अपनी क्षमता प्रदर्शित करने का अवसर मिलेगा जिससे उन्हें पूरा-पूरा संतोष हो।

जहां तक उनका अपना संबंध है, उन्हें जनसेवा से प्यार है और विश्वास है कि वह पुलिस सेवा के लिए ही बनी हैं।

श्रीमती बेदी ने, जिन्होंने पिछले वर्ष अमृतसर के संभ्रांत बिज़नेसमैन से विवाह किया,

कुछ लजाते हुए बताया कि अपने पति की प्रेरणा से ही मैं भारतीय पुलिस सेवा में आ सकी, और जहां तक मैं जानती हूं मेरे पति अत्यंत प्रेरणादायी इन्सान है।

वह अपने परिवार की देखभाल कैसे करेंगी? किरण के विचार से इसमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए क्योंकि हममें से किसी को कोई भी काम करने से परहेज़ नहीं है।

उन्होंने यूनियन टैरीटरी काडर का चुनाव किया है, इसलिए श्रीमती बेदी जानती हैं कि काफ़ी दिनों तक उन्हें परिवार से अलग रहना पड़ेगा। उन्हें आशा है कि उनकी प्रारंभिक नियुक्ति घर के आसपास होगी। बच्चे की योजना उन्होंने एक-दो वर्ष के बाद ही बनाई थी।

स्कूल के दिनों से ही अमृतसर में टेनिस खेलते-खेलते किरण पेशावरिया एक प्रसिद्ध नाम हो गया था, जो समाचारपत्रों के खेल-पन्नों की सुर्खियों में अक्सर दिखाई पड़ता था। वस्तुत: इतनी श्रमसाध्य टेनिस ही माउण्ट आबू में किरण को इतना सख्त शारीरिक प्रशिक्षण प्राप्त करने में सहायक हुईं।

अगले महीने दो अन्य भारतीय महिलाओं सहित किरण सिलोन के विरुद्ध कोलम्बों में टेनिस मैच खेलने के लिए चुनी गई हैं। किरण को विश्वास है कि उनकी पुलिस सेवा जिला-स्तर पर महिलाओं में टेनिस को लोकप्रिय बनाने में सहायक होंगी।

पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ से एम. ए. (पॉलिटिकल साइंस) में प्रथम आने वाली श्रीमती बेदी का विचार है कि पुलिस में महिला अधिकारियों का योगदान अति उत्तम रहेगा क्योंकि वे मूल रूप से सहृदय और स्नेहमयी होती हैं।

किरण केंद्रशासित प्रदेश के सक्रिय सदस्य के रूप में थीं और वे अपने राज्य तथा जन्म स्थान से दूर कार्य करती रहीं। इस स्थिति का अर्थ था कि अपने राज्य में कार्य करने का अवसर नहीं मिला। इसका स्पष्ट अर्थ था कि उनके लिए तीन घर हैं, उनका अपना, उनके पति का, उनके माता-पिता का। उन्होंने फिर भी इस पहलू को अपनी सेवा के आड़े नहीं आने दिया। वे अक्सर कहतीं कि परिवार का समर्थन उनके लिए किसी आशीर्वाद से कम नहीं था।

उनकी जीने की गैर पारंपरिक शैली में, उनके अपने घर के अलावा माता-पिता व सास-ससुर का घर भी शामिल था। इस जीवन शैली ने एक भारतीय कामगार महिला के लिए नए रास्ते खोले। उन्होंने जीने व काम करने के नए चलन बनाए और एक नई सोच को जन्म दिया। 19 सितंबर, 1975 में वे माँ बनीं, किरण के माता-पिता, उनके नियुक्ति स्थल दिल्ली आए तो उन्हें एहसास हुआ कि किरण को पुलिस की नौकरी व बिटिया, दोनों को संभालने के लिए उनकी मदद की कितनी जरूरत थी। किरण ने भी उन्हें अमृतसर नहीं जाने दिया। उन्होंने बहन अनु को भी दिल्ली आने को कहा ताकि वह टेनिस के लिए बेहतर सुविधाएँ पा सकें। जब पूरा परिवार वहाँ आ गया तो गतिविधियों का केंद्र बन गया। बृज भी किरण के फैसलों की कद्र करते थे, उन्होंने अमृतसर में ही रहकर अपना काम व घरेलू मामले संभालने का फैसला किया।

आज किरण कहती हैं- “मैं अपनी शर्तों पर जीने के लिए दृढ़ संकल्प थी। मुझे बचपन से ही ये नजरिया दिया गया था कि मैं न तो किसी पर निर्भर रहूँ और न कोई घरेलू चीज बनकर रह जाऊँ, मुझे अपनी मर्जी से ऊँची उड़ान भरने की इजाजत थी लेकिन इसके साथ ही मैं उनके साथ खुशियाँ बाँटना चाहती थी; जो मेरे अपने थे, जिन्हें मैं स्नेह व आदर-मान देती थी।’’

किरण ने जीवन की नई चुनौतियों को अपनाया, तो उनके इन शब्दों ने छोटे से परिवार के परे जाकर, एक नया विस्तार पा लिया।

5

मदर टेरेसा का स्नेहालिंगन

2002 में किरण, भारत की सबसे ज्यादा सराही जाने वाली महिला तथा सबसे ज्यादा प्रशंसा पाने वाली पांचवी भारतीय बनीं (15 सितंबर 2002, को 'द वीक' पत्रिका द्वारा आयोजित सर्वे व वोट के अनुसार) उन्होंने अपने क्षेत्रों की महान हस्तियों के मुकाबले, काफी बड़ी संख्या में वोट पाए। वोट संख्या इस प्रकार थी: किरण बेदी: 466 वोट, लता मंगेशकर 385 सोनिया गांधी 261 व सुषमा स्वराज 253। वे हिंदी के दैनिक समाचार-पत्र 'हिंदुस्तान' द्वारा, 2009 में सबसे लोकप्रिय 'समाज-सेविका' के रूप में भी चुनी गईं।

किरण अनेक फ़िल्मों के लिए आदर्श मॉडल बन गई थीं। उनके चरित्र से संबंधित पहली फ़िल्म तेलगू भाषा में बनी- 'कर्तव्यम्'। बाद में तमिल में इसका अनुवाद हुआ जिसका नाम था- 'विजयशांति आई. पी. एस.'। इस फ़िल्म में स्वयं विजयशांति ने किरण बेदी की भूमिका और फ़िल्म को राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। किरण इस फ़िल्म के मुहूर्त के अवसर पर उपस्थित थीं और उन्होंने नायिका को वर्दी में निर्दोष दिखाने के लिए कुछ सुझाव भी दिए थे। जैसा कि शीर्षक से संकेत मिलता है, इस फ़िल्म में कर्तव्य के प्रति अधिकारी की लगन और समर्पणभाव दर्शाया गया है। फ़िल्म को दक्षता से बनाया गया है- इसके पुरस्कृत होने का यही कारण था। किरण के जीवन से संबंधित 'तेजस्विनी' फ़िल्म बनी तथा 'स्त्री' और 'इंस्पेक्टर किरण' नाम से टी.वी. सीरियल भी बने। किरण के साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार, अनुसंधान तथा समाचारपत्रों में प्रकाशित आलेखों के आधार पर ही ये फ़िल्में और सीरियल बने। जनता के हृदय में किरण की जो छवि है, उसी को पर्दे पर उतारने का सफल प्रयास किया गया। पत्र-पत्रिकाओं में की गई समीक्षा तथा जनता की प्रतिक्रिया से स्पष्ट हो जाता है कि इन फ़िल्मों में किरण का जो रूप दिखाया गया है वह स्वीकार्य है।

फ़िल्मों और सीरियलों में किरण के जो उत्कृष्ट गुण उभरकर सामने आते हैं वे सत्य-निष्ठा पर केंद्रित हैं। इन फ़िल्मों में किरण को तथाकथित अपराधियों को निष्पक्ष न्याय दिलाने वाली और कानून की रक्षक के रूप में दिखाया गया है। इनमें यह भी दिखाया गया है कि अपराधी व्यवसायियों और भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के अत्यधिक दबाव के बावजूद किरण को जब यह विश्वास हो कि वह सच्ची हैं तो वह मात्र अपने दृढ़ निश्चय, दृढ़ संकल्प तथा समझौता न करने की कठोर प्रवृत्ति के कारण चक्रव्यूहों से साफ़ बच निकलती रहीं। जहां तक भावुकता का प्रश्न है, किरण के अंतहीन संयम को इन फ़िल्मों में प्रधानता दी गई है।

पूछे जाने पर कि फ़िल्मों में अपनी छवि उन्हें कैसी लगती है, किरण का कहना है कि अतिश्योक्तियों के अलावा, जो कि फ़िल्म बनाने वालों का दस्तूर है, चित्रण यथार्थवादी है। वह हंसते हुए कहती हैं कि निर्देशकों ने नायिकाओं को काफ़ी दुबला-पतला रखा है, किंतु करतब

दिखाने के मामले में वे मुझसे बाज़ी मार ले गईं।

अपने अतीत में वस्तुस्थिति को संभालने की बात जब वह आज स्मरण करती हैं, तब वह महसूस करती हैं कि ज़रा से व्यवहार-कौशल से वह अनेक दबावों और तनावों से बच सकती थीं। उदाहरण के लिए, दिल्ली में भारतीय जनता पार्टी से जुड़ी एक घटना को ही ले लीजिए- ''नेता मुस्लिम-प्रधान क्षेत्रों की गलियों से जुलूस निकालना चाहते थे और मैं यह कहना नहीं चाहती थी कि इस कारण जातीय दंगे निश्चित रूप से होंगे, समस्या खड़ी हो जाएगी तथा स्थिति बेकाबू हो सकती है, लेकिन मैं यह जानती अवश्य थी। हो सकता है कि मैं उन्हें कार्रवाई जारी रखने की आज्ञा दे देती और आवश्यकता पड़ने पर पुलिस बल का प्रयोग करती। यह भी संभव है कि मैं इसे मात्र एक राजनीतिक घटना मान लेती और आगामी विरोधों और धरनों की बाढ़ को टाल देती।''

इसके पश्चात वकीलों की हड़तालों के मामले में (देखें अध्याय 11) किरण की कोई भूमिका न थी। समस्या तब सामने आई जब न्यायालय के एक पूर्व आदेश के अनुसार विशिष्ट परिस्थितियों के अतिरिक्त हथकड़ी के प्रयोग पर प्रतिबंध था और एक सब-इंस्पेक्टर ने एक वकील को डी.टी.सी. की बस में ले जाते समय हथकड़ी पहना दी। उस सब-इंस्पेक्टर के निलंबन की मांग की जा रही थी। तत्कालीन एडीशनल पुलिस कमिश्नर राजेन्द्र मोहन ने भी यही सिफ़ारिश की कि वह उस आदमी को मुअत्तिल कर दें, और जब मामला कुछ ठंडा पड़ जाए तो उसे वापस ले सकती हैं। नि:संदेह यह एक समझदारी का परामर्श था। किरण ने ईमानदारी की भावना को अपनी प्रतिक्रिया पर हावी होने दिया और कहा कि सब-इंस्पेक्टर अकेला था और अपराधी के संदेहास्पद पूर्वचरित्र के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध थे, सब-इंस्पेक्टर सार्वजनिक वाहन में यात्रा कर रहा था इसलिए अपराधी की न्यायालय में उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए हथकड़ी लगाने के अलावा कोई चारा नहीं था। कचहरी का पहला निर्णय धमकी की संभावना पर आधारित था और अधिकारी के अनुसार यह स्थिति इस मामले में भी मौजूद थी। वह अपनी ज़िद पर टिकी रहीं और बड़ी तेज़ी से वकीलों द्वारा जारी आंदोलन के दलदल में फंस गईं। यह बेशक एक विवाद का विषय है कि जहां वह एक व्यक्ति को न्याय दिलवाने का माध्यम बनीं, वहीं उन्होंने सैकड़ों-हज़ारों लोगों के मामलों के लिए पूरे देश में गतिरोध उत्पन्न कर दिया। आज हम कह सकते हैं कि शेष घटनाएं उनके हक में न घटीं।

लेकिन एक तथ्य साफ़ उभरकर सामने आता है कि उनके जिस फ़ैसले से वकील नाराज़ हुए वह उन्होंने अपने लिए, बल्कि अपने कार्यालय के एक कनिष्ठ कर्मी के लिए लिया था, एक ऐसे कर्मी को न्याय दिलाने के लिए जिसने ईमानदारी से अपनी ड्यूटी निभाई थी। किरण का मानना है कि चाहे कोई भी मजबूरी क्यों न हो अपने कर्तव्य-पालन के लिए किसी को कभी भी दंडित नहीं किया जाना चाहिए।

प्रधानमंत्री की मोटरकार को गलत जगह पर खड़ा पाकर, सब-इंस्पेक्टर निर्मल सिंह (देंखे अध्याय 6) खिंचवाकर ले गया था तब भी किरण ने उसका समर्थन किया था।

न्याय को प्राथमिकता देने वाली किरण एक संवेदनशील व्यक्ति हैं, यही तत्त्व उनके व्यवहार

के लिए ज़िम्मेदार है। आज भी लोग उनके पास ऐसे मामलों में मदद माँगने के लिए आते हैं जो उनके कार्यक्षेत्र से बाहर के होते हैं। पतियों की सताई महिलाएं उनके पास मदद मांगने आती हैं। निराधार गिरफ़्तारियों की शिकायतों में उनसे हस्तक्षेप करने का निवेदन किया जाता है। वह कनाट प्लेस खरीदारी करने बहुत कम जाती हैं, लेकिन ऐसे मौकों पर बूट पालिश करके अपना जीवन-निर्वाह कर रहे बच्चे उन्हें घेरकर अपनी दु:खभरी दास्तान सुनाते हैं।

जब किरण डी. सी. पी. (पश्चिम) थीं तो उन्होंने लोगों को आश्वासन दिया था कि उनके इलाक़े में एक भी गिरफ़्तारी बेवजह नहीं होगी। अपराधी की सज़ा काटकर जेल से तत्काल छूटे एक व्यक्ति ने नया जीवन शुरू किया था। अपराध की दुनिया में लौटने के स्थान पर वह सब्ज़ियां बेचने लगा था। दक्षिण दिल्ली में हुई एक डकैती के बाद इस व्यक्ति को उसके रिकार्ड के आधार पर दक्षिण दिल्ली की पुलिस पकड़कर ले गई। नाते-रिश्तेदारों ने किरण से वादाखिलाफ़ी की शिकायत की तो उन्होंने समझाया कि यह मामला उनके कार्यक्षेत्र से बाहर का है। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि वह तथ्यों की पुष्टि के लिए जांच करवाएंगी। किरण को पता चला कि मामला सचमुच ही निराधार गिरफ़्तारी का है। वह विवरण लेकर पुलिस कमिश्नर पी. एस. भिंडर से मिलीं और निवेदन किया कि मामले की जांच दोबारा की जाए। लेकिन भिंडर ने किरण पर हस्तक्षेप और दखलअंदाज़ी का आरोप लगाकर उनकी बात सुनने से मना कर दिया। भिंडर ने किरण से कहा कि डी. सी. पी. (दक्षिण) बलवंत सिंह ने अपनी रिपोर्ट दे दी है और उनके अद्भुत काम के लिए उनकी सिफ़ारिश भी की गई है। दक्षिण जिला पुलिस के अनुसार मामले को 24 घंटों में हल कर लिया गया था। अभियुक्त को किरण द्वारा की गई जांच का लाभ मिला ज़रूर लेकिन तब जब वह अपनी पत्नी, अपना बच्चा और कुछ समय के लिए अपनी आज़ादी खो चुका था।

अभियुक्त की पत्नी अपनी गर्भावस्था के अंतिम दिनों में थी, वह अपने पति की गिरफ़्तारी का आघात न सह पाई और उसका देहांत हो गया। प्रचार-प्रसार माध्यमों को इस मामले की जानकारी थी। उन्होंने इस घटना को मानवहित का विषय बनाकर समाचारपत्रों में प्रकाशित किया। उन्होंने स्वयं भी मामले की जांच की और दक्षिण जिला पुलिस की अकुशलता का पर्दाफ़ाश हो गया। इस तरह अभियुक्त को रिहा कर दिया गया।

संभवत: किरण के भीतर छिपा यही अनुकंपा-भाव है जिसे मदर टेरेसा ने पहचाना है। जब किरण तिहाड़ की महानिरीक्षक थीं तब मदर ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। किरण उनसे उनके आश्रम जाकर मिली थीं। वहां दो-एक बार मदर ने उन्हें आंलिंगन में बांधा था। जब इस भेंट के बाद किरण लौट रही थीं तो पीछे से मदर ने उन्हें रुकने को कहा, किरण रुककर जैसे ही घूमीं तो क्या देखती हैं कि मदर अपनी सुकुमार, छोटे कदवाली काया सहित उनकी ओर लगभग भागती हुई आ रही हैं, और वह भी नंगे पांव। नज़दीक पहुँचकर मदर ने किरण को तीसरी बार बाँहों में भर लिया। किरण की आँखों में फैली हैरानी के उत्तर में मदर ने केवल इतना ही कहा था, ''बस, एक बार और अपनी बाँहों में तुम्हें भर लेने का मन किया था मेरा।'' संभवत: मदर ने किरण के भीतर व्याप्त संवेदनशीलता को महसूस कर लिया था।

6

'क्रेन' बेदी

सन् 1982 में, दिल्ली में आयोजित एशियाई खेल, पूरे भारत के लिए सम्मान का प्रतीक, मील के पत्थर थे। संभवत: नियति को यही मंजूर था कि किरण उस समय दिल्ली ट्रैफिक पुलिस में हों। उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध अक्टूबर 1981 में डी. सी. पी. (ट्रैफिक) नियुक्त किया गया। यद्यपि उन्हें यह जिम्मेदारी, समारोह की निश्चित तिथि के आस-पास ही दी गई, लेकिन उन्होंने एक निर्भीक व जाबांज नेता के रूप में इसे निभाया और अपने करियर की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बना दिया।

कोई कल्पना तक नहीं कर सकता था कि केवल कुछ सप्ताह में, अपने कठोर प्रयासों व लगन के बल पर वे ट्रैफिक को नियंत्रित कर लोगों का दिल जीत लेंगी व किरण बेदी की बजाए 'क्रेन बेदी' के नाम से पुकारी जाने लगेंगी।

किरण ने घड़ी के काँटे के साथ, अपनी ऊर्जा का अधिकतम उपयोग किया। हर सुबह दिल्ली की सड़कों पर निकलना शुरू किया तो उन्हें एहसास हुआ कि उन्हें कितने भीमकाय जंतु से निपटना है। उन्हें तयशुदा समय में ही एशियाई खेलों के हिसाब से सारा यातायात प्रबंधन करना था पूरे शहर में बन रहे, उन्नीस खेल स्टेडियमों व फलाईओवरों ने अस्त-व्यस्त यातायात को और भी बुरा रूप दे दिया था। दिल्ली का यातायात पूरी तरह से बाधित व नियंत्रण से बाहर था। ऐसा इसलिए था कि कभी भी ट्रैफिक पुलिस की नियुक्ति को गंभीरता से नहीं लिया गया था। न तो किसी प्रकार के जुर्माने की व्यवस्था थी और न ही लोगों को कानून का डर, इसलिए लोग यातायात पुलिस को तो कुछ मानते ही नहीं थे। ये आपस में लेन-देन का एक बढ़िया माध्यम था और नियम तोड़ने वाले अपनी-अपनी पहुँच का पूरा लाभ उठाते थे।

दिल्ली के तत्कालीन लैफ्टिनेंट गवर्नर एस. एल. खुराना ने किरण को स्वयं यह नियुक्ति दी, जो कि भ्रष्टाचार का अखाड़ा बन चुकी थी। वे उस समय की यादों में डूब जाती हैं। उन्हें लैफ्टिनेंट गवर्नर ने ऑफिस में बुलाकर कहा, किरण! मैं चाहता हूँ कि तुम दिल्ली पुलिस यातायात प्रमुख बनो। तुम एशियाई खेल यातायात का प्रबंधन करोगी। खेल, एक साल बाद है", वे हैरान रह गईं, उन्होंने तो सुन रखा था कि तत्कालीन पुलिस कमिश्नर के किसी निकटतम को वह पद दिया जा रहा है। लेकिन लैफ्टिनेंट गवर्नर ने खुद फैसला लिया। किरण ने कहा भी कि वे दिल्ली की सड़कों के बारे में कुछ अधिक नहीं जानतीं, हो सकता है कि वे इस पद के लिए उपयुक्त न हों लेकिन लैफ्टिनेंट गवर्नर अपना मन बना चुके थे और उनके अपने कारण थे। सबसे खास तो यही था कि ट्रैफिक इकाई में पनप रहे भ्रष्टाचार पर रोक लग सके।

इस चुनौती का सामना करने के लिए किरण सुबह पाँच बजे उठकर अपने दफ़्तर का काम

छः से सात बजे तक करतीं। दफ़्तर से जारी होने वाले सब पत्रों और कर्मचारियों के लिए स्पष्ट आदेशों को डिक्टोफोन में रिकार्ड कर देतीं। आठ बजने तक वह अपनी सफ़ेद एम्बैसडर में दिल्ली की सड़कों पर निकल जातीं। गाड़ी में लगे लाउडस्पीकर पर महिला-स्वर सुन मोटर चालक न सिर्फ़ प्रभावित होते, बल्कि उनके आदेशों का पालन भी करते। इस दौरान वह चौराहों पर लगे सिग्नलों की समयबद्धता की जांच करतीं और पटरियों या सड़क के किनारे पार्क की गई गाड़ियों की जांच करवाकर उन्हें वहां से जल्दी-से-जल्दी हटवा देतीं। इसके बाद वह उन कर्मचारियों के नामों की सूची प्राप्त करतीं जो ड्यूटी से ग़ैरहाज़िर होते। दिल्ली की सड़कों पर खड़ी की गई ऐसी गाड़ियों को, जो बिगड़ गई होतीं, किरण तुरंत उठवा देतीं। बहुत जल्द किरण ने महसूस किया कि दिल्ली की सड़कों पर लाउडस्पीकर पर आदेश दे-देकर उन्होंने अपना गला ख़राब कर लिया है। तब रोज़ रात को माताजी से और बेटी की आया से गले की मालिश करवाने के अलावा किरण ने चेतावनी देने के लिए अपने एक अधिकारी शकुंतला खोखर की मदद लेनी शुरू कर दी।

साढ़े बारह बजे किरण अपने कार्यालय पहुंचकर फाइलें देखतीं, अंतर्विभागीय बैठकों में भाग लेतीं, प्राप्त हुए दूरभाष-संदेशों के उत्तर देतीं और आगंतुकों से मिलतीं। उन दिनों दिल्ली नगर निगम सड़कों और फ़्लाइओवरों का निर्माण कर रहा था। दिल्ली विद्युत प्रदाय संस्थान (डेसू) बिजली के खंबे लगाने और केबल बिछाने के काम में लीन था। दिल्ली विकास प्राधिकरण (डी. डी. ए.) निर्माण-कार्य के लिए इस्तेमाल की जा रही ज़मीन के लिए ज़िम्मेदार था और इस महत्त्वपूर्ण काम को अंजाम देने के लिए इन सबके ऊपर थे राष्ट्रीय परिवहन, योजना और अनुसंधान केंद्र (एन. टी. पी. आर. सी.) के व्यावसायिक सलाहकार डी. सान्याल। किरण को विश्वास था कि यातायात इंजीनियरिंग, योजना और प्रबंध की समस्याएं कक्षों में आयोजित बैठकों के माध्यम से हल नहीं की जा सकतीं। उन्होंने सुझाव रखा कि कारचालकों के वास्तविक व्यवहार का आकलन सिर्फ सड़कों पर, प्रत्यक्ष रूप से मौजूद रहकर देखकर ही किया जा सकता है। उनके प्रस्ताव को सबने स्वीकार कर लिया।

एक चार्टर्ड बस में बैठकर ये लोग एक जगह से दूसरी जगह जाते और मौके पर निर्णय लिए जाते और सुधार किए जाते। इस 'पहियों पर सरकार' ने समानधर्मी दल के रूप में कार्य करते हुए आम तौर पर होने वाले अन्तर्विभागीय झगड़ों और पारस्परिक असहयोग की प्रवृत्ति से अपने को भरसक बचाए रखा।

इसी प्रक्रिया का पालन अन्तर्विभागीय आधार पर भी किया गया। विविध विभागों के अध्यक्ष एक साथ दौरा करते और विभिन्न अनुभागों के कार्य में तालमेल बैठाते। इस प्रक्रिया के दौरान गाड़ियों को पार्क करने के स्थल, पार्क की गई गाड़ियों के लिए लेबल, विज्ञापनों के स्थान और यातायात प्रशिक्षण से संबद्ध सामग्री तैयार की जाती। यातायात निर्देशों के लिए सामग्री तैयार करने के हेतु धन एकत्र करने के लिए प्रायोजकों के एक चुनिंदा वर्ग के सामने किरण ने पहली बार एक श्रव्य-दृश्य कार्यक्रम प्रस्तुत किया। आजकल एम. ए. ए. के साथ और तब क्लेरियन विज्ञापन सेवा में कार्यरत अचल पाल ने इस काम में उनकी कुशलतापूर्वक मदद की।

प्रायोजकों ने सड़क यातायात से संबद्ध सामग्री के लिए उदारतापूर्वक 35 लाख रुपयों का अनुदान देने का आश्वासन दिया। सड़क-सुरक्षा पर प्रह्लाद कक्कड़ ने एक फ़िल्म बनाई। 'ज़ेब्रा क्रॉसिंग किसने देखी?' इस फ़िल्म का प्रायोजन लिम्का के रमेश चौहान ने किया। मोदी औद्योगिक घराने ने वे तमाम ट्रैफिक बूथ प्रायोजित किए जिनके शिखर पर हेलमेट बने हुए थे। प्योर ड्रिंक्स आईलैंड, एम. आर. एफ. ने सड़क विभाजक और अपोलो टायर्स ने सड़क सुरक्षा संबंधी सामग्री प्रायोजित की। इस तरह बराबर चलाए गए अभियान के फलस्वरूप किरण ने उपलब्ध धन का उचित उपयोग किया और दिल्ली-निवासियों को इससे भरपूर लाभ हुआ।

सन् 1982 में आयोजित एशियाई खेलों के लिए किरण द्वारा यातायात के लिए की गई तैयारी और उसके कार्यान्वयन के लिए एक ही शब्द है- अद्भुत।

4 दिसम्बर, 1982 को समाचार पत्र इंडियन एक्सप्रेस ने 'एशियाई खेलों का भव्य समापन' शीर्षक में लिखा-

खेलों में महत्त्वपूर्ण सफलता

''अंत में कहा जा सकता है खेलों के दौरान, विशेष रूप से समापन और उद्घाटन समारोह (19 नवंबर) के अवसर पर ट्रैफ़िक जिस निर्बाध रूप से चलता रहा वह सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसके लिए पुलिस अधिकारी बधाई के पात्र हैं।''

दिल्ली के यातायात के संदर्भ में सबसे अधिक घातक बात है (और हमेशा थी) गलत जगह पर गाड़ियों का पार्क किया जाना। यही मुख्य कारण था और है जिसकी वजह से लंबे समय तक वाहनों की आवाजाही में गतिरोध आ जाता है। किरण ने यही करारी चोट की। स्थिति को सुधारने के लिए अपनी गाड़ी में लगे लाउडस्पीकर से जनता को सार्वजनिक स्तर पर चेतावनी देने के बाद गलत जगह पर खड़ी की गई गाड़ियों को क्रेन द्वारा निकटतम थाने तक ले जाने के आदेश जारी कर दिए। शीघ्र ही उन्हें किरण बेदी की जगह 'क्रेन बेदी' नाम से संबोधित किया जाने लगा।

किरण ने यह आदेश भी जारी किया कि अब कसूरवार चालक का चालान नहीं किया जाएगा, बल्कि उसे जुर्माना भरना होगा। दिल्ली के प्रभावशाली तबके ने इससे पहले कभी चालानों की परवाह नहीं की थी। अनगिनत मौकों पर पुलिस अधिकारी के सामने ही चालान को कुछ इस अंदाज़ में टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाता था कि 'जो करना है कर लो।' लोगों ने बहुत जल्दी समझ लिया कि मौके पर जुर्माना भरवाने की इस पद्धति का ढंग एकदम अलग है। इस आदेश के अनुसार कसूरवार की कोई मदद नहीं कर सकता- न कोई मित्र। न कोई प्रभावशाली व्यक्ति, चाहे वह कितना ऊँचा हो। किरण ने अपने अधिकारियों और कार्यकर्ताओं को स्पष्ट आदेश दिए थे कि वे उनके आदेशों का पालन करें और वह स्वयं उनकी कार्रवाइयों को पूरा समर्थन देंगी। वह उनका मूल्यांकन चालानों की संख्या से नहीं, बल्कि बेहतर ट्रैफिक

प्रबंध की गुणवत्ता के आधार पर करेंगी।

बहुत जल्द समाज का एक वर्ग किरण से नाराज़ हो गया। आख़िर वह डी. सी. पी. भर थीं और वह भी सिर्फ़ एक महिला, जबकि वे लोग समृद्ध-संपन्न होने के साथ-साथ सत्ता और उच्च अधिकारियों के बहुत निकट थे। वे किरण से बेहद अप्रसन्न थे।

किरण ने न कभी किसी से समझौता किया और न ही किसी के साथ रिआयत की। अगस्त 1982 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की गाड़ी (नंबर. डी. एच. आई. 1817) तक का चालान उस समय किया गया जब उसे कनाट प्लेस में एक मरम्मत की दुकान के पास गलत जगह पार्क कर दिया गया था। सब-इंस्पेक्टर निर्मल सिंह ने क्रेन द्वारा गाड़ी थाने पहुंचा दी थी। किरण बेदी और वरिष्ठ ए. सी. पी. अशोक टंडन ने निर्मल सिंह का पूरा समर्थन किया था।

संडे पत्रिका में 28 अगस्त, 1982 को प्रकाशित इस घटना का दिलचस्प वर्णन इस प्रकार है :

प्रधानमंत्री का गाड़ी का चालान

जब डी.सी.पी. (ट्रैफिक) किरण बेदी ने गत वर्ष गलत जगह पर गाड़ियां खड़ी करने वालों के विरुद्ध अभियान चलाया तो किसी ने कल्पना भी न की होगी कि स्वयं प्रधानमंत्री की गाड़ी फंस जाएगी। लेकिन यह असंभव घटना 5 अगस्त, 1982 को उस समय घट गई जब श्रीमती इंदिरा गांधी और उनके परिवार के अन्य सदस्य अमरीका में थे। कनाट सर्कस की यूसुफ़ज़ाई मार्केट के बाहर एक ट्रैफ़िक इंस्पैक्टर ने एक सफ़ेद एम्बैसडर गाड़ी (डी. एच. आई. 1817) खड़ी देखी। चालान काटने के बाद ही उसे पता चला कि वह प्रधानमंत्री की सरकारी गाड़ी है। गाड़ी वहां मरम्मत के लिए गई थी। जो सुरक्षाकर्मी उसके साथ थे उन्होंने इस तथ्य की ओर पुलिस अफ़सर का ध्यान आकर्षित किया। लेकिन वह अपनी ज़िद पर यह कहकर अड़ा रहा कि गलत जगह पर गाड़ी खड़ी करना ग़ैरकानूनी है, वह गाड़ी चाहे आम आदमी की हो या किसी अति महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की।

मामले की जांच के आदेश दे दिए गए हैं। विदेश यात्रा से लौटते ही प्रधानमंत्री को इस मामले की जानकारी दी गई। जांच के मुद्दे ये होंगे : अति महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के सुरक्षा-दल और दिल्ली पुलिस के ट्रैफ़िक विभाग के बीच तालमेल क्यों नहीं स्थापित किया गया? किरण बेदी ने सार्वज़निक स्तर पर यह स्पष्ट कर दिया है कि अपनी ड्यूटी निष्ठापूर्वक निभा रहे अधिकारी को दंडित करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। इस घटना से बेशक दिल्ली पुलिस के यातायात प्रबंध में एक दरार की झलक ज़रूर मिलती है। जिस दुकान (हांडा एंड कंपनी) पर श्रीमती गांधी की कार मरम्मत के लिए गई थी उसके मालिक प्रधानमंत्री के एक शक्तिशाली सहायक के मित्र हैं। यह दुकान, जिसमें गाड़ियों को सजाने-संवारने का काम होता है, ग्राहकों में बहुत लोकप्रिय हैं। लेकिन दुकान एक ऐसी जगह पर स्थित है कि वहां

आनेवाली गाड़ी का चालान करना ज़रूरी हो जाता। सामने वाली पटरी के निकट एक लोकप्रिय होटल और रेस्तरां है और पटरी पर हर समय गाड़ियों की भीड़ रहती है। ट्रैफ़िक पुलिस इस सच्चाई को स्वीकार नहीं करना चाहती कि जब तक मोटरकारें सजाने-संवारने वाली दो लोकप्रिय दुकानें हांडा और बब्बर संस युसुफ़ज़ाई मार्केट में मौजूद हैं तब तक चालक अपने वाहन इन दुकानों के बाहर पार्क करने के लिए मजबूर रहेंगे। गोकि मौजूदा ट्रैफ़िक नियमों के अनुसार इस जगह पार्क करना मना है ओर इस सच्चाई पर भी ध्यान देना ज़रूरी होगा। अभी यह कहना कठिन है कि प्रधानमंत्री की गाड़ी वाली घटना से पुलिस इस स्थिति की वास्तविकता के प्रति सजग होगी या नहीं, लेकिन एक बात तय है कि श्रीमती बेदी का ट्रैफ़िक अभियान नंबर-1 सफ़दरजंग रोड तक पहुंच गया है।

एशियाई खेलों से बहुत पहले किरण ने प्रायोजकों की सेवाएं लेने की योजना लागू कर दी थी। धनवानों और राजनेताओं के साथ निकट संबंध रखने वालों ने कुछ और ही अनुमान लगा रखा था। अंतहीन ट्रैफिक आइलैंडों, ट्रैफिक बूथों और ट्रैफ़िक खूंटों पर अपने-अपने विज्ञापन लगाने की संभावनाओं पर वे सोच-विचार कर ही रहे थे कि किरण ने अधिक न्यायसंगत ढंग से उन स्थानों का वितरण करके उनके आत्मतोष पर पानी फेर दिया। जिन्हें प्रचार-प्रसार का अच्छा मौका ऐसे बहुत-से लोगों ने इस फ़ैसले को जी भरकर सराहा, लेकिन कुछ लोगों ने इसे एक अनुभवी महिला का दंभ माना।

बहुत जल्दी किरण को संकेत मिलने लगे थे कि उन्हें खेलों के समापन तक ही बर्दाश्त किया जाएगा।

खेलों के आरंभ होने के कुछ महीने पहले उन्हें कई प्रलोभन दिए गए। जैसे: उनके सामने छात्रवृत्ति लेकर ट्रैफ़िक नियंत्रण का अध्ययन करने के लिए पहले आस्ट्रेलिया और उसके बाद जापान जाने का प्रस्ताव। जब तक उन पर खेलों के दौरान ट्रैफिक व्यवस्था और नियंत्रण की ज़िम्मेदारी थी तब तक स्वभावत: महीनों दिल्ली से बाहर रहने का उनका कोई इरादा नहीं था। बैठकों के दौरान मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी उन्हें फ़ोन पर मुबारकबाद देते और उन्हें अलविदा कहते हुए अपनी शुभकामनाएँ देते। किरण इन छात्रवृत्तियों को जितनी विनम्रतापूर्वक संभव था, अस्वीकार कर देती थीं।

''क्या आपके द्वारा की गई व्यवस्था का श्रेय स्वयं लेने की ग़रज़ से आपको बाहर भेजना चाहते थे?''

''अगर एशियाई खेलों के दौरान यातायात अव्यवस्थित रहता तो मालूम नहीं ये लोग मेरी क्या दुर्दशा करते। तब क्या मैं माफ़ी मांगकर यह कहती- मैं तैयारी ठीक से नहीं कर पाई क्योंकि मैं हाल ही में जापान या आस्ट्रेलिया से लौटी हूँ? उस समय मेरे लिए विदेश यात्राएँ बेमानी थीं। मेरा सिर्फ एक लक्ष्य था: यातायात का व्यवस्थित प्रबंध। कोई यह शिकायत न कर पाए कि ट्रैफ़िक की गड़बड़ी के कारण हम स्टेडियम पहुँच ही न पाए। हम सब चाहते थे कि पूरा प्रबंध उत्कृष्ट हो।''

क्षण-भर के लिए ख़्याल आता है कहीं किरण बदले की भावना से तो काम नहीं कर रहीं, लेकिन बहुत जल्दी घटनाओं ने उनके विश्वास को रेखांकित कर दिया।

एशियाई खेलों के साथ भारत में रंगीन टेलीविज़न का भी युग आया। गणतंत्र दिवस परेड और स्वतंत्रता दिवस समारोह जैसे महत्त्वपूर्ण अवसरों से पहले डी. सी. पी. (ट्रैफिक) को टी. वी. के माध्यम से जनता को यातायात प्रबंध से अवगत करवाना होता है। खेलों से पहले यह ज़िम्मेदारी स्वभावत: किरण को निभानी थी। उन्होंने कहा कि वह इस काम के लिए तुरंत आ रही हैं लेकिन उन्हें जल्दी में सूचना दी गई कि वह किसी कनिष्ठ अधिकारी को भेज सकती हैं।

किरण ने संबद्ध अधिकारियों को बताया, ''उन्नीस स्टेडियम उन्नीस क्षेत्रों में बँटे हैं। जाहिर है, वहां प्रबंध और नियंत्रण के लिए उन्नीस अधिकारी कार्यरत हैं। आप कहें तो अपने-अपने क्षेत्र की यातायात व्यवस्था को समझाने के लिए उन सबको भेज दूँ।''

ज़ाहिर है, इस उत्तर से वह चकरा गए थे।

''दुर्भाग्यवश ट्रैफिक विभाग की मैं एकमात्र डी. सी. पी. हूं। मेरे तहत अतिरिक्त (Additional) डी. सी. पी. तक की नियुक्ति नहीं हुई हैं। कहिए, आप क्या चाहते हैं?''

किरण को बताया गया कि इस कार्यक्रम को पहले से रिकॉर्ड नहीं किया जाएगा और उन्हें सीधे इसका प्रसारण करना होगा। अगर वह कोई भूल करती हैं तो इसका नतीजा उन्हें भुगतना होगा। किरण ने दूरदर्शन पर यह निर्देश दस बार दिए और उसमें एक भी ग़लती नहीं हुई। वरिष्ठ अधिकारी किरण पर यह आरोप लगाते न थकते थे कि वह प्रचार-प्रसार की भूखी हैं। उन्हीं किरण ने अपनी तैयारी, अपनी कर्मठता और अपनी नियति के बल पर रंगीन टी. वी. पर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की और वह भी दस बार!

7

दिल्ली से गोवा का रोमांचक सफर

किरण के लिए दिल्ली से गोवा जाना एक पीड़ादायक अनुभव था। किरण ने डी. सी. पी. (ट्रैफ़िक) की हैसियत से अपने दिलो-दिमाग़ और आत्मा को दांव पर लगा रखा था और शत-प्रतिशत सफलता पाने का जुनून किरण पर छाया हुआ था। उस समय एशियाई खेलों के लिए की जा रही ट्रैफ़िक व्यवस्था से उनके उत्साह का संकेत मिलता है। लेकिन फिर भी जब वह इस जटिल काम में व्यस्त थीं तो उन्हें 'संदेश' भेजे जाते थे कि उन्हें दिल्ली में खेलों के समापन तक ही बर्दाश्त किया जाएगा और हुआ भी ठीक ऐसा ही, खेलों के समाप्त होते ही तबादला दिल्ली से गोवा कर दिया गया।

आज किरण का कहना है, ''बदलियां तो नौकरी का एक हिस्सा होती हैं और देर-सबेर होती ही हैं। गोयाकि मेरा तबादला अभी नौ महीने तक रोका जा सकता था पर मुझे इस बात की भी परवाह नहीं। लेकिन जिस बात ने मुझे परेशान किया वह थी मेरी बेटी की बीमारी। नेफ़राइटिस से ग्रस्त सात वर्ष की बेटी के इलाज़ के दौरान उसे मेरी जरूरत थी।''

उस समय उनके पति बृज बेदी अमृतसर-निवासी होने के कारण दिल्ली में नहीं थे और बच्ची की देखभाल करने के लिए सिर्फ़ नाना-नानी थे और थीं किरण।

किरण ने बेटी की हालत सुधरने तक तबादले को स्थगित करने के लिए मंत्रालय को याचनापत्र भेजा। किरण की किसी अपील का कोई उत्तर नहीं आया। उनकी कोई सुनवाई नहीं हुई।

इस संदर्भ में किरण का कहना है:

''अधिकारियों से मिलने का समय मांगने के लिए मुझे घंटों इंतजार करना पड़ता था और यह वे अधिकारी थे जो मेरी मदद कर सकते थे, कम-से-कम ऐसा मेरा विश्वास था। मैं उन्हें खुद मुझको और अपनी बेटी को इस अव्यवस्था से होने वाली पीड़ा का एहसास कराना चाह रही थी। लेकिन जो चीज़ सरकारी तंत्र में मौजूद ही नहीं मैं उसी को यानी संवेदना को खोज रही थी। उस समय मैंने यह भी महसूस किया कि ट्रैफ़िक के क्षेत्र में काम करते समय मैंने 'सचमुच' एक भी ऐसा मित्र नहीं बनाया जो शक्तिशाली हो या सत्ता में हो। सब पर बराबरी के स्तर पर कानून लागू करने की प्रक्रिया में मैंने किसी पर कोई एहसान नहीं किया, बल्कि अपनी स्थिति को बहुत नाजुक बना लिया। मैंने देखा कि मेरी मदद करने वाले तो वही लोग हैं। मुझे लगा वे मुझे अपना पाठ पढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं कि अगर कुछ चाहिए तो 'आंख

बंद करके अपने वरिष्ठ अधिकारियों का अनुमोदन करो। नौकरशाही के गलियारों का वातावरण अपमान-भरा और घिनौना था। मैं उसे बर्दाश्त न कर सकी और मैंने गोवा जाने का फ़ैसला कर लिया।"

''लेकिन मैं अपना हृदय और आत्मा पीछे ही छोड़ गई थी।''

मई 1983 में गोवा के प्रसिद्ध पत्रकार मारिया कैब्रेल इ सा ने किरण से एक साक्षात्कार किया था, जो 11 मई, 1983 में 'द डेली' में छपा था। इस साक्षात्कार के दौरान, किरण अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाई थीं-

'मुझे लगता है मुझे देश निकाला दिया गया है'

"जी हां, एक तरह से मुझे ऐसा ही लगता है। मुझे देश-निकाला देकर गोवा भेज दिया गया है।" - दिल्ली की तेजस्वी भूतपूर्व 'सुपर कोप' किरण बेदी ने इस संवाददाता से एक बातचीत के दौरान इस बयान को स्पष्ट करते हुए कहा कि "देश-निकाले की बात में एक विशेष संदर्भ में कह रही हूं। मेरी इकलौती बेटी की हालत गंभीर है, इलाज के लिए उसका दिल्ली में रहना ज़रूरी है।"

उनकी नन्ही-सी बच्ची को नेफ़राइटिस है। एक साल तक हर संभव एलोपैथिक इलाज के बाद अब दिल्ली के एक बहुत ही जाने-माने होम्योपैथ डॉ. पी. एस. खोखर उसका इलाज कर रहे हैं। श्रीमती बेदी को हाल में तीन वर्ष के लिए गोवा तबादले पर भेजा गया है।

किरण ने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि उनके अचानक तबादले का संबंध दिल्ली में धीरेंद्र ब्रह्मचारी के चालान के 'मशहूर' किस्से से है : "उन हलकों में क्या-क्या घटता है हमें कभी पता नहीं चलता," किरण ने फिर ज़ोर देकर तुरंत जोड़ा कि वह अफ़वाहों में विश्वास ही नहीं करतीं, और गोवा सिर्फ़ एक और नियुक्ति है और वह भी एक बेहद सुंदर जगह। परेशानी इसी बात की है कि अपनी बीमार बच्ची से तीन साल तक अलग रहना कैसे हो सकेगा, यह समझ में नहीं आता। उन्होंने बार-बार कहा, "मेरी बेटी को मेरी जरूरत है।"

इस समय वह राष्ट्रमंडल के शासनाध्यक्षों के सम्मेलन (चोगम) के लिए वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के साथ सुरक्षा और ट्रैफिक प्रबंध में व्यस्त हैं।

इस साक्षात्कार के प्रकाशन के बाद किरण ने पहली बार गोवा के मुख्य सचिव के. के. माथुर को सफ़ाई देने के लिए कहा गया था। किरण का कहना है, ''यह उस घायल व्यक्ति की-सी बात है जिससे उम्मीद की जाए कि वह चोट तो खाए लेकिन दर्द की बात न करे।''

''गोवा काम के लिहाज से बहुत खूबसूरत प्रदेश है। यहां के लोग अनुशासित, मिलनसार और खुशमिज़ाज हैं,'' किरन मधुर स्मृतियों में डूबते हुए कहती हैं। ''मैं एक ऐसी जगह पहुंच

गई थी कि जिसके पास अपना दिल था, सुंदर, भव्य और सहृदय। मैं पूरा जीवन अगुआदा बीच पर बिता सकती हूं या फिर ऊँचे लंबे नारियल के पेड़ों के बीच घूमते-घामते। मैंने वहां ड्राइव करते समय अनेक चर्च और पवित्र क्रॉस देखे। उन्हें देखकर मुझे बचपन में स्कूल में देखे पवित्र चित्र याद आ जाते। मैं जानती थी कि मैं भगवान के एक दूसरे घर में हूं और मैं आश्वस्त थी।''

किरण को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनकी 'क्रेन बेदी' वाली ख्याति उनके गोवा आगमन से पहले ही वहां पहुंच चुकी थी। लोगों को दिल्ली की स्थिति के दोहराए जाने की आशा थी। गोवा-निवासी ट्रैफ़िक से संबद्ध समस्याओं का बखान इस आशा से करने लगे कि चूँकि अब किरण गोवा पहुंच गई हैं इसलिए स्थिति की जानकारी देते ही सब लोग अनुशासित हो जाएंगे।

पर सर्वोत्तम ढंग से काम करने के लिए किरण के पास साधन क्या थे? संपूर्ण गोवा के लिए कुल जमा पच्चीस ट्रैफ़िक कर्मी थे। राजधानी पणजी, व्यस्त व्यापार केंद्र मार्गाओ, और उससे भी अधिक व्यस्त बंदरगाह जहां हवाई अड्डा वास्को-द-गामा भी स्थित है, एक और व्यावसायिक केंद्र मापूसा- इन सबकी गंभीर ट्रैफिक समस्याएं थीं।

अपने कॉलेज के दिनों से ही किरण को अपनी एन.सी.सी. की वर्दी पर बड़ा गर्व और साथ ही उससे बहुत लगाव था। मगर उन्होंने देखा कि गोवा में उनका क्षीण पुलिस बल काम के दौरान वर्दी पहनता ही न था। इसका कारण बहुत सीधा था। गोवा के लोगों के मन में इस पुलिसकर्मियों के प्रति किसी प्रकार आदरभाव ही न था क्योंकि उनकी संख्या इतनी कम थी कि वे विशेष कुछ कर नहीं पाते थे। अत: उन्होंने लगभग हथियार ही डाल दिए थे। ट्रैफ़िक नियंत्रण नाम की कोई चीज़ 'नज़र' न आती थी। सड़कें मौत और विनाश के राजमार्ग बनी हुई थीं। इस वजह से उस अपर्याप्त पुलिस बल को पृष्ठभूमि में रहने में ही ख़ैरियत नज़र आती थी।

किरण ने जब गोवा ट्रैफिक पुलिस की पहली बैठक बुलाई तो दृश्य किसी चालू हिंदी फ़िल्म जैसा ही था। पुलिसकर्मियों की मोटी तोंदों पर बंधी पेटियां नीचे को खिसक रही थीं, जूते ऐसे फटेहाल थे मानो उन्हें समुद्र में से निकाला गया हो, गंदी वर्दियां और सिर पर पहनी टोपियां तो मानो रो-रोकर कह रही थीं- बस, अब हमारी छुट्टी करो नई वर्दियों-टोपियों का इंतज़ाम कर लो। गोवा की प्रसिद्ध लोकप्रिय और तेज़ शराब फेनी की गंध छोड़ते और उसके असर से ढुलमुलाते ऐसे फटेहाल पच्चीस पुलिसकर्मी खड़े थे एक बेहद चुस्त-दुरूस्त और साफ़-सुथरी पुलिस वर्दी से लैस अधिकारी किरण बेदी के सामने, और वह उन्हें संबोधित कर रही थीं।

किरण उस दिन को याद करते हुए कहती हैं, ''वैसे ही मुझे किसी तेज़ सुगंध से एलर्जी है लेकिन इस 'गंध' से तो मुझे उबकाई आ रही थी।''

किरण ने इन पुलिसकर्मियों को 'नज़र आने' के फायदे समझाए और उन्हें समझाया कि उन्हें अपनी वर्दी पर गर्व होना चाहिए। यह वर्दी उन्हें गरिमा और कद्र से पहननी चाहिए। उन्होंने यह पेशा इसलिए नहीं चुना है कि समाज की तलछट की तरह सादे कपड़ों में गलियों में लुकते-

छिपते फिरें। उन्होंने यह पेशा इसलिए अपनाया है कि समाज की समस्याएं हल करने में प्रशासन की मदद करें। इससे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे ऐसा करते नज़र आएं। उस दिन किरण द्वारा दिया गया भाषण लंबा और दिल से निकला हुआ था। अंत में किरण ने उनसे आग्रह किया कि कम-से-कम ड्यूटी के दौरान वे फेनी के सूचक प्रमाण साथ न लाएं तो बेहतर होगा।

अपने नए नेता से प्रेरित इस ट्रैफ़िक दस्ते का तो एकदम कायापलट हो गया। बरसों में पहली बार गोवा के उलझे ट्रैफ़िक को सुलझाती वहां की वर्दीयुक्त ट्रैफ़िक पुलिस, लगातार सड़कों पर नज़र आने लगी। यह एक निष्ठावान प्रयास था जिसे बड़ी ईमानदारी से निभाया जा रहा था और उसे जनता की सकारात्मक प्रतिक्रिया भी मिली। लोगों ने मुंहज़बानी और पत्र लिखकर एस. पी. ट्रैफिक को बताया कि वे उनके ईमानदार संकल्प की कितनी सराहना करते हैं और उन्हें भरपूर सहयोग भी देने को तैयार हैं। समाज के विभिन्न समूहों के साथ नियमित रूप से बैठकें होती रहतीं ताकि उनकी समस्याओं को समझा जा सके और उन समस्याओं के हल में उनकी भी हिस्सेदारी हो। रोटरी क्लब के सहयोग से अनेक नए कार्यक्रम बनाए गए जिनमें से कुछ-एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम थे- अतिक्रमण हटाओ अभियान, ट्रैफ़िक की व्यवस्थित, बाज़ार और औद्योगिक संस्थाओं के साथ जनता का संपर्क, खुली बैठकें जिनमें कोई भी भाग ले सकता था, शिक्षा, जागरूकता और इस्तगासा से संबद्ध कार्यक्रम।

बहुत जल्दी ही गोवा का ट्रैफ़िक विभाग एक बहुत ही प्रभावशाली सक्रिय दल बन गया। तेज़ मोटरसाइकिलों पर सवार सिपाही पूरे प्रदेश में फैल गए थे और कानून तोड़ने वाले वाहनचालकों ने खौफ खाकर उनको 'दोजख़ के फरिश्ते' का नाम दे दिया था। छः महीने की अवधि में ट्रैफिक के 3,000 से ऊपर मामले दर्ज किए गए।

ऐसे में जब गोवा-निवासी इन कदमों की खुलकर सराहना कर रहे थे और इन पर अनुकूल प्रतिक्रियाएं व्यक्त कर रहे थे तब प्रशासन अपना रौब दिखाने पर उतर आया। ट्रैफिक नियंत्रण कक्ष को एक शिकायत भेजी गई थी कि राज्य सचिवालय के आगे की पटरी पर अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की गाड़ियां पार्क की जाती हैं। जांच के लिए मौके पर गए अधिकारी ने वाहनचालकों से वहां से गाड़ियां हटा लेने को कहा। लेकिन वे टस-से-मस नहीं हुए। फिर अधिकारी ने चेतावनी दी कि अगर वे गाड़ियां नहीं हटाते तो उनका चालान कर दिया जाएगा। उस समय वहां एक स्थानीय समाचारपत्र का फोटोग्राफर भी मौजूद था और उसने पटरी पर पार्क की कई गाड़ियों के फोटो खींच लिए। इनमें आई. जी. की गाड़ी भी शामिल थी, पर अधिकारी के चेतावनी जारी करने के पहले वह जा चुकी थी।

समाचारपत्रों ने इस घटना को खूब उछाला और जैसा दिल्ली में हुआ था ठीक वैसा ही गोवा में भी घटित हुआ। किरण को मुख्यमंत्री के कार्यालय में बुलवाया गया। उनसे कहा गया कि वे समाचारपत्रों में बयान देकर भूल-सुधार करें और पुलिस कार्रवाई को रोकें। किरण ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और कहा कि अगर किसी भी तरह की सफ़ाई की जरूरत हो तो वह सचिवालय से मांगी जानी चाहिए। किरण ने यह भी दावा किया कि पुलिस द्वारा की गई

कार्रवाई सही है और इस दिशा में किया गया कोई भी समझौता पूरे पुलिस बल का हौसला तोड़ देगा। ट्रैफिक प्रबंधन में किए गए सुधारों की गति भी अवरुद्ध हो जाएगी और जनता के बीच इतनी मेहनत से जो विश्वसनीयता पुलिस बल ने अर्जित की वह समाप्त हो जाएगी। एक अस्पष्ट-सी चेतावनी देकर किरण को बड़ी रुखाई से विदा कर दिया गया।

गोवा प्रशासन ने एस. पी. (ट्रैफ़िक) को एक काली एम्बैसडर गाड़ी और डी. एस. पी. को एक जीप दे रखी थी, कार की हालत तो खस्ता थी और डी. एस. पी. पद पर किसी की नियुक्ति हुई नहीं थी। इसलिए किरण ने जीप की मरम्मत करवाकर उसे सफेद रंग में रंगवा दिया और उस पर लाल फ्लोरोसेंट धारियां पेंट करवा दीं। जीप में एक लाउडस्पीकर और एक सायरन भी फिट करवा दिया।

''यह सायरन अति महत्त्वपूर्ण लोगों के लिए रास्ता बनाने के लिए नहीं, बल्कि सड़क पर चल रहे आम आदमी को यह आश्वासन दिलाने के लिए था कि हम उनकी ख़ातिर सड़क पर तैनात हैं।'' किरण यह बात अपनी जानी-पहचानी नटखट मुस्कान के साथ बताती हैं।

जिस दिन किरण दिल्ली से गोवा पहुंचीं तो हवाई अड्डे से पणजी पहुंचने के लिए उन्हें नौका द्वारा जुआरी नदी पार करनी पड़ी। उस वक्त नदी पार करने के लिए पुल का निर्माण हो रहा था। कुछ महीनों बाद पुल तैयार हो गया मगर फिर भी यह आम जनता के लिए बंद रहा क्योंकि प्रशासन इसके उद्घाटन के लिए दिल्ली से किसी अति महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को आमंत्रित करने के चक्कर में था। वहां से तारीख़ की पुष्टि नहीं हो पा रही थी और जनता को अभी भी नदी पार करने के लिए नावों का सहारा लेना पड़ रहा था। एक दिन किरण उसी क्षेत्र के दौरे पर थीं। उन्होंने देखा कि नौका के लिए भारी भीड़ इंतज़ार में खड़ी है। किरण ने पुल पार करने का फ़ैसला किया। अपने ऑपरेटर और ड्राइवर की मदद से उन्होंने वे सब अवरोध हटवा दिए जो पुल की नाकाबंदी के लिए रखे गये थे और वह अपनी जीप पुल के इस पार से उस पार ले गईं। इसके बाद उन्होंने इंतज़ार कर रहे ट्रैफ़िक को पुल की ओर मोड़ दिया।

इस तरह किरण ने बिलकुल व्यावहारिक तरीके से पुल का 'उद्घाटन' कर डाला। इस कार्य ने गोवा के लोगों का दिल जीत लिया।

वह नकली सख़्ती से कहती हैं, ''पुल का उद्घाटन ड्यूटी पर तैनात एक ऐसे व्यक्ति ने किया जिसके लिए आम आदमी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।'' फिर वह हंस पड़ती हैं, ''आज उस पुल पर किसी प्रकार के उद्घाटन समारोह का कोई चिह्न नहीं है, बस वह अपने ही नाम से जाना जाता है, किसी वी. आई. पी. के नाम से नहीं।'' ज़ाहिर है, प्रशासन को यह समझ में आ गया था कि अगर पुल का पुन: उद्घाटन किया जाता है तो उनकी हंसी उड़ाई जाएगी। हैरानी की बात तो यह है कि यह उन इनी-गिनी घटनाओं में से हैं जब अफ़सरशाही या राजनेताओं ने किरण से सफ़ाई नहीं मांगी। फिर भी किरण ने उनको एक मौका और दिया।

भारत में ईसाई समुदाय के लिए सेंट ज़ेवियर की मृतदेह का प्रदर्शन एक बहुत की महत्त्वपूर्ण अवसर होता था। सेंट जेवियर का शरीर काफ़ी अच्छी अवस्था में परिरक्षित रखा हुआ है और

प्रदर्शन के अवसर पर इसे आम जनता के दर्शन के लिए एक शीशे के बक्से में रखा जाता है। कुछ वर्ष पहले देखा गया कि इस प्रदर्शन से शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है, इसलिए इस प्रथा पर अब रोक लगा दी गई है। लेकिन जब यह पर्व मनाया जाता था तब हज़ारों की तादाद में लोग गोवा आते थे। पड़ोसी प्रदेश कर्नाटक से आने वाला ट्रैफ़िक इतना ज़्यादा होता था कि सड़कों पर यातायात की स्थिति काफ़ी खराब हो जाती थी और चर्च के आसपास के हालात पर काबू पाना मुश्किल हो जाता था। ऐसे में पैदल चलने वालों के कष्ट का तो कहना ही क्या। चर्च के प्रवेशद्वार तक जाने की ज़िद में कई गाड़ियां इनमें से बेशुमार लोगों को ज़ख़्मी कर जाती थीं। ट्रैफ़िक भी कई दिनों तक रुका रहता था।

सेंट ज़ेवियर की देह के प्रदर्शन के अवसर पर गोवा की, संख्या में अपर्याप्त, ट्रैफ़िक पुलिस की मदद के लिए कर्नाटक से कुछ पुलिसकर्मी बुलवाए जाते थे। लेकिन इस बाहरी मदद का केवल एक ही मकसद होता था- अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को गिरजे के मुख्य द्वार तक पहुंचाना। आज किरण स्पष्ट करतीं हैं, ''ये अति महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कभी भी ट्रैफ़िक की बदहाली नहीं देख पाते थे। पुलिस उन्हें सलामी ठोककर सबसे पहले उनके लिए आगे का रास्ता साफ करके संतुष्ट हो जाती। इस सुविधा को अति महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपना अधिकार समझते और पुलिस अपना कर्तव्य। आम आदमी इसे अपनी नियति मानकर चुप हो जाता।''

लेकिन इस बार ऐसा न होना था। अब बारी थी पैदल चल रहे आम आदमी की- उसके सुरक्षित, अवरोध रहित रास्ते पर चलने के अधिकार की रक्षा की। पार्किंग के स्थान पर वर्दीधारी लोग वाहन और पैदल यातायात का नियंत्रण कर रहे थे। अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के लिए चर्च के निकट ही गाड़ियां पार्क करने का स्थान निर्धारित कर दिया गया था, जहां से उन्हें पैदल चलकर जाना था। इस तरह पुलिस और अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के वाहनों के कारण पैदल जनता के लिए जो समस्याएं उत्पन्न होती थीं वे हल कर दी गईं। आम आदमी को तो यह व्यवस्था बहुत पसंद आई लेकिन अति महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नाराज़ हो गए। किरण के शब्दों में, ''लोगों ने तो इस बंदोबस्त की खूब तारीफ़ की लेकिन अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने मुझसे माफ़ीनामा और सफ़ाई पेश करने की मांग की।''

गोवा मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ मंत्री चर्च गए। उनकी गाड़ी को अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों वाले पार्किंग स्थल पर रोका गया और उनसे चर्च के मुख्य द्वारा तक कुछ कदम पैदल जाने के लिए निवेदन किया गया। गोवा के अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को इस तरह के बंदोबस्त की आदत न थी। इसलिए यह मामला मुख्यमंत्री प्रतापसिंह राणे तक ले जाया गया।

किरण को मुख्यमंत्री के कार्यालय में बुलवाया गया और उनसे संबद्ध मंत्री से क्षमा-याचना करने को कहा गया।

किरण ने पूछा, ''सर, क्या मंत्री महोदय अस्वस्थ हैं?''

''मंत्री महोदय मुख्य द्वार तक गाड़ी में जाने के हकदार हैं। आपको अपनी ट्रैफ़िक व्यवस्था में सुधार करना होगा।''

''सर, आपको शायद पता ही होगा, आम आदमी इस बंदोबस्त से बहुत खुश है।'' किरण ने साहसपूर्वक मुख्यमंत्री से यह पूछ लिया।

''आम आदमी को छोड़ो, मंत्रियों को चर्च के गेट तक मोटर में जाने की सुविधा होनी चाहिए। यह मुख्यमंत्री की जिद्द थी।

''लेकिन इसका मतलब तो यह होगा कि ट्रैफ़िक बंदोबस्त ठप्प हो जाएगा।''

''यह बंदोबस्त किसने किया है?''

''सर, मैंने।''

''क्या आई. जी. पी. ने इसको अपनी मंजूरी दी थी?''

''जी हां, सर।''

ठीक है, मैं उनसे बात करूंगा और कहूंगा कि इस बंदोबस्त को बदल दें।।''

''आप ऐसा कर सकते हैं, सर लेकिन तब कृपया ट्रैफ़िक बंदोबस्त की ड्यूटी से मुझे मुक्त कर दें।''

''यह हम बाद में देखेंगे।'' मुख्यमंत्री ने बात समाप्त कर दी।

लगता है कि मुख्यमंत्री ने आई. जी. पी. से इस विषय पर कोई बात नहीं की। जनता किरण द्वारा की गई सुविधाजनक व्यवस्था से बहुत खुश थी। लोग अपने वाहन पार्क करके व्यवस्थित ढंग से चर्च तक जा सकते थे। अब उन्हें अपनी गाड़ियां बाहर निकालने के लिए घंटों दूसरी गाड़ियों के निकलने का इंतज़ार नहीं करना पड़ता था। पुलिसकर्मी उनकी मदद के लिए वहां तैनात रहते थे। लेकिन मंत्रियों को यह बंदोबस्त बिलकुल पसंद नहीं आया। किरण ने उन्हें आम आदमी के साथ बराबरी का दर्जा दिया था और उन्होंने किरण को इसके लिए कभी माफ़ नहीं किया।

लेकिन कुछ ऐसे भी लोग थे जिनको बराबरी का महत्त्व दिया गया था और ये लोग 1983 के नवंबर को कभी नहीं भूल पाएंगे। उस समय गोवा में राष्ट्रमंडल देशों के शासनाध्यक्षों का शिखर सम्मेलन हो रहा था। उस क्षेत्र के लिए यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना थी। हवाई अड्डे तक जाने वाली नई सड़क का संपूर्ण विद्युतीकरण, इलैक्ट्रॉनिक टेलिफ़ोन, एक्सचेंज, सड़कों पर नई सतह, पुलों की मरम्मत, वायरलेस उपकरण और अन्य अनेक सुविधाएं जो वर्षों में जाकर नहीं मिल पातीं, इस सम्मेलन के बहाने गोवा को तुरंत उपलब्ध हो गई। सड़कों पर बेरोकटोक यातायात सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षा विभाग के तीन हेलिकॉप्टर सेवा में हाज़िर थे। दिल्ली से क्रेनें मंगवाई गई थीं। ट्रैफ़िक पुलिस की मदद के लिए सिग्नल से संकेत देने का इंतज़ाम किया गया था। लगातार हवाई निगरानी की व्यवस्था थी और सबसे बढ़कर गोवा के कॉलेजों के 1,200 से अधिक छात्रों ने ट्रैफिक प्रबंध में पुलिस की मदद की।

इन तमाम सुविधाओं को उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान था गोवा, दमन और दीव के

तत्कालीन उपराज्यपाल के. टी. सतारावाला और जन-सहयोग में किरण के अडिग विश्वास का। व्यापारियों और संस्थाध्यक्षों के साथ किरण ने अनेक बैठकें कीं और ट्रैफ़िक व्यवस्था की पद्धतियों और योजनाओं पर उनसे बातचीत की और फिर उन्हें लोगों की ओर से भरपूर सहयोग मिला। नतीजतन अपनी संपूर्ण प्राकृतिक संपदा सहित गोवा विश्व के मानचित्र पर आ गया।

राष्ट्रमंडल के शासनाध्यक्ष गोवा के अति सुंदर अगुआदा समुद्रतट पर, ताज समूह द्वारा निर्मित शानदार फ़ोर्ट अगुआदा होटल में ठहरे हुए थे। सम्मेलन की बैठकों का आयोजन भी उसी होटल में था। प्रतिष्ठित मेहमानों के लिए विशेष रूप से कॉटेज बनवाए गए थे। स्वयं महारानी एलिज़ाबेथ के अलावा प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और ब्रिटिश प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर आकर्षण का प्रमुख केंद्र थीं। पुरुषों में सबसे अधिक लोकप्रिय थे कनाडा के प्रधानमंत्री पियेर त्रुदू। हवाई अड्डे से फोर्ट अगुआदा चालीस किलोमीटर की दूरी पर था। इस दूरी को पार करने के लिए अति विशिष्ट मेहमानों के सामने मोटरकार या हेलिकॉप्टर का उपयोग करने का विकल्प था। कुछ मेहमानों ने सड़क से सफ़र करना पसंद किया, अर्थात पूरे-के-पूरे चालीस किलोमीटर तक उनके लिए रास्ता एकदम साफ रहना चाहिए था। यह रास्ता बहुत लंबा था जिसमें अगल-बगल से बहुत-सी टेढ़ी-मेढ़ी गलियां आकर मिलती थीं। चूंकि मेहमानों की गाड़ियों के काफिले को बड़ी तेज़ी से गुज़रना था इसलिए यह सुनिश्चित करना ज़रूरी था कि कोई भी वाहन या पैदल व्यक्ति रास्ते में न आए। इसलिए यह और भी ज़रूरी हो गया था कि रास्ते की तमाम गलियां जहां अति विशिष्ट लोगों के रास्ते से मिलती हों, वहां सतर्क सिपाही मौजूद रहें। इतने कर्मचारी मिलते कहां? हवाई अड्डे से आने वाली इस सड़क के, समारोह स्थलों के, और पणजी, मार्गाओ, मापूसा तथा वास्को-द-गामा, इन चार शहरों के बाहर और भीतर के यातायात प्रबंध के लिए गोवा के 25 पुलिसकर्मी बिलकुल पर्याप्त न थे। किरण ने कर्नाटक से कुछ पुलिसकर्मी बुलवाए ज़रूर थे, लेकिन वे ट्रैफ़िक संबंधी प्रबंध में प्रशिक्षित न थे।

राष्ट्रमंडल के शासनाध्यक्षों का सम्मेलन गोवावासियों की भागीदारी के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवसर था। लेकिन दुर्भाग्यवश सारे समारोह केवल अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के लिए आयोजित किए गए थे जिनमें आम आदमी के लिए कोई जगह न थी। सुरक्षा प्रबंध ऐसा था कि आम जनता किसी भी समारोह स्थल के निकट भी नहीं आ सकती थी। वह सिर्फ़ सड़कों पर तेज़ी से दौड़ती मोटरों और आसमान में उड़ रहे हेलिकॉप्टरों का शोर-भर सुन सकती थी। लेकिन यातायात व्यवस्था से तो उसे दूर नहीं रखा जा सकता था। रास्तों की व्यवस्था करने के लिए किरण को बड़ी संख्या में लोगों की जरूरत थी। उन्होंने देखा कि गोवा के युवाओं को व्यवस्था में वैध रूप से हिस्सेदार बनाने के लिए यह बड़ा बढ़िया मौका है। इससे वे कुछ तो देख पाएंगे जो उनकी यादों पर अमिट छाप छोड़ेगा। किरण ने फ़ैसला किया कि गोवा की एन. सी. सी. के सब युवा कैडेटों को वी. आई. पी. लोगों के रास्तों के यातायात नियंत्रण का काम सौंप दिया जाए।

गोवा के युवाओं ने उस सम्मेलन में न सिर्फ दर्शक के नाते, बल्कि प्रशिक्षित पुलिस कैडेट के रूप में भी उत्साहपूर्वक भाग लिया। इस काम के लिए भर्ती किए गए 1,200 युवा सफ़ेद और नीली पोशाकों, लाल डोरियो, सीटियों, सफ़ेद जुराबों और पी. टी. जूतों से लैस अपने-अपने निर्धारित स्थान पर तैनात रहे। सबके सिर पर गॉल्फ़ कैप थी। लड़कियों ने अपने बाल गूंथ रखे थे और लड़कों ने उन्हें कायदे से छंटवा लिया था। किरण बेदी और उनके अधिकारी दल ने छ: रविवारों के दौरान उनको ट्रैफिक नियंत्रण और प्रबंध का प्रशिक्षण दिया था। दिल्ली पुलिस में किरण के कनिष्ठ सहकर्मी सब-इंस्पेक्टर सरबपाल सिंह ने दिल्ली में आयोजित एशियाई खेलों के दौरान उनकी बहुत मदद की थी। उनको इस अवसर पर विशेष रूप से गोवा बुलाया गया। इन कैडेटों ने यातायात नियंत्रण और चुस्ती से सलामी दागना सीख लिया था। मुख्य मार्ग से निकल रही गलियों का मोर्चा उन किशोरों ने ही संभाला वरना वहां का काम देखने वाला और कोई तो था ही नहीं। अपनी ड्यूटी के दौरान वे कारों में गुज़रते प्रतिष्ठित मेहमानों का हाथ हिलाकर अभिवादन भी करते। चालीस किलोमीटर के पूरे रास्ते के किनारे खड़े छात्रों का यह दृश्य अपने-आप में बड़ा अनोखा था। हर कोई इनकी तरफ आकर्षित हो रहा था। राष्ट्रपति पियेर त्रुदू और श्रीमती गांधी ने तो अपनी गाड़ियों का काफ़िला रुकवाकर इनमें से कुछ का अभिवादन किया। गोवा-निवासी इस सद्भावना प्रदर्शन से गद्गद हो उठे थे।

गोवा के युवा अपने साथ न सिर्फ मधुर दृश्य-स्मृतियाँ बल्कि पुलिस द्वारा दिया गया कृतज्ञता का एक सुंदर प्रमाणपत्र भी लेकर लौटे थे। आज भी कई घरों में दीवारों पर ये प्रमाणपत्र सजे हुए हैं। गोवा के राज्यपाल तक ने पुलिस विभाग के नाम एक प्रशंसा पत्र भेजा था।

सम्मेलन के समापन के बाद किरण ने अपने घर दिल्ली फ़ोन किया। फ़ोन उनकी बेटी सायना ने उठाया। किरण ने जब पूछा कि वह स्कूल क्यों नहीं गई तो सायना ने उत्तर दिया, ''मम्मा, आज छुट्टी है।'' तब किरण की माताजी ने फ़ोन पर आकर बताया कि गुच्चू को उनकी पूरी देखभाल की जरूरत है इसलिए उन्हें दिल्ली लौट आना चाहिए। अब किरण की व्यस्तता के कारण गुच्चू की बिगड़ती सेहत की बात उनसे छिपाई गई थी, पर अब और ख़तरा नहीं उठाया जा सकता था। गुच्चू की नेफराइटिस की बीमारी अब बहुत बिगड़ गई है और उसे तुरंत अस्पताल में दाखिल करवाना ज़रूरी हो गया है।

बेटी की गंभीर बीमारी की वजह से किरण ने छुट्टी के लिए आवेदन पत्र दे दिया और उनके वरिष्ठ अधिकारी आई. जी. पी. राजेंद्र मोहन ने उन्हें छुट्टी देने की सिफ़ारिश भी कर दी थी। आवेदनपत्र में जिस तारीख से छुट्टी मांगी गई थी वह तारीख आ पहुंची पर सचिवालय से किरण की अर्ज़ी का कोई उत्तर नहीं मिला। छुट्टी शुरू होने के दिन किरण को पता चला कि सम्मेलन के लिए दिल्ली से लाए गए कुछ सुरक्षा उपकरण लेकर सीमा सुरक्षा बल का एक हवाई जहाज़ उसी दिन वापस जा रहा है। अगर छुट्टी औपचारिक मंजूरी आ गई होती तो किरण उसी हवाई जहाज़ में सफ़र करके रेल-यात्रा के तीन दिन और रातें बचा सकती थीं। दिल्ली और गोवा में दो-दो घरों के रख-रखाव और बेटी की बीमारी पर हो रहे भारी खर्च के कारण किरण के पास अपने हवाई जहाज़ का टिकट ख़रीदने की क्षमता न थी। किरण अपनी बेटी के पास पहुंचने को

छटपटा रही थीं और उन्होंने दफ़्तरी मंजूरी की राह न देखने का फैसला कर लिया। उन्हें भरोसा नहीं था कि सरकार को दी गई अपनी सिफ़ारिश के बावजूद आई. जी. पी. उनकी छुट्टी की मंजूरी का आदेश देने का साहस बटोर पाएंगे। इसीलिए उन्होंने गोवा में अपनी नियुक्ति दांव पर लगाकर दिल्ली में इंतज़ार कर रही अधिक कठोर चुनौती का सामना करने का निर्णय लिया। आखिर सवाल उनकी बेटी की ज़िंदगी का था।

जिस डॉर्नियर हवाई जहाज़ में किरण सफ़र कर रही थीं उसके पायलट थे आई. जी. (वायु) स्वर्गीय तरलोक सिंह ढालीवाल, जो कि राष्ट्रमंडल शिखर सम्मेलन के दौरान गोवा में ड्यूटी पर आए थे। उड़ान के वे पांच घंटे बड़ी कठिनाई से बीते। किरण अपने घर सूर्यास्त के ठीक बाद पहुंची। अपनी बिगड़ी हालत से बिलकुल बेखबर बेटी मां को देखकर ख़ुशी से नाच उठी। सायना का चेहरा, ठोड़ी और पेट बेतरह सूजे हुए थे। शरीर में जमा पानी और प्रोटीन की कमी के कारण उसकी आंखें फूलकर एकदम चुंधी हो गई थीं। किरण अपनी बेटी को सीधे अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान(ए. आई. आई. एम. एस.) ले गई, जहां उसे दाख़िल कर लिया गया और इस रोग के विशेषज्ञ चिकित्सकों- डॉ. वीणा कालरा और डॉ. आर. एन. श्रीवास्तव की निजी देखभाल में एक सप्ताह तक उसका उपचार चलता रहा। उसे पूरी देखभाल की जरूरत थी।

किरण ने छुट्टी बढ़वाने का आवेदनपत्र भेजा। इसकी मंजूरी तो क्या मिलनी थी, उलटे उन्हें बिना छुट्टी के ड्यूटी से ग़ैरहाज़िर और फ़रार घोषित कर दिया गया था। शायद गोवा के मुख्यमंत्री ने यू. एन. आई. (यूनाइटेड न्यूज़ आफ़ इंडिया) को इस आशय का बयान दिया था। दिल्ली में यू. एन. आई. कार्यालय ने किरण से संपर्क करके मामले की असलियत जाननी चाही और पूछा कि क्या वे वाकई फ़रार हैं? किरण ने स्पष्ट किया कि ऐसी कोई बात हरगिज़ नहीं है और बच्ची की बिगड़ती हालत ने ही उन्हें ऐसा कदम उठाने पर मजबूर किया है। उन्होंने यह भी कहा कि अगर यकीन न हो तो संवाददाता स्वयं आकर सुकृति की हालत देख सकते हैं। वे आए भी। उनकी बेटी की हालत देखकर यून. एन. आई. दिल्ली ने गोवा के मुख्यमंत्री के बयान का ज़ोरदार खंडन किया। बेशक रिकॉर्ड तो सही हो गया लेकिन गोवा प्रशासन का पर्दाफ़ाश भी हो ही गया। इसके फलस्वरूप वहां के अधिकारी किरण के प्रति और भी कटु हो गए। प्रशासन ने छुट्टी की मंजूरी देने से ही इनकार कर दिया। इस संदर्भ में 30 जनवरी, 1984 को पैट्रियट में इस प्रकार का एक समाचार छपा था:

छुट्टी के कारण किरण संकट में

गोवा की पुलिस किरण बेदी पर राष्ट्रमंडलीय शासनध्यक्षों के सम्मेलन से जुड़ी ज़िम्मेदारियां निभाने के बाद ड्यूटी से लापता रहने का आरोप लगाया गया है। बेइंतहा परेशान किरण बेदी का कहना है, "यह नौकरी किस काम की अगर मैं अपनी बीमार बच्चों की ही देखभाल न कर सकूं।"

जब श्रीमती बेदी को पता चला कि उनकी बच्ची गुच्चू को गुर्दे में तीव्र संक्रमण की तकलीफ़ है तब वह 5 दिसंबर (1983) से पंद्रह दिन की छुट्टी पर दिल्ली आ गई। तब से वह राजधानी में अपनी बेटी की तीमारदारी में ही व्यस्त हैं।

दिल्ली की भूतपूर्व ट्रैफ़िक पुलिस अध्यक्ष किरण बेदी का तबादला पिछले वर्ष (1983) मार्च में गोवा कर दिया गया था। उनका कहना है, "तब भी मुझे भागकर दिल्ली आना पड़ा था क्योंकि मेरी बेटी को गुर्दे की बीमारी हो गई थी।" उन्होंने बताया कि गोवा के आई.जी. राजेंद्र मोहन ने उनकी पंद्रह दिन की छुट्टी मंजूर कर ली थी और बाद में अतिरिक्त छुट्टी की मंजूरी भी दे दी थी क्योंकि बच्ची को बराबर देखभाल की जरूरत थी।

जब उनसे गोवा प्रशासन द्वारा मांगी गई सफ़ाई के बारे में पूछा गया तो उन्होंने मामले को 'अनोखा' बतलाया जिसमें- "आई. जी. एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के आवेदन पत्र को मंजूर करते हैं और राज्य प्रशासन उसे रद्द कर देता है।"

डॉक्टरी रिपोर्ट

श्रीमती बेदी ने आगे कहा, "कोई भी मां अपने बच्चे की बीमारी के बारे में झूठ नहीं बोल सकती। मैंने उन्हें परिस्थिति की गंभीरता समझाने के लिए मेडिकल रिपोर्ट और प्रमाणपत्र भेजे हें।" आज किरण इस दुविधा में पड़ी हैं कि वह ड्यूटी पर लौट जाएं या अपनी बीमार बेटी की देखभाल करें।

गुच्चू नेफराइटिस से ग्रस्त है और उसका होम्योपैथिक इलाज चल रहा है। उसकी डॉक्टरी परीक्षण अखिल भारतीय आयुर्विज्ञाान संस्थान में भी हो रहा है और विलिंग्डन अस्पताल में भी।

यह पूछे जाने पर कि वह ड्यूटी पर कब लौटेंगी, किरण का उत्तर था, "जब मेरी बच्ची पूरी तरह से स्वस्थ हो जाएगी-मैंने आई.जी. को एक व्यक्तिगत पत्र लिखा है और गोवा प्रशासन को विस्तार से इस बात का स्पष्टीकरण भेज दिया है कि किन परिस्थितियों के कारण मैं छुट्टी पर हूं।"

उनका कहना है कि ग्यारह वर्ष के सेवाकाल में उन्होंने पहली बार छुट्टी ली है। "नहीं तो मेरी छुट्टी तो हमेशा बेकार जाती है। मेरे खाते में काफ़ी छुट्टियां जमा हैं।"

पिछले 5 दिसंबर से, यानी जब से वह छुट्टी पर हैं तब से गोवा प्रशासन ने कोई एतराज़ नहीं किया है। इसलिए उन्होंने मान लिया था कि उनकी छुट्टी मंजूर हो चुकी है। "मैं ड्यूटी से ग़ैरहाज़िर नहीं हूं... मैं छुट्टी पर हूं जिसकी मैं हकदार हूं।"

छः महीने तक किरण को कोई काम नहीं सौंपा गया। जीवन में अचानक आई इस रिक्तता के बारे में उन्होंने चाहे जो भी सोचा, एक बात तय है- उन्हें अपनी बेटी के साथ बिताने के लिए और उसे सामान्य तथा स्थिर हालात में लौटा लाने के लिए पर्याप्त समय मिल गया था। यही वह वक्त था जिसके दौरान किरण ने केंद्रीय गृह सचिव टी. एन. चतुर्वेदी से भेंट का समय

मांगा। उन्होंने किरण की बात सहानुभूतिपूर्वक सुनी और उनकी नियुक्ति असिस्टेंट इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस के रूप में रेलवे सुरक्षा बल के मुख्यालय में करवा दी।

छ: महीने समाप्त होने से पहले ही इस विभाग से तबादला होने पर किरण ने काफी राहत महसूस की। उस कार्यालय में बिताए समय के बारे में किरण का कहना है: ''मुख्यालय में मेरे जिम्मे कार्मिक मामले थे जिनमें मैं सीधे महानिदेशक की सहयोगी थी। इसलिए बहुत-से कर्मी अपनी शिकायतें लेकर मेरे पास आते। मैं उनकी बातें सुनती और जरूरत के मुताबिक उनका हल ढूंढ़ती। मामलों की बाकायदा जांच करके मैं फाइलें अपने अधिकारी को भेज देती पर बहुत जल्दी ही मुझे पता चल गया कि एक भी फाइल वापस नहीं आएगी। कुछ समय इंतज़ार करने के बाद एक दिन मैं अपने वरिष्ठ अधिकारी के पास यह जानने के लिए गई कि जो फाइलें मैंने भेजी थीं उन पर क्या फैसला हुआ। जो सलाह उस समय मुझे दी गई उसे सुनकर मैं दंग रह गई। मुझसे कहा गया कि मैं इतनी तत्परता न दिखाऊँ और यह कि दिल्ली यातायात और गोवा के अनुभवों से मुझे अब तक सबक मिल जाना चाहिए था। मेरा तो दम घुटने लगा। मेरे सामने सिर्फ़ लकड़ी की कठोर बेजान मेज़ ही नहीं बल्कि वैसा ही कठोर बेजान दिल भी था। मेरी समझ में, जहां देश के रेलवे विभाग, यात्रियों और माल की सुरक्षा और साथ ही देश में स्थान-स्थान पर नियुक्त हज़ारों महिला-पुरुष कर्मचारियों के भाग्य के फैसले का सवाल हो, वहां ऐसे अधिकारी को अपने पद पर बने रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।''

इसके बाद किरण की नियुक्ति औद्योगिक आकस्मिकता महानिदेशालय (डी. जी. आई. सी.) में बतौर उपनिदेशक के पद पर गईं। यह औद्योगिक विकास विभाग के तहत कार्यरत एक इकाई थी जिसका काम था औद्योगिक संबंधों पर बारीकी से नज़र रखना और खुफ़िया रपट तथा विश्लेषण की रिपोर्ट भेजना। इस विभाग का मुख्य कार्यालय दिल्ली में था और क्षेत्रीय कार्यालय दिल्ली, बंगलौर और पटना में।

किरण का कार्यक्षेत्र पूरे भारत में फैला था और इसलिए काफ़ी विस्तृत था। दिल्ली में उनके ऊपर के अधिकारी थे- बृजेंद्र सहाय और बॉब मुरारी। दोनों ही औद्योगिक विकास विभाग में भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अफ़सर थे।

उनके साथ, और फिर एक ग़ैर पुलिस विभाग में काम करना किरण जो कुछ अलग-सा और सुखद ताज़गी से भरा हुआ लगा। संबद्ध औद्योगिक समाचारों, नवीनतम विकासों और प्राथमिकताओं के लक्ष्यों से परिचित करने के लिए किरण ने अन्य समाचार पत्रों के अलावा द इकोनॉमिक टाइम्स भी पढ़ना शुरू कर दिया। अपने कार्य के अनुरूप किरण ने अपने कार्यालय को पुनर्गठित किया।

इसके बाद किरण डी. जी. आई. सी. की कार्यप्रणाली के आधार को सुधारने में जुट गईं। साथ ही वास्तविक स्थितियों को खुद देखने-समझने के लिए उन्होंने विभिन्न औद्योगिक इकाइयों के दौरे आरंभ किए। इस प्रकार प्राप्त जानकारी के आधार पर उन्होंने संचारण के लिए कुछ रिपोर्टें तैयार कीं। इनमें से कुछ में तो एकदम नई ज़मीन तोड़ी गई थी। इनका मुख्य उद्देश्य था राज्य और केंद्र, दोनों स्तरों पर स्थिति की मांग के अनुसार समन्वय लाना ताकि औद्योगिक

अशांति या किसी प्रकार के गतिरोध का सामना प्रभावी तरीके से किया जा सके।

विशेष रिपोर्ट और ख़ुफ़िया बुलेटिन सहित डी. जी. आई. सी. द्वारा तैयार सभी रिपोर्टें संबंधित निर्णयकर्ता अधिकारियों को भेजी जाती थीं और उनका उचित समन्वय आवश्यक था। इस प्रक्रिया का उद्देश्य था, बिना समय बर्बाद किए समस्याओं पर सामूहिक रूप से ध्यान केंद्रित करना। किरण ने पूरा ध्यान रखकर सुनिश्चित किया कि सारी महत्त्वपूर्ण रिपोर्टें प्रधानमंत्री राजीव गांधी को सीधे प्राप्त हों। हर रिपोर्ट के बाएं कोने में वे स्वयं हाथ से लिखती थीं- माननीय प्रधानमंत्री (अमूमन ये रिपोर्टें एक ही पृष्ठ की होती थीं।)

प्रत्यक्ष अवलोकन के माध्यम से किरण ने प्रबंध व्यवस्था की बहुत-सी बारीकियां समझ लीं। जब उनसे महानिदेशक बृजेंद्र सहाय ने असम स्थित बोकाजान आकर वहां के सीमेंट संयंत्र में जारी हड़ताल को नियंत्रित करने के लिए कहा तो उन्हें बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ। उन्होंने इस अवसर को उत्साहपूर्वक स्वीकारा। जिला डिप्टी कमिश्नर एस. मनोहरन के साथ वह उस फ़ैक्ट्री में गईं और 24 घंटों के अंदर-अंदर समझौते पर दस्तख़त करवाने में सफल हो गईं। किरण ने यह भी सुनिश्चित करवा लिया कि कर्मचारियों की मांगों को संतोषजनक ढंग से पूरा किया जाए और वे काम पर लौट जाएं।

डी. जी. आई. सी. से जुड़े कुछ संस्थान हैं- बोकारो स्टील प्लांट, भारत लेअर कॉर्पोरेशन, कोचीन रिफ़ाइनरीज़ और आई. डी. पी. एल. (इंडियन ड्रग्ज़ एंड फार्मास्युटिकल्ज़ लिमिटेड, गुड़गांव)।

एक बड़ी दिलचस्प बात यह है कि अक्टूबर 1985 में किरण के तबादले के बाद भारत सरकार द्वारा बचत अभियान के अंतर्गत डी. जी. आई. सी. को बंद कर दिया गया। यह सच है कि इससे एक सीमा तक बचत हुई लेकिन यह भी है कि किरण जैसे खोजी पुलिस अधिकारियों को सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों के कार्यों की बाकायदा छानबीन करने का मौका नहीं मिलेगा।

उड़ती-उड़ती ख़बर के अनुसार, आम मत यह था कि किरण बेदी की नियुक्ति से पहले डी. जी. आई. सी. काम करता ही नहीं था, तो उनके तबादले के बाद क्या ख़ाक काम होता। फ़ैसला यही किया गया कि इस निदेशालय को बंद कर दिया जाए।

8

कल्याणकारी पुलिस व्यवस्था

सन् 1980 में दिल्ली में शराब तस्करी की धूम थी। बड़े-बड़े तस्करों और थोक व्यापारियों के संघ सीमा-पार से अवैध शराब ला-लाकर दिल्ली की सड़कों पर खुलेआम बेचते थे। ब्रितानी राज के दौरान साँसी जनजाति को जरायमपेशा घोषित कर दिया गया था। ये लोग परंपरा से ही अवैध शराब बेचते आए थे। तस्करों के संघ अपनी आपराधिक गतिविधियों के लिए इस समुदाय के सदस्यों का उपयोग किया करते थे। पश्चिम ज़िले के डिप्टी कमिश्नर के रूप में किरण बेदी इस जनजाति से मिली-जुलीं और इनका ग़ैर आपराधिक क्षेत्रों में पुनर्वास करने में जुट गईं। लोगों को बड़े धैर्य से समझा-बुझाकर और समुदाय का विश्वास जीतकर आखिर किरण दिल्ली की सड़कों को इस आफ़त से मुक्त कराने में सफल हुई। सच तो यह है कि यह पहला मौका था अब किरण को सुधारक पुलिस अधिकारी के रूप में काम करने का अवसर मिला था। प्रसंगवश, रैमन मैग्सेसे पुरस्कार के प्रशस्ति पत्र का आरंभ ही पुलिस अधिकारी के रूप में उनके किए गए सुधार-कार्य के उल्लेख से होता है।

1 नवंबर, 1980 के टाइम्स ऑफ इंडिया में इस संदर्भ में छपा यह समाचार ध्यान देने योग्य है:

अपराध-दर घटाने में सुधरे हुए सांसियों का योगदान

कुछ महीने जब से मादीपुर के सांसियों ने अवैध शराब बनाने और बेचने का धंधा छोड़कर 'स्वेच्छा से' कोई वैध व्यवसाय करने का फ़ैसला किया है, तब से पश्चिम दिल्ली में शराब की तस्करी के मामले काफ़ कम हो गए हैं।

हालांकि सांसियों के लिए विशेष रूप से किसी योजनाबद्ध तरीके से नौकरियां उपलब्ध नहीं करवाई गई हैं, फिर भी इनमें से अनेक ने नए धंधे शुरू कर दिए हैं। पश्चिम दिल्ली की डिप्टी पुलिस कमिश्नर श्रीमती किरण बेदी के अनुसार, अवैध शराब बनाने और बेचने में आई कमी के फलस्वरूप संबंधित अपराधों में भी काफ़ी कमी हुई है।

उन्होंने कहा कि 'मिलीभगत' के कारण अभी भी काफ़ी समस्याएं हैं क्योंकि ऊपरी स्तर से सुनियोजित और अच्छी तरह से लागू की गई योजनाएं भी कहीं-कहीं बेईमान कर्मचारियों की मेहरबानी से असफल हो सकती है। ''पुलिसकर्मी भी सीधे-सादे तो हैं नहीं।''

किरण बेदी ने बताया कि गत कुछ महीनों में अवैध भट्टियों पर शराब बनाने वालों से 'संरक्षण राशि' वसूलते हुए रंगे हाथों पकड़े गए या उनसे मिलीभगत के संदेह में दस अधिकारियों और कांस्टेबलों को निलंबित कर दिया गया है। उन्होंने आगे कहा, ''बिना पुलिस की मिलीभगत के ऐसे धंधे पनप नहीं सकते हैं और अवांछित तत्त्वों को उन्मूलन करने की शुरुआत हमें यहीं से करनी होगी।''

पश्चिम दिल्ली में पुलिस और जनता के बीच एक प्रभावी आदान-प्रदान शुरू करने से लिए बीट-बॉक्स पद्धति शुरू की गई। हर कांस्टेबल को अपने हलके में एक बीट-बॉक्स आबंटित किया गया। अपनी ही ज़िम्मेदारी पर, अपने क्षेत्र में वहां के निवासियों की समस्याएं हल करने के लिए वह इस गुमटी में अपना दफ़्तर चला सकता था। इस योजना के कारण जनता के लिए अब थाने जाना ज़रूरी नहीं रहा। इसके बदले वह बीट-बॉक्स पर जाकर बीट-कांस्टेबल से मदद मांग सकती थी। इस तरह हलके का कांस्टेबल एक प्रकार से समुदाय का नेता या संरक्षक बन गया और जनता तथा पुलिस के बीच की दूरी कम हो गई। अनेक छोटे-मोटे अपराधों की रिपोर्ट यहां लिखवाई जा सकती थी और मामला हलके के स्तर पर ही निपटा लिया जा सकता था। इससे न सिर्फ पुलिस थानों का काम हल्का हो गया बल्कि आम आदमी भी ख़ासी परेशानी से बच गया। ये बीट-बॉक्स भी सामुदायिक सहयोग से ही निर्मित हुए थे।

'इंडिया टुडे' (1-15 जून 1981) में इस संदर्भ में छपी रिपोर्ट इस प्रकार है:

बीट बॉक्स : एक लोकप्रिय प्रयास

देश के अधिकांश भागों में पुलिस की ध्वस्त, विकृत छवि के विपरीत दिल्ली की घनी आबादी वाले पश्चिमी इलाके में पुलिस करीने से चमचमाती वर्दियां पहनकर कुछ इस तरह से जनता से रिश्ते सुधार रही है कि थोड़ा और प्रोत्साहन मिले तो यह शांति स्थापना के लिए सहकार का एक अनुकरणीय उदाहरण बन सकता है।

इसका शुभारंभ नववर्ष दिवस पर एक शपथ समारोह से हुआ जिसमें पश्चिम दिल्ली के तमाम पुलिसकर्मियों ने हर ज़रूरतमंद की मदद करने की शपथ ली। सिर्फ़ इसी वर्ष (1981) में अब तक एक सौ से अधिक सार्वजनिक बैठकों का आयोजन किया जा चुका है। इनके माध्यम से जनता के साथ संवाद को प्रोत्साहित किया जा रहा है और कानून लागू करने के लिए प्रभावी पद्धति के विकास को भी।

इनमें सबसे नई और सबसे लोकप्रिय युक्ति है, बीट-बॉक्स की स्थापना। पड़ोस में ही पुलिस सहायता उपलब्ध कराने के लिए यह बड़ी सार्थक और पूरी तरह से निवासियों द्वारा दिए गए अनुदानों की मदद से एक सौ से अधिक बीट-बॉक्स बना दिए गए हैं। नीले और सफ़ेद रंग की चौकियों में हलके का कांस्टेबल रोज तीन घंटे तक तैनात रहता है। इस तरह निवासियों को पुलिस की मदद तुरंत मिल जाती है।

प्रभावी सुरक्षा: निगरानी की सबल व्यवस्था इस (प्रयोग) को और सहारा देती है। एस. एच. ओ. (थानेदार) हर रोज़ बीट-बॉक्स कांस्टेबल को कार्यभार सौंपता और वापस लेता है। इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है वह सुरक्षा बोध जो इन बीट-बॉक्सों के साथ जागा है। कानून तोड़ने वालों के लिए ये बीट-बॉक्स डरावने बिजूके की तरह है। तिलकनगर के निवासी हरबंसलाल खुराना के अनुसार, ''बीट-बॉक्स लगने के पहले इस क्षेत्र में बहुत गुंडागर्दी होती थी। लड़कियों से छेड़खानी हुआ करती थी और लोग बहुत असुरक्षित महसूस करते थे। लेकिन अब स्थिति में भारी सुधार हुआ है।'' शान्ति स्थापित करवाने और सुलह-सफाई करवाने वाले सलाहकार के रूप में सामाजिक जीवन में पुलिस का प्रवेश। बीट-बॉक्स कांस्टेबल के पास रोज़ आने वाले 8000 से अधिक मामलों में से अनेक ऐसे होते हैं जो थाने में हल नहीं हो सकते।

झगड़ते हुए दम्पति या फिर पड़ोसियों के बीच के झगड़ों को निपटाने के लिए समुदाय के सदस्य अक्सर बीट-बॉक्स कांस्टेबल की मदद लेते हैं। मंगोलपुरी पुनर्वास क्षेत्र के कांस्टेबल रामेश्वर दयाल ने बताया कि उन्होंने कई तरह की समस्याएं हल कीं, जिनमें पति-पत्नी, शराबियों, पानी के लिए झगड़ रही औरतों आदि की समस्याएं शामिल हैं। हम गांव के सरपंच जैसे हैं और लोग भी हमारे साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं।

इस योजना से हलके के कांस्टेबल को भी बड़ा मनोवैज्ञानिक सहारा मिला है। समुदाय के नेता के रूप में उसकी नई भूमिका को क्षेत्र की जनता की पूरी मान्यता प्राप्त है। इससे उसे न केवल काम करने की प्रेरणा मिलती है बल्कि उसका ढहता स्वाभिमान भी अद्भुत रूप से सजग होने लगा है।

साफ़-सुथरे घर: सहकार के माध्यम से शांति-स्थापना के प्रयोग की प्रेरक शक्ति, पश्चिम दिल्ली की चुस्त-दुरुस्त और बॉकी डिप्टी पुलिस कमिश्नर किरण बेदी के अनुसार, ''मदद करने को तैयार पुलिस सिपाही को कौन न अपनाएगा? मैं शहरी होती तो ज़रूर उसकी कद्र करती।'' अपना घर संवारने की नारी-सुलभ वृत्ति के साथ किरण बेदी ने पहले अपने ही घर की सफ़ाई शुरू की है। उनके उत्साह को कोई बाधा रोक नहीं सकती। ''बीट कांस्अेबल अपने हलके को अपना घर ही मानने लगा है। उसके लिए जैसे अपना घर साफ़-सुथरा रखना ज़रूरी है वैसे ही अपनी गश्त का इलाका साफ़ रखना भी।''

किरण बेदी ने कहा कि इस उत्साह के पीछे एक दृढ़ धारणा है जिससे हर समाजशास्त्री सहमत होगा। वह यह कि अपराध से लड़ने और शांति बनाए रखने में पूरे समाज की भागीदारी ज़रूरी है। पुलिस भी तभी तक प्रभावी रह सकती है जब तक उसे समाज का समर्थन और सहयोग मिलता रहे। शांति-स्थापना और कानून का शासन लागू करने के लिए जनसंपर्क को आधार बनाकर बेदी ने वह सफलता हासिल की है जो डंडे के बल पर पाई जा सकती थी। उनका समर्थन धीरे-धीरे बढ़ रहा है। दिल्ली पुलिस कमिश्नर पी. एस. भिंडर के अनुसार, ''हमने हमेशा माना है कि अपराध की रोकथाम सिर्फ पुलिस का काम नहीं है। इसमें जनता की

मदद बहुत जरूरी है। दुनिया-भर में कहीं भी अपराधियों का मुकाबला कोरा कानून नहीं करता है।''

इस योजना में जो एक तत्त्व भरोसे के योग्य प्रतीत होता है, वह है जन-समर्थन। बेदी इस बात को इस प्रकार कहती हैं, ''हमने देखा है कि अगर पुलिस एक कदम आगे बढ़ती है तो जनता पांच कदम बढ़ आती है।'' लेकिन पुलिस का राजनीतिकरण, पुलिसकर्मियों का कुंठाजनक वेतन-ढांचा, कानून लागू करने की व्यवस्था में पैठी सड़न-ये सब बातें उसे ऐसा कोई निर्णायक कदम उठाने से रोक देती हैं जो पुलिस को गुंडों की जमात से शांति-सेना में बदल सकता है। ये बाधाएं दुर्लंघ्य भी हो सकती हैं।

किरण बेदी इन बीट-बॉक्सों के बारे में एक दिलचस्प किस्सा सुनाती हैं- ''पुलिस कमिश्नर और अनेक ज़िला कमिश्नरों के साथ हुई एक बैठक में दिल्ली के उपराज्यपाल एस. एल. खुराना ने हमसे अलग-अलग पूछा था कि हमने अपने-अपने क्षेत्रों में कितने बीट-बॉक्स लगाए हैं। एक ने कहा पांच, दूसरे का उत्तर था सात, लेकिन मेरा उत्तर था एक सौ पैंसठ। इस पर उन्होंने पुलिस कमिश्नर पी. एस. भिंडर से पूछा कि अन्य क्षेत्रों में इतने बीट-बॉक्स क्यों नहीं बन सकते? तो श्री भिंडर का उत्तर था कि अगर पर्याप्त धनराशि आबंटित हो जाए तो ऐसा कर सकना संभव होगा। उपराज्यपाल ने मुझसे पूछा कि मैंने धन की व्यवस्था कैसे की? मैंने उन्हें बताया कि यह सारा काम जनता के आर्थिक सहयोग से किया गया है। श्री भिंडर ने मुझे इसके लिए कभी माफ़ नहीं किया। उनका ख़याल था कि मैंने उन्हें नीचा दिखाने की कोशिश की, जबकि मेरी ऐसी कोई मंशा न थी।''

अपराध निवारण के संगठित प्रयास के तहत पश्चिम दिल्ली में अपराधियों की एक सूची तैयार की गई। इसमें 1970 से आपराधिक रिकॉर्ड वाले 3,500 से अधिक स्त्री-'पुरुषों के नाम आकारादि क्रम में दिए गए थे। 266 पृष्ठों वाली इस सूची में दी गई जानकारियां थीं-अपराधियों के पिछले रिकॉर्ड, वे किस क्षेत्र के रहने वाले थे और अपराध करने का उनका तरीका क्या था। किरण के मातहत कार्यरत सभी नौ पुलिस थानों को यह सूची भेजी गई थी ताकि ड्यूटी अफ़सर पकड़े गए अपराधी के पूर्ववर्ती की तुरंत जांच कर सकें। इसके परिणामस्वरूप अपराध-दर में भारी कमी आई।

अपराधियों की इस प्रकार की एक सूची किरण ने बाद में मिज़ोरम में बतौर डी. आई. जी. (रेंज) काम करते हुए भी तैयार की थी (विवरण के लिए देखें अध्याय 12)।

बहुत जल्द यह परिकल्पना एक सहयोगी पुलिस प्रणाली में बदल गई। स्थानीय नेताओं को भी ये सूचियां दी गईं। ताकि लोग अपराधियों को पहचान लें और उन्हें पकड़वाने या पुन: स्थापित करने में मदद करें। इस प्रणाली का उपयोग इस प्रकार किया गया (द टाइम्स आफ़ इंडिया, 12 जुलाई 1981)।

अपराधी शिंकजे में

पश्चिम ज़िले की पुलिस ने क्षेत्र के पुलिस थानों के उपयोग के लिए अपराधियों की एक तात्कालिक संदर्भ-सूची बनाई हैं। इस संदर्भ-सूची में आपराधिक रिकॉर्ड वाले 3,522 नाम शामिल हैं। 266 पृष्ठों वाली इस सूची में नामों को वर्णानुक्रम से भारतीय दंड संहिता की विविध धाराओं के अंतर्गत तालिकाबद्ध किया गया है।

ज़िले की डिप्टी पुलिस कमिश्नर श्रीमती किरण बेदी ने कहा है कि इस संदर्भ सूची की मदद से पुलिस यह जानकारी तुरंत हासिल कर सकती है कि पकड़े गए व्यक्ति का कोई पूर्व रिकॉर्ड है या नहीं।

रामकृष्णपुरम स्थित केंद्रीय अपराध रिकॉर्ड कार्यालय द्वारा तैयार किए गए संदर्भ मैनुअल के लिए यह पूरक सूची सिद्ध होगी। समय-समय पर इसमें नई जानकारी जोड़ी जाती रहेगी।

किरण को पश्चिमी जिले का डी.सी.पी. नियुक्त किया गया, उन्हें वहाँ लीव वैकेंसी पर भेजा गया था परंतु थोड़े ही समय में उन्होंने इतनी सफलता पाई कि उन्हें वापिस बुलाना मुश्किल हो गया। उनकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ी। कुछ ही सप्ताह में, जिले में अपराध रोकथाम में भारी वृद्धि हुई। नाजायज़ शराब का धंधा खत्म हो गया। महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की वारदातें घटीं। उनके क्षेत्र में आने वाले शहरी तथा 116 ग्रामीण इलाकों में स्वयं सेवक, अपराध रोकथाम के लिए रात को निगरानी करने लगीं। विभिन्न रेजीडेंट वेल्फेयर एसोसिएशन द्वारा नियुक्त चौकीदारों का प्रशिक्षण आरंभ किया गया।

स्टाफ का हित उनकी प्राथमिकता थी; अपराध सुधार उनकी रणनीति थी वे अपराध-व्यसनियों के जीवन में भी सुधार लाना चाहती थीं।

पड़ोसी जिलों से गंभीरी वारदातों की घटनाएँ आने पर पश्चिमी जिले को, सीलबंद करने का प्रबंध किया गया। इस खूबी ने उनके जिले को दूसरों से अलग ला खड़ा किया। सर्दी के महीनों में रात को पैट्रोलिंग करने वालों को गर्म चाय भिजवाकर, किरण ने उनका दिल जीत लिया। वे स्वयं सप्ताह में पाँच दिन रात की पैट्रोलिंग पर निकलतीं, इससे न केवल काम करने वालों की सतर्कता की जाँच होती बल्कि उनके हितों पर भी पूरा ध्यान दिया जाता। अच्छे प्रदर्शन के लिए तत्काल पुरस्कार की व्यवस्था थी। वे अपने स्टाफ के सुख-दु:ख में व न्याय की रक्षा करने वालों के सदा साथ रहतीं। उन्होंने पड़ोसी जिले के पुलिस चीफ से, अपने जिले से हुई गिरफ्तारी के बारे में सवाल-तलब भी किया, क्योंकि उन्हें लगता था कि वह झूठी गिरफ्तारी थी। इस परिस्थिति में उन्हें अपने वरिष्ठ अधिकारी का सामना करना पड़ा किंतु वे पीछे नहीं हटीं। उन्होंने अपने पूरे करियर के दौरान, समाज के इन वर्गों के हितों की न केवल रक्षा की बल्कि उन्हें न्याय दिलाने से भी कभी पीछे नहीं हटीं, संभवत: यही गुण उनकी सबसे बड़ी

ताकत और साथ ही कमजोरी भी रहा। वेलफेयर पुलिसिंग से जुड़ी इन सभी पहलों ने समाचार-पत्रों की सुर्खियाँ बनने में देर नहीं की, क्योंकि वे अपने-आप में नई और अनूठी थीं।

1988 में किरण बेदी नार्कोटिक कंट्रोल ब्यूरो (एन. सी. बी.) में उपनिदेशक नियुक्त हुईं। इस कार्यकाल में वे एक बार फिर सुर्खियों में आ गईं। उत्तरप्रदेश के उत्तर-पश्चिम में स्थिति चकराता तहसील की हरी-भरी पहाड़ियों में बिजली की-सी तेज़ी से छापा मारकर किरण ने लगभग 12 हेक्टेयर में अवैध रूप से लगाई हुई पोस्त और चरस की फ़सल को अपनी मौजूदगी में नष्ट करवाया। यह क्षेत्र उस समय सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी के शक्तिशाली-संसद सदस्य ब्रह्मदत्त का निर्वाचन-क्षेत्र था लेकिन किरण ने इस तथ्य की कोई परवाह नहीं की थीं।

किरण के काम में एक पारदर्शिता दिखाई देती है- ख़ासकर जब वह उन संगठनों में काम कर रही होती थीं जहां बहुत अधिक गोपनीयता बरती जाती रही है और सुरक्षा व्यवस्था में कभी कोई ढील नहीं रही है। इसी से ज़ाहिर होता है कि सिर्फ़ जवाबदेही से बचने के ये संगठन गोपनीयता का लबादा ओढ़े रहते थे।

हर कदम पर किरण को बड़े खुले दिल से जनता का सहयोग मिलता रहा है। किसी सेवारत व्यक्ति को इस प्रकार का विश्वास और आस्था सिर्फ़ ईमानदार इरादों और कुछ कर गुज़रने की इच्छा की वजह से ही हासिल होते हैं।

1985 में दिल्ली की प्रतिष्ठा धूल में लोट रही थी और कानून तथा व्यवस्था की बहुत निंदा हो रही थी। प्रेस उन पर बेहिसाब हमले कर रहा था। प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने पुलिस कमिश्नर वेद मारवाह को बुलाकर उनसे स्थिति सुधारने को कहा। पुलिस कमिश्नर ने प्रधानमंत्री से कहा कि जब तक उन्हें सही अधिकारी नहीं मिलते वह कुछ नहीं कर सकते। राजीव गांधी ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह जिस भी अधिकारी को चाहें नाम लेते ही उन्हें मिल जाएगा। पुलिस कमिश्नर ने किरण बेदी का नाम लिया तो सामने मानो दुर्लंघ्य दीवार आ खड़ी हुई। प्रधानमंत्री जानते थे कि उनके कार्यालय में किरण बेदी के प्रति विरोधाभाव अभी भी बना हुआ है। दिल्ली के हालात जब बद से बदतर होते गए तो डेढ़ महीने बाद प्रधानमंत्री ने पुलिस कमिश्नर को दोबारा बुलवाया। इस बार उनकी बात रखी गई। किरण बेदी का तबादला मुख्यालय में डिप्टी पुलिस कमिश्नर के पद पर कर दिया गया। किरण ने वहां स्वयं को फ़ाइलों के भारी अंबारों से घिरा हुआ पाया। मेज़ के ऊपर तो फ़ाइलों के ढेर लगे ही थे, मेज़ की दराज़ें भी फ़ाइलों से इस कदर ठसाठस भरी थीं कि उन्हें खोला ही न जा सकता था। किरण ने तुरंत निर्णय लेने की नीति अपनाई। वह फ़ाइलों को मेज़ पर पहुंचते ही निपटा देतीं। किरण के मातहत कार्यरत कर्मचारी बेहद असंतुष्ट थे। किसी को रहने का घर नहीं मिला था और किसी की तरक्की रुकी हुई थी। वह एक नक्शा चाहती थीं जिसमें विभिन्न ज़िलों में खाली पड़े पुलिस क्वार्टर दिखलाए गए हों। इन मकानों में आबंटन का इस्तेमाल या तो अपना प्रभाव दिखलाने के औज़ार के रूप में होता था या अपना अधिकार सिद्ध करने के लिए या फिर कोई रिआयत हथियाने के लिए। कार्यकर्ताओं को नियुक्ति से पहले साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता था और यथासंभव कोशिश की जाती थी कि उन्हें घर के निकट ही नियुक्त किया जाए ताकि हर रोज़ अपने कार्यालय

पहुंचने के लिए उन्हें 40-50 किलोमीटर का सफ़र न करना पड़े। पुलिसकर्मियों की मुख्य शिकायतों में से एक थी सुविधाजनक समायोजन का अभाव और कार्य में अकुशलता के लिए यह भी एक कारण बताया जाता था। पुलिस मुख्यालय में वह एक ऐतिहासिक घटना थी, जब एक ही दिन में 1,600 लोगों की तरक्की कर दी गई थी। यह काम छ-सात वर्ष पहले संपन्न हो जाना चाहिए था लेकिन किसी ने इसकी परवाह नहीं की थी। इस उपलब्धि का श्रेय किरण और वेद मारवाह की सक्रिय ऊर्जा को और कार्यसिद्धि के लिए उनकी बेताबी को देती है।

समस्याएं हल करने के लिए हर वक्त तैयार किरण से हौसला लेकर मुख्यालय के ड्राइवरों ने अपना मामला उनके सम्मुख रखा। उनका कहना था कि सेवाकाल के शुरू से आख़िर तक उन्हें तरक्की देने की कोई व्यवस्था नहीं है। वे कांस्टेबल के रूप में भर्ती होकर इसी पद से सेवानिवृत्त होते हैं। किरण ने उनका मामला गृह मंत्रालय को अपनी सिफ़ारिश के साथ भेजा। उन्होंने तिमंज़िली पदोन्नति व्यवस्था का सुझाव देते हुए प्रस्तावित किया था कि ड्राइवरों को कांस्टेबल से हेड कांस्टेबल और अंत में सब-इंस्पेक्टर के पद तक तरक्की मिलनी चाहिए। गृह मंत्रालय ने उस फाइल पर कोई कार्रवाई नहीं की। किरण ने ड्राइवरों को दिल्ली उच्च न्यायालय में परमाधिदेश की याचिका दर्ज कराने की सलाह देते हुए सुझाया कि पुलिस मुख्यालय को भी एक पक्ष बना लिया जाएं। न्यायालय ने किरण को पेश होने को कहा। उन्होंने कचहरी में अपने बयान में स्वीकारा कि पुलिस मुख्यालय ड्राइवरों की मांग से सहमत हैं और पुलिस कमिश्नर ने इस तिमंज़िली पद-व्यवस्था की सिफ़ारिश की है। न्यायालय ने गृहमंत्रालय को ड्राइवरों की तरक्की के मामले पर कार्रवाई करने का निर्देश दिया। इसी वजह से आज पुलिस के अनेक ड्राइवर सब-इंस्पेक्टर के पद से सेवानिवृत्त होते हैं। 1970 के उत्तरार्ध में किरण का जो ड्राइवर एक कांस्टेबल था, आज वह सब-इंस्पेक्टर है।

किरण ने अपने कार्यालय में आदेश दे रखा था कि तीन दिन के अंदर अगर किसी फ़ाइल का निपटारा नहीं होता तो संबंधित व्यक्ति को स्वयं पेश होकर इस देरी की जवाबदेही करनी होगी। सब कर्मचारी समझ गए थे कि अब कामचोरी नहीं चलेगी। किरण को विरासत में प्राप्त फाइलों के अंबार से निपटते देख शेष कर्मचारी भी काम में जुट गए। उधर वेद मारवाह बेहद खुश थे कि उन्होंने प्रधानमंत्री से सही अधिकारी की मांग की तो इधर किरण सफलता का पूरा श्रेय वेद मारवाह को देती हैं जिन्होंने नेतृत्व के गुणों को अभिव्यक्त होने का मौका दिया और ईमानदारी पर आधारित काम को प्रोत्साहित किया।

फ़ाइलों से संबंधित समस्या का सामना किरण को तब भी करना पड़ा था जब उन्होंने तिहाड़ जेल का भार संभाला। जेल मुख्यालय में निगरानी से संबद्ध मामलों की 140 फ़ाइलें अटकी थीं। अनेक निलंबित कर्मचारी गत 6-8 वर्षों से, और कहीं-कहीं तो इससे भी अधिक समय से फ़ैसले के इंतज़ार में बैठे थे। इनमें से अधिकतर मामले कैदियों द्वारा एक सुरंग से भाग निकलने की कोशिश से संबद्ध थे। बाद में यह पता चला कि वह सुरंग वास्तव में एक बहुत ही पुरानी और भुलाई जा चुकी मोरी थी। पूछताछ और तहकीकात पूरी होने तक के लिए बड़ी संख्या में कर्मचारियों को निलंबित कर दिया गया था। इनमें से अनेक ऐसे भी थे जो घटना के

समय ड्यूटी पर भी न थे, लेकिन फिर भी उन्हें सज़ा दी गई। किरण जब-जब लंबित फाइलों का मामला उठातीं, तब-तब सुरंग मामले का ज़िक्र सुनने में आता। उन्होंने आख़िर मामले से सीधे निपटने की ठान ली। एक दिन किरण ने इस मामले की फ़ाइल यह कहकर मंगवाई, ''केहडा टनल केस! ले आओ ते सही, पढ़िएँ ते सही।'' (कैसा टनल केस। लाओ तो सही, कम-से-कम पढ़कर तो देखें!) तब उन्हें पता चला कि किसी बख़्शी आयोग ने मामले की छानबीन पहले ही कर रखी है और निलंबित कर्मचारियों की बदनीयती का कोई सबूत नहीं मिला था। किरण ने इसे पर्याप्त सबूत मानते हुए सबको बहाल कर दिया।

जब उनसे पूछा गया कि ''ऐसा आपने क्या इसलिए किया कि वे कर्मचारी आपका आभार मानते हुए आपके एहसान से दबकर काम करेंगे?'' तो किरण का उत्तर था, ''निलंबित कर्मचारियों को 75 प्रतिशत वेतन तो मिल ही रहा था और इतने लंबे समय से। मैंने सोचा मैं जनशक्ति को मुफ़्त में व्यर्थ क्यों जाने दूं। इसके अलावा मैंने बख़्शी आयोग की रिपोर्ट को आधार मानते हुए मामलों की अलग-अलग जांच करके ही फ़ैसला किया था। याद रखिए, मेरा काम फ़ैसले लेना था, न कि उन्हें टालना। विभागाध्यक्ष होने के नाते अगर मैं समस्याएं हल नहीं करती तो मैं स्वयं समस्या का एक भाग बन जाती।

दिल्ली के छ: पुलिस ज़िलों में से एक था उत्तर जिला, और अगस्त 1986 में किरण यहीं डिप्टी कमिश्नर थीं। उस समय क्षेत्रफल की दृष्टि से वह सबसे बड़े ज़िलों में से था और उसके 412 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 19,00,000 से अधिक आबादी थी (अब दिल्ली नौ पुलिस ज़िलों में बंटी हुई है)। उस क्षेत्र में पड़ोसी हरियाणा राज्य की सीमा से लगे 83 गांव थे। यह क्षेत्र हमेशा से ही सांप्रदायिकता और आपराधिक गतिविधियों से ग्रस्त रहा है। जब किरण ने कार्यभार संभाला तो डकैतियां, सेंधमारी, जेबकतरी और नशीली दवाओं का व्यापार एक आम बात थी। बहुत ही कम समय में किरण ने 1,033 लोगों के विरुद्ध निष्कासन की कार्रवाई शुरू करके उन्हें पुनर्वास के लिए निगरानी में रखवा दिया। मौके पर गिरफ़्तारियों और तुरंत की जाने वाली जांच के फलस्वरूप जघन्य अपराधों की दर में तेज़ी से कमी आई। एक बार फिर आम जनता मदद के लिए आगे बढ़ आई। विभिन्न इलाकों के चौकीदारों को हर महीने थानेदार के निर्देशन में परेड के लिए थाने बुलाया जाता था। इस दौरान चौकीदारों को उनके क्षेत्रों की गतिविधियों और वहां सक्रिय कुख्यात अपराधियों के बारे में आवश्यक जानकारी दी जाती थी। इस तरह चौकीदार पुलिस बल के सहायक ही बन गए और उनके साथ उसी के उपयुक्त व्यवहार किया जाता था। इस सहभागिता के फलस्वरूप उनका मनोबल बहुत बढ़ा। उनकी कार्यकुशलता और अनुशासन में भी वृद्धि हुई।

एकत्रित किए गए आंकड़ों की छानबीन से पता चला कि 15,000 की जनसंख्या वाले यमुना पुश्ता झुग्गी-क्षेत्र में अपराध की सबसे अधिक घटनाएं घट रही थीं। उस क्षेत्र के लोग बेहद ग़रीब थे और वहां पीने के पानी और घरेलू बिजली जैसी ज़रूरी सुविधाएं तक उपलब्ध न थीं। नशीले पदार्थों का व्यापार वहां खुलेआम होता था और इसमें महिलाएं अधिक सक्रिय भूमिका अदा कर रही थीं। किरण ने क्षेत्र में एक सार्वजनिक सभा आयोजित की और वहां के

निवासियों को ख़बरदार किया कि पुलिस बल किसी भी प्रकार की आपराधिक गतिविधि को बर्दाश्त नहीं करेगा। अपराध करने वाला चाहे पुरुष हो या स्त्री, किसी को भी बख़्शा नहीं जाएगा। जोकि किसी को नाहक तंग करने के लिए गिरफ़्तार नहीं किया जाएगा लेकिन उनकी मुजरिमाना हरकतों को माफ़ भी हरगिज़ नहीं किया जाएगा।

इस चेतावनी के बाद तुरंत कार्रवाई भी की गई। रोज़ अनेक लोगों को तुरत-फुरत गिरफ़्तार किया जाता था और कई को दिल्ली से निष्कासित भी कर दिया जाता था। इस घोषणा और कार्रवाई का लोगों पर जादू का-सा असर पड़ा जिसका सशक्त प्रमाण था अगली सार्वजनिक सभा में उपस्थित लोगों की संख्या। इस सभा में भी औरतें ज़्यादा मुखर थीं। उन्होंने माना कि वे नशीले पदार्थों की बिक्री जैसे आपराधिक धंधे करती हैं लेकिन उनके पास इसके अलावा कौन-सा विकल्प है? वे इतनी ग़रीबी में रहती हैं कि अपने बच्चों को एक वक्त की रोटी खिलाने के लिए भी उन्हें इस तरह के अपराध करने पड़ते हैं। डी. सी. पी. (उत्तर) इन मजदूर औरतों को क्या विकल्प दे सकती हैं जिससे उनके बच्चे भूखों न मरें? उनकी समस्याओं का किरण के पास क्या जवाब था? किसी की नीयत कितनी भी भली क्यों न हो लेकिन यहां प्रश्न नैतिकता का था।

ए.सी.पी. डी.एल. कश्यप और एस.एच.ओ. एम.डी. मेहता ने उनको आश्वस्त किया कि पुलिस उनकी हर संभव सहायता करेगी, परंतु पहले उन्हें अपनी नेकनीयती का सबूत देना होगा। इस प्रकार उस दिन पारस्परिक विश्वास और आपसी समझ का जन्म हुआ। किंतु ये बातें कहना आसान हैं, उन्हें कार्यरूप देना कठिन है। फिर भी किरण की सद्उद्देश्य से प्रेरित प्रतिबद्धताओं के कारण उन्हें प्राय: हर दिशा से एक जनसेवक, पद्मसेन गुप्ता ने यमुना पुश्ता झुग्गी-क्षेत्र की महिलाओं के लिए सिलाई मशीनों के रूप में बहुत ही उदार सहायता प्रदान की। उत्सवी जोश के साथ 'अपराध सुधार स्कूल' आरंभ हुआ। इन महिलाओं को सबसे पहले चांदनी चौक के झल्लीवालों के लिए सैकड़ों हरी कमीज़ें तैयार करने का कार्य सौंपा गया। कहना न होगा कि नशीले पदार्थ बेचने वाली और छोटे-मोटे अपराध करने वाली स्त्रियों की संख्या में काफ़ी गिरावट आई। आज उसी इलाके में वे अपनी संस्था 'नवज्योति' द्वारा झुग्गी-झोपड़ियों के बच्चों के लिए प्राथमिक स्कूल चलाती हैं।

किरण के अपराध निवारण कार्यक्रमों की ऐसी ही छाप रही है। यथार्थ पर आधारित इन कार्यक्रमों में हमेशा से ही मानवीय सोच का प्रभाव रहा है। यही कारण है कि जब वह अपने जनोन्मुखी कार्यों को आगे चलाने की ख़ातिर अपील करती हैं तो जनसमाज उनकी मदद के लिए आगे बढ़ जाता है। इन्हीं कारणों से उन्होंने देश के धनाधीशों से एक बड़ी विस्तृत अपील की है कि बड़े औद्योगिक घराने एक-एक गांव को अपना लें।

9

अंतःप्रेरित कर्म : प्रवर्तित व सुधारात्मक पुलिस

किरण की दृष्टि में पुलिस की भूमिका सदैव अपराध और अपराधिता का निवारण रही है, फिर जाकर खोज-बीन और अभियोजन की बारी आती है। ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं जो हमें उनकी दृढ़ आस्था का विश्वास दिलाते हैं। उदाहरण के तौर पर, 1980 में अवैध शराब निर्माताओं के उन्मूलन को ही लीजिए जिसका ज़िक्र आठवें अध्याय में किया गया है।

अगस्त 1986 में उन्हें (पुलिस उपायुक्त) डीसीपी (उत्तर जिला) नियुक्त किया गया। 1980 में जब किरण डीसीपी (पश्चिम)थीं। तब अपराधों में मुख्य थे, अवैध शराब बनाना व बेचना। अब यहां आपराधिक गतिविधियों के केंद्र में थी 'स्मैक' (चरस) की बिक्री और खपत। अवैध शराब की बिक्री में गिरावट का एक मुख्य कारण यह अवश्य हो सकता है कि दिल्ली प्रशासन अपनी मद्य-निषेध नीति में थोड़ा उदार हो गया जिसके फलस्वरूप सरकारी मद्य-बिक्री में वृद्धि हुई (और अवैध बिक्री कम हो गई)।

जैसे-जैसे वह नशीले पदार्थ संबंधी अपराधों के निवारण में बाहरी रूप से जुड़ती गईं, वैसे-वैसे इस समस्या से मानसिक रूप से भी जुड़ने लगीं। किरण के सामने स्पष्ट था कि नशीले पदार्थ और अपराध साथ-साथ चलते हैं और वह सिद्धांत के स्तर पर भी इस कारण-परिणाम संबंध को समझने में जुट गईं। उन्होंने अब इस विषय पर उपलब्ध पुस्तकों का अध्ययन किया तो पाया कि यद्यपि पश्चिमी देशों में इस विषय पर काफ़ी-कुछ काम किया जा चुका है किंतु भारतीय साहित्य और भारतीय परिदृश्य में उस पर बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। एक सरसरी जांच से पता चला कि नशीले पदार्थों के व्यसन की परिणति अधिकतर घरेलू हिंसा संबंधी अपराधों में होती है और यह हिंसा केवल मौखिक गाली-गलौज नहीं बल्कि बड़ी सीमा तक शारीरिक तथा मानसिक यंत्रणा, बल्कि शारीरिक हिंसा में भी अभिव्यक्ति होती है।

आश्चर्यजनक बात यह थी कि पुरुष व्यसनियों द्वारा इस प्रकार की हिंसा पिता या भाइयों के प्रति बहुत विरल थी। अत्याचार हमेशा मां और पत्नियों के प्रति होता था। नशे की लत से मजबूर इन व्यसनियों के लिए मां और पत्नी ऐसे सहज लक्ष्य बन जाते हैं जिनसे पैसे, ज़ेवर, और कपड़े तक छीने जा सकते हैं ताकि उनकी लत पूरी होती रहे।

दिल्ली पुलिस अधिनियम की धारा 47 का प्रयोग प्रायः नहीं किया जाता, हालांकि यह डी.सी.पी. को दंड देने का अधिकार देती है। इसके अंतर्गत वे समझा-बुझाकर सुधारने की पद्धति का उपयोग भी कर सकते हैं और चाहें तो दंडात्मक सुधार की पद्धति का भी। अपनी प्रवृत्ति के अनुसार किरण ने इन अधिकारों का बहुत ही सार्थक उपयोग किया।

इन अधिकारों के तहत वह उस व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई कर सकती थीं जिसने कानून को तीन बार तोड़ा हो और जिसका इलाके में रहना वहां की शांति और सुरक्षा के लिए खतरा हो। वह उस संबंधित व्यक्ति से स्पष्टीकरण मांग सकती थीं कि उसे शहर से क्यों न निकाल दिया जाए। इससे उस व्यक्ति को अपने प्रभाव-क्षेत्र से बाहर किसी अपरिचित वातावरण में रहने को मजबूर होना पड़ता। इस तरह वह मूलत: और प्रभावी रूप से अपनी ज़मीन से कट जाता। फिर भी ऐसे व्यक्ति को शहर में तब तक रहने की अनुमति होती है जब तक उसे कानून तोड़ते हुए पकड़ा नहीं जाता। इस धमकी ने नशीले पदार्थों के कई धंधेबाज़ों पर अंकुश लगाया। इस योजना का कमाल तो यह था कि बिना एक भी व्यक्ति को उखाड़े सब के-सब सामाजिक नियंत्रण के शिकंजे में आ गए और नागरिकों ने चैन की सांस ली।

डी.सी.पी. (पश्चिम) और डी.सी.पी. (उत्तर) के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान किरण इन अधिकारों का उपयोग किस प्रकार कर रही थीं, इसका अंदाज़ उनके दफ़्तर में हर दोपहर 2 से 5 बजे तक लगने वाली जन-अदालत में 250-300 लोगों के जनसमूह की मौजूदगी से होता है। ये लोग तरह-तरह की समस्याएं लेकर वहां आते थे, जैसे-कारादंड के योग्य अपराधों की सुनवाई तय करना, जमानत की व्यवस्था और आम सलाह-मशवरे। कर्मचारी इन लोगों से प्रार्थना-पत्र लेकर किरण के अध्ययन के लिए आवश्यक रिपोर्ट तैयार करते थे। किसी वकील की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। किरण की इस एकाग्रता और दृढ़निश्चयता से कर्तव्यपालन की प्रवृत्ति ने तीस हज़ारी न्यायालय के वकीलों को उनका विरोधी बना दिया। कुछ वकीलों की 'दाल-रोटी' मुकदमे को यथासंभव लंबा खींचे जाने से ही बनी रहती है। किरण ने अनजाने में ही सही फिर भी झटके से वकीलों का यह 'अधिकार' छीन लिया था परंतु उन्हें उन लोगों के प्रतिरोध की सीमा का अनुभव बाद में जाकर हुआ जब उन्होंने स्वयं को देश-भर की कानूनी कार्यप्रणाली को ठप कर देने वाले वकील-आंदोलन की अव्यवस्था में फंसा हुआ पाया (विस्तृत विवरण के लिए देखें अध्याय 11)।

किरण की 'सामाजिक न्याय-व्यवस्था' में अभियुक्त पुरुष या स्त्री को उसके अपराध-विशेष के संदर्भ में सफ़ाई देने के लिए कहा जाता और फिर उसे अपने माता-पिता या निकटतम संबंधियों या फिर पड़ोसियों को 'अदालत' में लाने को कहा जाता। इन लोगों को यह ज़िम्मेदारी दी जाती कि वे स्वयं अपराधी को उसके आपराधिक तौर-तरीकों से रोकें अन्यथा वह अधिक समय उनके साथ न रह पाएगा क्योंकि उसे एक या दो साल के लिए शहर-बदर कर दिया जाएगा। इस तरह पूरी ज़िम्मेदारी अपराधी पर ही डाल दी जाती। उसे लगता कि परिवार और पड़ोसियों ने उसे अपने साथ रहने का मौका दिया है तो उसका भी उनके प्रति कोई फ़र्ज़ बनता है। उससे परिवार और नज़दीक भी आ गए। किरण ने इनमें जो विश्वास दिखाया था उसे ये लोग किसी भी तरह तोड़ नहीं सकते थे। वैसे इलाक़े का बीट-कांस्टेबल भी उनके घर जाता-आता रहता था। किरण में कुछ विशेष बात अवश्य है जो शायद उनकी ईमानदारी, मेहनत, सदेच्छा और संवेदना ने उनमें पैदा की है। किसी स्थान पर उनके प्रभारी होने-न-होने से गिरफ्तारियों का ग्राफ़ जिस तरह से घटता-बढ़ता है, वह बहुत-कुछ स्पष्ट कर देता है। 'जन अदालतों' में बतौर डी.सी.पी. (उत्तर) और बतौर डी.सी.पी. (पश्चिम) बैठना भिन्न अनुभव था

क्योंकि उत्तर क्षेत्र में दूसरा अपराधी चरसी था। अपराधियों के माता-पिता बताते कि बेटों पर बेतरह दबाव डालने या उनको बांधने तक के बावजूद वे नशे की लत नहीं छुड़वा सके हैं।

''मुझे बहुत धक्का लगा,'' किरण कह उठती हैं। ''मैं एक पुलिस अधिकारी की तरह काम करने की कोशिश कर रही थी जबकि इन युवकों को तो औषधि, चिकित्सा और समाज के सहयोग की अधिक आवश्यकता थी।''

उन्हें स्थिति की गंभीरता का तब आभास हुआ जब उन्हें अपने अध्ययन के दौरान पता चला कि इन घटनाओं में से, जिनमें मां और पत्नी के प्रति हिंसा की घटनाएं भी शामिल हैं। केवल 4 प्रतिशत की ही रिपोर्ट पुलिस में लिखवाई जाती है, जबकि घरेलू हिंसा से 94 प्रतिशत परिवार प्रभावित थे।

1986 में दिल्ली में नशीले पदार्थों में व्यसनियों के उपचार के लिए केवल एक ही केंद्र था और वह था नई दिल्ली नगरपालिका द्वारा स्थापित 'आशियाना'। नशीले पदार्थों के व्यसन को अपने परिवार से दूर रखा जा सके, नशीली दवाएं उसकी पहुंच से दूर हों, और उसकी ठीक से चिकित्सा हो सके। उन्होंने ऐसी जगहों की तलाश शुरू कर दी और उन्हें अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। वह जगह ठीक उनके सामने ही थी: उनका अपना पुलिस थाना। वहीं 'नवज्योति' की संकल्पना का जन्म हुआ, जून 1986 में। उन्होंने सहायता के लिए लोगों से अपील की और हमेशा की तरह वह खुलकर मिली। पलंग, कंबल, दरियों, टी. वी., पंखों, डॉक्टरों, योग-प्रशिक्षकों और दवाइयों की मानों बाढ़ आ गई। खाना प्राय: या तो मरीज़ के घर से आता था अथवा पास के होटल से। उद्घाटन के समय वेद मारवाह और राजेंद्र मोहन उपस्थित थे और पुनर्वास-कार्य को उनका बहुत जबर्दस्त समर्थन प्राप्त था। किरण की यह समाज-सेवा आखिरकार एक पंजीकृत संस्था बन गई, जिसका नाम रखा गया नवज्योति सुधार, नशा-मुक्ति और पुनर्वास के लिए दिल्ली पुलिस का संस्थान। पुलिस आयुक्त इसके पदेन अध्यक्ष हैं, किरण इसकी संस्थापक मुख्य सचिव हैं और यह संस्था अभी भी कार्य कर रही है।

नवज्योति केंद्र बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गया और जनता से जितनी सहायता मिल रही थी उससे एक साल में ऐसे ही पांच और केंद्र विकसित हो गए। उनके प्रभार के अंतर्गत 19 पुलिस थानों में से छ: में नशीले पदार्थों के व्यसनियों के लिए उपचार केंद्र चल रहे थे। यह आयोजन इतना लोकप्रिय व ज़रूरी-सा हो गया था कि कभी-कभी तो एक केंद्र में एक समय में लगभग 100 मरीज़ों का प्रबंध करना पड़ता था, जबकि हर केंद्र में मूलत: 30 मरीज़ों की ही गुंजाइश थी।

1986 में एन. डी. पी. एस. (नार्कोटिक ड्रग्ज़ एंड साइकोट्रॉपिक सबस्टैंसेज़) अधिनियम जारी किया गया। इस अधिनियम की धारा 27 के अनुसार, किसी के इस अधिनियम के दायरे में आ जाने के लिए उसका नशीले पदार्थों सहित पकड़ा जाना ज़रूरी नहीं है। यदि वह जाना-माना व्यसनी हो, उसके विरुद्ध उसके व्यसन के बारे में शिकायतें दर्ज हों अथवा डॉक्टरी जांच से यह प्रमाणित हो जाए कि वह व्यसनी है तो उस पर यह अधिनियम लागू हो सकता है। यदि ऐसा व्यक्ति चिकित्सा के लिए स्वेच्छा से तैयार हो जाता है तो उसे कानूनी तौर पर उपचार

केंद्रों में भेजा सकता है। सिर्फ़ धारा 21 के तहत ही यह व्यवस्था है कि किसी व्यक्ति के पास एक विशेष मात्रा में नशीले पदार्थ पाए जाने पर ही कार्रवाई शुरू की जा सकती है। नवज्योति एक पंजीकृत स्वयंसेवी संस्था है और एन. डी. पी. एस. अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत दर्ज लोगों को वहां भेजा जाता है।

1987 में जब वह पुलिस उपायुक्त (उत्तर) के पद पर नियुक्त थीं, तब एक गिरफ्तारी हुई थी जिससे किरण भी जुड़ी थीं। यह गिरफ्तारी बंद में दिसंबर 1994 में दैनिक अखबारों की सुर्खियां बनीं। उन्होंने 1987 में दो व्यक्तियों को 90 किलो चरस सहित गिरफ्तार किया था। यह मुकदमा सेशन अदालत में पेश किया गया। सेशन जज छानबीन और सबूतों से संतुष्ट थे। उन्होंने दोनों को सज़ा सुना दी। तब उन दोनों अभियुक्तों ने दिल्ली उच्च न्यायालय में अपील की। दिसंबर 1994 में उन्हें रिहा कर दिया गया और न्यायाधीश ने गिरफ्तार करने वाली किरण बेदी पर ऐसे शब्दों में अभियोग लगाया जिन्हें किरण अनावश्यक रूप से निरादरसूचक और मानहानिपरक मानती हैं।

एन. डी. पी. एस. अधिनियम के अनुसार, इस अधिनियम के अंतर्गत गिरफ़्तारी के समय गिरफ़्तार करने वाले अधिकारी के अलावा एक राजपत्रित अधिकारी भी मौजूद होना चाहिए। एक अख़बार की फ़ाइल-फ़ोटो के अनुसार दोनों की गिरफ़्तारी के समय, किरण बेदी के साथ उनके स्टाफ़ के अधीनस्थ कर्मचारी थे। फ़ोटो में किसी राजपत्रित अधिकारी का नामोनिशान भी नहीं था। उच्च न्यायालय के जज के लिए यह कानूनी बारीकी रिहाई को उचित सिद्ध करने के लिए काफ़ी थी, और अपने आदेश में माननीय जज ने किरण पर प्रचार की भूखी अधिकारी होने का आरोप लगाया।

किरण क्रुद्ध होकर कहती हैं, ''यह कतई उचित नहीं था। जब भी कोई बड़ी पुलिस कार्रवाई होती है, पत्रकार घटना की पुष्टि के लिए देर-सबेर, जब उनका जी चाहे, हमें फोन करते हैं। इसलिए अनिवार्यत: आने वाले इन टेलीफोनों का इंतज़ार करने के बजाय मैंने प्रेस को बयान दे दिया था। यह किसी को प्रचार का भूखा तो नहीं बना देता और यदि उस फ़ोटो तकनीकी की बारीकी मेरे लिए निंदात्मक टिप्पणी को उचित सिद्ध कर सकती है, तो उन सेशन जज के बारे में क्या कहा जाएगा जिन्होंने उन दोनों को सज़ा सुनाई थी और वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों द्वारा समय-समय पर और किसी महत्त्वपूर्ण गिरफ़्तारी के पश्चात अचानक बुलाए गए प्रेस सम्मेलनों के बारे में आप क्या कहेंगे? क्या वे सभी प्रचार के भूखे होते हैं या वे जनता को वास्तविकता से अवगत कराने का कर्तव्य पूरा करते हैं? मेरे विचार में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पूछताछ की प्रक्रिया को हानि पहुंचाए बगैर, मैं क्या और कितनी जानकारी उद्घाटित करती हूं। आयकर विभाग, सीमाशुल्क विभाग, नशीले पदार्थ के विभाग और पुलिस द्वारा ज़ब्तियों का प्रदर्शन एक साधारण बात है। तो मुझे लेकर इतना बवाल क्यों?''

किरण प्रचार की भूखी हैं और हमेशा चर्चा के केंद्र में रहना चाहती हैं- इस प्रकार के आरोप उन पर बार-बार लगाए जाते रहे हैं। 1989 में जब वह नार्कोटिक कंट्रोल ब्यूरो (एन. सी. बी.) की उपाध्यक्ष थीं तब वह भी उस एन. सी. बी. टोली का भाग थीं जिसने पश्चिमी उत्तर

प्रदेश की हरी-भरी पहाड़ियों में देहरादून जिले के चकराता और टुनि तहसीलों पर छापा मारा था। उस इलाके में राजनीति संबंध रखने वाले बड़े-बड़े ज़मींदार बड़े पैमाने पर सीधे-सादे किसानों से ज़बर्दस्ती पोस्ता की खेती करवाते थे। प्रेस के सदस्य भी उस टोली के साथ गए थे। उस दल को दो भागों में बांटा गया था। एक टोली चकराता तक और दूसरी और आगे टुनि गई थी। इस पुस्तक के फोटोग्राफ़र, अजय गोयल ने किरण के साथ टुनि जाने की इच्छा प्रकट की तो किरण ने कोई आपत्ति नहीं की। टुनि में उन्होंने पटवारियों को खेतों में से पोस्ता के पौधे उखड़वाने की व्यवस्था सौंपी। अजय ने पोस्ता के खेत में पोस्ता के फूलों का गुच्छा हाथ में लिए खड़ी किरण की एक बहुत सुंदर तस्वीर खींची।

किरण को दिल्ली में न्यायमूर्ति वाधवा आयोग के सामने पेश होना था, इसलिए वह एन.सी.बी. दल के लौटने से पहले दिल्ली वापस आ गईं। कुछ दिन बाद दैनिक अख़बारों ने उनकी पोस्त के खेत वाली तस्वीर टुनि के किस्से सहित छाप दी। यह समाचार बेशक देहरादून से भेजा गया था। एन. सी. बी. अधिकारियों के मुंह सूज गए। क्या वह रोशनी में आने के लिए ही दूसरों से पहले दिल्ली लौटी थीं? जो भी हो, उस दिन के बाद से उन्हें कभी भी एन. सी. बी. की क्षेत्र-कार्रवाई में शामिल नहीं किया गया।

वास्तव में उन्हें कभी भी प्रशिक्षण के लिए विदेश नहीं भेजा गया, जबकि हर साल किसी सम्मेलन में हिस्सा लेने के कम-से-कम दो या तीन मौके आते थे जब किरण को भेजा जा सकता था। एक बार प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के पास एक फाइल भेजी जिसमें पूछा गया था कि स्कूलों में नशीले पदार्थो के व्यसन की समस्या पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने व भाषण देने के लिए किस अधिकारी को मलेशिया स्थित क्वालालम्पुर भेजा जाए?- विशेषकर 'नवज्योति' केंद्र की स्थापना के पश्चात। इसलिए उन्होंने फ़ाइल पर लिख दिया, ''किरण क्यों नहीं?'' इस तरह सम्मेलन शुरू होने से दो दिन पहले उन्हें प्रधानमंत्री के कार्यालय से सूचना मिली कि उन्हें मलेशिया भेजा जा रहा है।

'प्रचार की भूखी' की उपाधि के अलावा किरण को विवादास्पद अधिकारी भी कहा जाता है। क्या उनका विवादास्पद होना केवल कल्पना है या फिर उनमें या उनके काम करने के ढंग में कोई ऐसी बात है जिसके कारण उन पर यह आरोप लगाया जाता है? इस नज़रिए से देखा जाने वाला उनका सबसे पहला काम था एक संसद-सदस्य (जे. एस. बराइया) के निजी सचिव ए. पी. करुणाकरण की गिरफ्तारी। उस पर इलज़ाम था कि उसके पास वह हीरे की अंगूठी थी जो कि शायद दिसंबर 1980 में दिल्ली में हुई एक डकैती के समय चोरी हुई थी। इस संदर्भ में एक ख़तरनाक अपराधी ने बयान दिया था कि उसे उपर्युक्त निजी सचिव ने शरण दी थी और उसके पास वह अंगूठी थी जो उस दिन लूट में से उसे दी गई थी। तब किरण और उनके विशेष स्टाफ़ के प्रभारी अधिकारी, ज्ञानचंद ने सचिव के घर पर नज़र रखी। खुरदरे कंबल से स्वयं को ढंककर वे दोनों रात को अंधेरे में चौकीदार की तरह परिसर में घूमते रहे। जब उन्हें मौका मिला, उन्होंने उस व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया और ख़बर के मुताबिक उसने बेशक वही अंगूठी पहन रखी थी। उसकी गिरफ़्तारी की ख़बर 24 और 25 अप्रैल, 1981 के विभिन्न

समाचारपत्रों की सुर्खियों में थी।

पुलिस कमिश्नर पी. एस. भिंडर उस गिरफ़्तारी का बुरा मान गए और उन्होंने किरण को खूब कसकर डांट पिलाई। उन्होंने किरण से पूछा कि क्या वह नहीं जानती थीं कि गिरफ़्तार किया गया व्यक्ति वर्तमान सांसद का निजी सचिव है। उनकी हिम्मत कैसे हुई कि उन्होंने पहल अपने हाथ में ले ली? उनका कहना था कि किरण को कोई कार्रवाई करने से पहले उनसे सलाह करके अनुमति लेनी चाहिए थी। अपनी नौकरी के उन प्रारंभिक दिनों में भी किरण अपने फ़ैसले पर अटल रहीं और अपने ख़िलाफ़ कोई अंतिम फ़ैसला लेने का भार उन्होंने पुलिस अध्यक्ष पर ही छोड़ दिया।

उनके रात के अंधेरे में मिज़ोरम छोड़ने को भी विवादास्पद बना दिया गया था। किरण को विधिमंत्री द्वारा धमकाया गया था कि यदि उन्होंने अपनी बेटी की मेडिकल की सीट लिखित रूप में वापस नहीं की तो आंदोलन कर रहे युवा उनके घर का घेराव कर लेंगे और राज्य सरकार उसके परिणामों की ज़िम्मेदारी नहीं लेगी। किरण अपने घर बहुत दूर बिलकुल अकेली थीं। जान को ख़तरा था और राज्य-व्यवस्था की तरफ़ से सुरक्षा का कोई आश्वासन नहीं था। ऐसे में उनके पास अपना प्रबंध स्वयं करने के अलावा कोई और चारा नहीं था। अत: उन्होंने राज्यपाल के निवास पर जाकर उनको परिस्थितियों के आधार पर लिए गए अपने फ़ैसले की सूचना दी। राज्यपाल (स्वराज कौशल) ने जब उनके फ़ैसले को स्वीकृति दी तभी वह दिल्ली के लिए रवाना हुई (विस्तृत विवरण के लिए देखें अध्याय 12)।

जैसा कि पहले दिखलाया जा चुका है, गोवा से उसके प्रस्थान का कारण भी जीवन का ख़तरा ही था। यह बात अलग है कि उस समय खतरा उनकी बेटी के जीवन को था। गोवा में उनके वरिष्ठ अधिकारी आई. जी. पी. द्वारा मंजूर की गई छुट्टी को स्वीकृत होने में इतना अधिक समय लगा था कि उनको अपनी बेटी के उपचार की ज़िम्मेदारी संभालने के लिए फ़ौरन दिल्ली पहुंचना पड़ा और इसके लिए उन्हें अपनी ड्यूटी से फरार घोषित कर दिया गया। यह ऐसा आरोप था जो अगर सिद्ध माना जाता तो उनके कार्यजीवन पर बड़ा भारी दाग़ लग जाता।

पुलिस महानिरीक्षक (जेल) के रूप में उनके कार्यकाल के दौरान कैदियों को कंडोम वितरण भी एक ग़ैरज़रूरी का विषय बन गया था। स्वास्थ्य रक्षा दिवस के अवसर पर आए एक डॉक्टर ने अपने निर्दिष्ट कार्य से हटकर अपनी तरफ़ से ही कुछ किशोर कैदियों से समलैंगिकता के विषय पर प्रश्न किए। उसने स्थिति को और उलझा दिया और अगले दिन प्रेस को साक्षात्कार के दौरान यह बयान दे दिया कि जेल में 90 प्रतिशत कैदी समलिंगकामी थे। यह ख़बर दुनिया-भर में ऐसी फैली कि बी. बी. सी. ने भी इसे मुख्य समाचार बना लिया। बहुत दिनों तक यह मामला चलता रहा। यह ऐसा विषय था जिसमें किरण हरगिज़ उलझना नहीं चाहती थीं। उन्होंने देखा कि अगर वह सरकारी दृष्टिकोण को स्पष्ट नहीं करेंगी तो वह डॉक्टर अपने मनमुताबिक अफ़वाहें फैलाता रहेगा। इसलिए उन्होंने सफाई देने का निश्चय किया, जो उन्हें न जाने कितनी बार देनी पड़ी। जब यह प्रक्रिया शुरू हुई तभी अदालत में एक याचिका दायर कर दी गई जिसमें भारतीय दंड संहिता में समलैंगिकता के विरुद्ध कानून की वैधता पर आपत्ति उठाई गई

थी। इससे एक और विवाद खड़ा हो गया।

किरण की सफ़ाई इस प्रकार थी:

1. समलैंगिकता की समस्या है ज़रूर परंतु इतनी नहीं जितनी बयान देने वाले डॉक्टर ने बिना बाकायदा अध्ययन किए बताई है।
2. उसकी टिप्पणी, स्वयं उसके मुताबिक, नवयुवकों के केवल एक छोटे-से समूह से बात करने पर आधारित थी, इसलिए हम कैसे कह सकते हैं कि 90 प्रतिशत कैदी इस विकृति से प्रभावित हैं?
3. भारतीय कानून के अनुसार समलैंगिकता एक अपराध है और कैदियों को कंडोम देकर जेल इसे बढ़ावा नहीं दे सकती।
4. तिहाड़ जेल में समलैंगिकता की समस्या भली भांति नियंत्रण में है और कंडोम आसानी से उपलब्ध करवाकर उसे बढ़ावा नहीं देना चाहिए।
5. जेल में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार बहुमत इस आचरण के विरुद्ध था।
6. संबंधियों, विशेषकर पत्नियों ने कंडोम वितरण के सुझाव का विरोध किया है क्योंकि वे अपने पतियों को ऐसी आदत को बढ़ावा देने वाले वातावरण के कारण समलिंगकामी नहीं बनने देना चाहतीं।
7. समलैंगिकता के व्यक्तिगत मामलों से निबटने के लिए पर्याप्त प्रबंध हैं और इसीलिए यथास्थिति में बदलाव लेने की आवश्यकता नहीं है।
8. अत्यधिक भीड़ के कारण जेल में समलिंगकामी के लिए कोई एकांत स्थान या मौका नहीं मिल सकता।

किंतु आज तक किरण एक तथाकथित योग्य डॉक्टर द्वारा किए गए सुझावों का खंडन करती आ रही हैं और यह विवाद भी उनके पहले से जमा विवादों के अंबार का एक हिस्सा बन गया है। किन्हीं लोगों ने इस मसले को और उभारना चाहा। उनका तर्क कुछ इस प्रकार था कि किरण बेदी चाहे समलैंगिकता को एक ऐब मानें लेकिन इस विषय पर दुनिया के विचार बदल रहे हैं। किरण अपना पुराणपंथी मत औरों पर थोप रही हैं और ज़रूरी नहीं कि उनके विचार सही हों। क्या कारावासों में इतरलैंगिकता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाने की बात पर विचार करना ज़रूरी नहीं है? जेल आख़िर वह स्थान है जहां कुछ अधिकारों को सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। तिहाड़ जेल में किए गए व्यापक सुधारों का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि ऊर्जा को व्यर्थ नष्ट करने के स्थान पर इसका उपयोग सकारात्मक, सृजनशील और स्वस्थ गतिविधियों में किया जाए। इसी संकल्प के फलस्वरूप तिहाड़ के निवासियों में इतना अभूतपूर्व हृदय-परिवर्तन संभव हो सका कि स्वयं जाकर वहां की स्थिति देखे बिना कोई इस पर विश्वास भी नहीं कर सकता।

जब किरण का वकीलों से टकराव हुआ तो वह एक और विवाद के घेरे में आ गई। 1988 में उस टकराव के बाद इस मामले की छानबीन करने वाला न्यायमूर्ति वाधवा आयोग अभी

अपनी रिपोर्ट तैयार भी न कर पाया था कि किरण का स्थानांतरण बड़े अपमानजनक ढंग से सी. आर. पी. एफ- (केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल) में कमांडेंट के रूप में कर दिया गया। इस पद पर ऐसे अधिकारी की नियुक्ति होती है जिसने अपने कार्यकाल के आठ वर्ष पूरे कर लिए हों। लेकिन किरण तो सोलह वर्ष पूरे कर चुकी थीं। स्पष्ट था कि वकील उन्हें 'दंडित' करने में सफल हुए थे। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने उनके बारे में यह सूचना पढ़ी तो उन्होंने किरण को बुलवाया। किरण प्रधानमंत्री से मिलीं। प्रधानमंत्री ने सीधे सवाल किया, ''आप कहां नियुक्त होना चाहती हैं, 'नार्कोटिक्स में?'' किरण ने कहा, ''यह बहुत अच्छा होगा,'' लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हम सुधार के क्षेत्र में काम करना अधिक पसंद करेंगी जो अपेक्षाकृत नरम क्षेत्र है। प्रधानमंत्री ने कहा, ''नहीं आपको कठिन क्षेत्र में जाना चाहिए। मैं चाहता हूं कि आप पूरी तरह जुटकर इस धंधें में सक्रिय तमाम लोगों को पकड़ें?।'' जब 24 घंटे के भीतर किरण को तबादले का आदेश मिला तो उन्हें बड़ा अचरज हुआ। सी. आर. पी. एफ- कार्यालय में एक दिन काम करने के बाद वह नार्कोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो (एन. सी. बी.) के कार्यालय के लिए प्रस्थान कर गई और बेचारे वकील हाथ मलते रह गए।

10

दुर्दम क्षेत्र में नियुक्ति

नार्कोटिक कंट्रोल ब्यूरो (एन. सी. बी.) में काम करने के दौरान किरण को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नशीले पदार्थों से संबद्ध बहुत-सी जानकारी मिली थी। वह राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत थीं और इस समस्या से संबद्ध अनेक संगोष्ठियों और व्याख्यानों में भाग लेती थीं। इंटरपोल-जैसी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों और विविध देशों के नशीली औषधियों से संबद्ध संपर्क-अधिकारियों से मिलने के मौके उनको मिलते रहते थे। इससे नशीले पदार्थों के दुरुपयोग और उनके व्यापार के बारे में किरण की जानकारी और स्पष्ट हो गई थी। उन्हीं दिनों किरण डॉक्टर की उपाधि के लिए 'द परफ़ार्मेंस अप्रेज़ल सिस्टम' (कर्तृत्य की मूल्यांकन-पद्धति) विषय पर अध्ययन कर रही थीं। अब एक नई बात से गहराई से जुड़ जाने के कारण किरण ने अपना विषय ही बदल दिया- 'ड्रग अब्यूज़ एंड क्रिमिनैलिटी' (नशीले पदार्थों की लत और अपराधिता)। किरण को अच्छे-से-अच्छे शिक्षक, अधिक-से-अधिक जानकारी और पूरी तरह प्रामाणिक दस्तावेज़ आसानी से मिल रहे थे। मगर वह अपना शोध प्रबंध लिख नहीं पाईं क्योंकि उन्हें अपने ड्यूटी के क्रम में यात्राएं करनी पड़ती थीं और इस विषय पर अनेक बैठकों और संगोष्ठियों में भाग लेना और भाषण भी देने पड़ते थे। इसके अतिरिक्त वाधवा आयोग की कार्यवाही के कारण उन्हें अदालतों में बहुत समय देना पड़ता था। लेकिन किरण ने इस विषय पर काफ़ी सामग्री जमा कर ली थी जिसे बाद में अधिक सुविधाजनक स्थिति मिलने पर मिलाकर व्यवस्थित रूप दिया गया। इस बीच 'नवज्योति' कार्यक्रम अपना कमाल दिखला रहा था और नशीली दवाओं के व्यसन की चिकित्सा में इसके पुरोगामी कार्य को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसा मिल रही थी। अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से इस संस्था को सम्मानित किया गया जिसके फलस्वरूप पूरे भारत में अनेक नशा मुक्ति केंद्र खुल गए। इनमें से अनेक केंद्रों से मिलने वाले समाचारों से किरन के कार्यक्रम को बड़ा सहारा मिला था। हालांकि किरण अपना शोध प्रबंध लिख न सकीं लेकिन उन्होंने अपने शोधकार्य के लिए अनेक भेंटवार्ताएं कीं और इससे संबद्ध प्रश्नावलियां भी तैयार कर ली थीं।

किरण की अगली नियुक्ति उत्तर-पूर्वी राज्य मिज़ोरम में हुई। एन. सी. बी. के अति व्यस्त कार्यक्रम के मुकाबले यहां किरण के पास काफ़ी समय था इसलिए उन्होंने अपना शोध प्रबंध लिखना आरंभ करने का फ़ैसला किया। उन्होंने महसूस किया कि नशीले पदार्थों से जुड़े अपराधियों को खोज निकालना अब उतना आसान न होगा जितना दिल्ली में था और उसमें समय भी बहुत लगेगा। दिल्ली में वह डी सी पी (उत्तर) के रूप में उनसे मिलती थीं। अब वे मिल भी जाएं तो उतनी सरलता से जानकारी नहीं देंगे क्योंकि अब किरण का अधिकार-क्षेत्र वह

नहीं रह गया था। किरण ने दिल्ली के तत्कालीन आई. जी. (जेल) एच. पी. कुमार को पत्र लिखकर तिहाड़ जेल में कैद लगभग 250 व्यसनियों से मिलने की अनुमति मांगी थी। किरण तो खुश थीं कि उस पद पर एक पुलिस अधिकारी नियुक्त था। उन्होंने पत्र में स्पष्ट किया था कि किस प्रकार शोधकार्य अपराध और पुलिस से जुड़ा है। नशे की लत और अपराध के आपसी रिश्ते के अध्ययन से प्राप्त परिणामों से अपराध की रोकथाम में बहुत मदद मिलेगी। कुछ समय बाद अपनी एक दिल्ली-यात्रा के दौरान वह आई. जी. (जेल) कुमार से मिलने उनके दफ़्तर गई ताकि पत्र द्वारा उड़ाई गई बात को आगे बढ़ाया जा सके। लेकिन उन्होंने किरण को बैठने तक को नहीं कहा और जब किरण ने अपने आने का कारण बताया तो रूखा-सा उत्तर मिला- ''मेरे निजी सचिव को अपना आवेदन पत्र दे जाइए।'' बस, उन दोनों की मुलाकात का अंत इसी एक वाक्य के साथ हो गया था। किरण ने इसके पहले इसी विषय को लेकर जेल-अधीक्षक से भेंट की थी और उन्होंने कहा था कि इसमें कोई परेशानी ही नहीं है, सिर्फ आई. जी. की अनुमति लेना ज़रूरी है जो कि निरी औपचारिकता-भर है। किरण अपना आवेदनपत्र आई. जी. के दफ़्तर में छोड़ आई। काफ़ी समय बीत जाने पर भी जब उन्हें उस पत्र का कोई उत्तर नहीं मिला तो उन्होंने एक बार फिर जेल-अधीक्षक से संपर्क किया। वहां वह यह सुनकर हैरान रह गईं कि आई. जी. ने न सिर्फ़ अनुमति देने से इनकार कर दिया है बल्कि यह बात लिखित रूप से देने से भी इनकार कर दिया है। किरण को बताया गया कि उनके काम करने का यही तरीका है, कि कोई भी समस्या हो तो बस चुप्पी साध लो। बात अपने-आप 'खत्म' हो जाएगी।

इस वजह से किरण ने एक बार फिर अपने शोध प्रबंध का विषय बदल लिया। इस बार उन्होंने 'नशीले पदार्थों की लत और पारिवारिक हिंसा' पर शोध करने का फ़ैसला किया। अपने अध्ययन के लिए उन्होंने 'नवज्योति' केंद्रों में दाख़िल व्यसनियों और नशे की लत से मुक्ति पा चुके लोगों को चुना। वे लोग बहुत खुलकर सामने आए। वे बड़े उत्साह से साक्षात्कारों में भाग लेते और प्रश्नावलियों के उत्तर लिखते। इस तरह उन्हें अपना आभार व्यक्त करने का मौका भी मिल गया था। वह जब-जब मिज़ोरम से दिल्ली आतीं तब-तब एक समय में बीस-बीस लोगों को टोली बनाकर उनसे बातचीत करतीं। इस तरह किरण का काम आगे बढ़ाता गया।

नशे की लत और इसकी रोकथाम से संबद्ध अध्ययन के लिए किरण को मिज़ोरम में नियुक्ति बहुत सहायक सिद्ध हुई क्योंकि दिल्ली के मुकाबले यहां किरण के पास काफ़ी ख़ाली समय था। मिज़ोरम ने लंबे समय तक बाग़ी और विद्रोही गतिविधियों को झेला था और वहां लोगों को कर्फ्यू की आदत पड़ गई थी। इसके अलावा वहां सड़कों पर बिजली की रोशनी कम ही होती थी। पांच बजे के बाद सड़कें खाली हो जाती थीं और सारी सामाजिक गतिविधियां छः बजे तक बंद हो जाती थीं। पांच बजे के बाद कोई सरकारी काम होता ही नहीं था। 16 से 18 घंटों तक काम करने की आदी किरण को यह नवीनता बड़ी सुखद लगी होगी। इस स्थिति में किरण को अपनी शोध-सामग्री उलटने-पलटने और ढेर-सा लिखने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था। लेकिन अपने शोधकार्य के लिए किरण पूरा श्रेय आई आई टी दिल्ली के सामाजिक विज्ञान विभाग को देती हैं जिसके अंतर्गत वह शोध कर रही थीं।

किरण बताती हैं कि इस संकाय ने उन्हें सोचने और अपनी कार्य-योजना तैयार करने की आज़ादी दी थी, जो सृजनशीलता की अनिवार्य शर्त है। प्रबंधन विशेषज्ञ डॉ. के. एल. नादिर और मनोविज्ञान विशेषज्ञ डॉ. अनुराधा शर्मा ने उनका मार्गदर्शन अति उत्तम ढंग से किया। दोनों ही किरण की क्षमता से परिचित थे और लेखनकार्य में बराबर उनका समुचित मार्गदर्शन करते रहे। अनुराधा शर्मा को वह सच्ची मित्र और गुरु मानती हैं। सामाजिक विकास परिषद के एक कंप्यूटर विशेषज्ञ और समाजशास्त्री डॉ. बी. एस. नागी ने उनके पास उपलब्ध सामग्री का विश्लेषण नवीनतम तरीकों से करने में मदद की। अंततः सितंबर 1993 में किरण को 'ड्रग अब्यूज एंड डॉमेस्टिक वायलेंस'(नशीले पदार्थों की लत और पारिवारिक हिंसा) विषय पर डॉक्टर की उपाधि प्रदान की गई।

मिज़ोरम-निवासी मद्यपान के बेहद शौकीन हैं। खुद पीने और बेचने के लिए वे चावल से 'जू' नामक शराब घर में ही बनाते हैं। वे ज़बरदस्त मांसाहारी भी हैं और सुअर तथा कुत्तों के मांस सहित हर प्रकार के मांसाहारी भोजन को बहुत पसंद करते हैं। वे मूल रूप से किसान नहीं हैं किंतु केंद्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता के कारण वहां चावल की बहुतायत है। हालांकि राज्य में मद्य-निषेध निगम लागू है लेकिन 'जू' बहुत बड़ी मात्रा में आसानी से उपलब्ध होती है। किरण के नीचे कार्यरत कई पुलिस अफ़सर शराबी थे। शुरू-शुरू में तो दफ़्तर में शराब की तीव्र दुर्गंध से उन्हें मतली होने लगती थी पर धीरे-धीरे उन्हें इसका आदी होना पड़ा। वह यह भी सोचतीं कि वे अगर ड्यूटी के दौरान होश में हैं तो सब ठीक-ठाक है। लेकिन किरण ने पाया कि वे कुछ घंटों कभी-कभी तो दो घंटों से ज़्यादा समय तक संयम नहीं रख पाते थे। किरण उनकी सांस्कृतिक परंपरा में दख़ल तो नहीं देना चाहती थीं लेकिन अपने कार्यकर्ताओं का इस प्रकार अक्षम हो जाना उन्हें बहुत चोट पहुंचाता था। बार-बार अपराध करने वालों के पूर्ववर्ती के बारे में जांच करने पर पता चला कि उनमें से अधिकतर शराबी हैं। मिज़ोरम में किरण को दिल्ली की भांति विशेष अधिकार नहीं मिले थे इसलिए वहां इतनी खूबी से सफल होने वाली कार्यनीति यहां नहीं अपनाई जा सकती थी। लेकिन फिर भी उन्होंने शराबी अफ़सरों के उपचार के लिए केंद्र खोला और इसके अच्छे परिणाम भी मिले। इसके अलावा कम उम्र के लोग, विशेष रूप से बारह-तेरह वर्ष के बच्चे भी नशीले पदार्थों के लती थे। प्रॉक्सीवान और हेरोइन का खुलेआम सेवन होता था। इससे भी बुरी बात यह थी कि जब कम उम्र बच्चों को ये मादक पदार्थ नहीं मिलते तो वे नसों में शराब के इंजेक्शन लगा लेते थे जिससे काफ़ी मौतें हो जाती थीं। इसी कारण उस क्षेत्र में एड्स के अधिक मामले पाए जाते हैं। मणिपुर, मिज़ोरम और नागालैंड के जनजातीय क्षेत्र में नशीले पदार्थों का उपयोग बड़े पैमाने पर होता था। असम में भी यह व्यसन एक आम बात थी, फिर भी इन क्षेत्रों से कम। स्थानीय संस्कृति और भारत-बर्मा सीमा पर किसी प्रकार की नाकाबंदी की गैर-मौजूदगी की वजह से हेरोइन और अन्य प्रकार की नशीली दवाएं आसानी से मिल जाती थीं। एक बार फिर किरण ने महसूस किया कि अपराध की रोकथाम के लिए उन्हें इस क्षेत्र को प्राथमिकता देनी होगी।

11

किरण की अग्निपरीक्षाः वकीलों की हड□ताल

किरण के पूरे सेवाकाल में सबसे अधिक तनावभरा, कष्टकर और क्लांति का दौर था वकीलों की हड़ताल का जो जनवरी 1988 में शुरू होकर जून तक चली थी, बेशक अदालत के भीतर और बाहर इससे संबद्ध कानूनी लड़ाई अप्रैल 1990 में जाकर समाप्त हुई थी।

वकीलों द्वारा शुरू की गई हड़ताल का आधार 15 जनवरी, 1988 को दोपहर दो बजे घटी एक घटना है। नई दिल्ली के सेंट स्टीफन्स कॉलेज की अंग्रेज़ी (ऑनर्स) की छात्रा रत्ना सिंह जब महिलाओं के कॉमन-रूम से संलग्न गुसलख़ाने से बाहर आई तो उसने हरे रंग का चारख़ानेदार कोट पहने एक आदमी को वहां से भागते हुए देखा जहां उसने अपना पर्स रखा था।

मदद के लिए चिल्लाती हुई रत्ना ने उस आदमी का पीछा किया। अंग्रेज़ी (ऑनर्स) की ही एक और छात्रा कविता इस्सर ने उसे हरे कोट वाले आदमी का पीछा करते देखा तो वह भी शोर मचाने लगी। कैमिस्ट्री (ऑनर्स) द्वितीय वर्ष के छात्र आनंद मिश्र ने यह शोर सुनकर उस व्यक्ति को पकड़ लिया जिसका पीछा दोनों लड़कियां कर रही थीं। इतिहास (ऑनर्स) द्वितीय वर्ष के आनंद प्रसाद और संस्कृत (ऑनर्स) अंतिम वर्ष की मंजूषा दामले भी वहां पहुंच गए। रत्ना सिंह ने अपना पर्स टटोलकर बताया कि उसमें से 110 रुपए, एक कैसेट टेप और उसके डॉक्टर द्वारा किया गया नुस्ख़ा गायब है। ये चीज़ें पकड़े गए आदमी के पास से मिल गईं तो छात्रों ने कॉलेज के अधिकारियों को पूरी बात बता दी। उपप्राचार्य हारेस जैकब ने रौशनारा पुलिस स्टेशन को सूचना भेज दी। जब थाने से सब-इंस्पेक्टर कवल सिंह वहां पहुंचा तो पकड़े गए व्यक्ति ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और कहा कि वह एक पढ़ा-लिखा बेरोज़गार युवक है और उसने मजबूरन चोरी की है उसने लिखित रूप में स्वीकार की इसी जगह से एक दिन पहले भी उसने लड़कियों के बटुओं में से रुपए चुराए थे। मंजूषा दामले का डी.टी.सी. बस-पास भी उसी के पास मिला। उसने लिखित बयान में बताया कि उसका नाम राकेश कुमार है और वह ई-40, मॉडल बस्ती, दिल्ली में रहता है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ. आई. आर.) नं. 9/88/यू/एस 380/111/आई. पी. सी. रौशनारा थाने में दर्ज करवाई गई। थाने में बेशक उसने अपना बयान बदलकर एक दूसरा ही पता लिखवा दिया।

जांच कर रहे अधिकारी को मालूम था कि पकड़ा गया व्यक्ति अपना नाम और पता गलत लिखवा रहा है। कचहरी ले जाते वक्त उन्होंने खचाखच भरी डी. टी. सी. बस में अभियुक्त को

हथकड़ी लगाकर ही सफ़र कराना उचित समझा। अदालत में पेश होने तक के लिए यह हथकड़ी लगाई गई थी मगर कचहरी पहुंचते ही भारी बवाल मच गया जब वहां मौजूद वकीलों ने अभियुक्त को तीस हज़ारी अदालत के वकील राजेश अग्निहोत्री के रूप में पहचान लिया। जांच अधिकारी को उन्होंने पीटा और उस पर चीख़े-चिल्लाए। अभियुक्त की असलियत पता लग जाने पर अधिकारी ने तुरंत हथकड़ी खोल दी। मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट प्रतीप चड्ढा ने सबूतों के अभाव के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध कार्रवाई करने का आदेश भी जारी किया।

किरण का कहना है, ''यह बहुत ही आश्चर्यजनक फ़ैसला था। अभियुक्त को कचहरी में फ़ैसले के लिए नहीं बल्कि हवालात में वापसी के आदेश या जमानत के लिए पेश किया गया था। बिना सबूतों को देखे ही उन्होंने अभियुक्त को 'निर्दोष' घोषित कर दिया था।''

उसी दिन, 15 जनवरी, 1988 को तीस हज़ारी के वकील हड़ताल पर बैठ गए। दिल्ली बार एसोसिएशन के अध्यक्ष हरीचंद ने घोषणा की कि सेंट स्टीफन्स कॉलेज के छात्रों ने राजेश अग्निहोत्री को झूठमूठ फंसा दिया है क्योंकि कुछ दिन पहले राजेश अग्निहोत्री और छात्रों के बीच यूनिवर्सिटी स्पेशल बस में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों को लेकर हाथापाई हो गई थी। हरीचंद के अनुसार इन छात्रों ने उसे पीटा और उसे छात्रावास में ले जाकर कई घंटों तक बंद रखा। राजेश अग्निहोत्री के पिता इसी कॉलेज के वनस्पति-विज्ञान विभाग में रीडर थे। बाद में एक दिन जब वह अपने पिता से मिलने कॉलेज आया उसी दिन छात्रों ने उसे पकड़कर झूठे केस में फंसा दिया। सेंट स्टीफन्स छात्र संघ के तत्कालीन अध्यक्ष रंजीत पुनहानी के अनुसार, इस घटना (अपने सहयोगी की गिरफ़्तारी के प्रति वकीलों की प्रतिक्रिया) ने कानून के प्रति वकीलों की प्रतिबद्धता में छात्रों का विश्वास तोड़ा है। मजिस्ट्रेट का मत था कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रत्यक्षत: कोई मामला नहीं बनता है इसलिए पुलिस को चाहिए कि उसे तुरंत रद्द कर दे। मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने अपना मत इन शब्दों में रिकॉर्ड किया था, ''कोई भी ऐसी सामग्री रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है जिसके आधार पर अभियुक्त को बंदी बनाए रखने को या उस पर मुकदमा चलाए जाने को न्यायसंगत ठहराया जा सके। किसी ने भी उसे रुपए चुराते हुए नहीं देखा है और न ही उससे कुछ बरामद हुआ है। इसलिए उस पर मुकदमा चलाने के कोई मायने नहीं हैं...'' (हस्ताक्षर: प्रदीप चड्ढा, मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, दिनांक 16 जनवरी, 1988)। उन्होंने इस बात पर ध्यान देने की जरूरत ही नहीं समझी कि आख़िर इस मामले को आगे बढ़ाने में पुलिस की क्या दिलचस्पी हो सकती है। दिन गुज़रते गए और हड़ताल ज़ोर पकड़ती गई। 21 जनवरी को वकील एक प्रतिवादसूचक जुलूस की शक्ल में नारे लगाते हुए डी.सी.पी. (उत्तर) किरण बेदी के कार्यालय पहुंच गए। वे ज़बरदस्ती किरण के कार्यालय में घुस गए और उन पर हमला करने का प्रयास करने लगे। वह उस समय अपने जिले के राजपत्रित अधिकारियों के साथ 26 जनवरी की परेड की तैयारियों को लेकर मीटिंग में व्यस्त थीं। स्थिति को भांपकर वे सब अधिकारी तुरंत खड़े होकर वकीलों और किरण के बीच आ गए और वकीलों को उन्होंने धकेलकर बाहर कर दिया। ऐसा कर चुकने के बाद अधिकारियों ने किरण को कमरे में बंद कर दिया ताकि उन पर हमला न हो सके। मौके पर मौजूद अतिरिक्त डी.सी.पी. एम. एस. संधू ने वरिष्ठतम अधिकारी होने के नाते कमान संभाल ली। उनके साथ

अन्य अधिकारियों के अलावा ए.सी.पी. प्रभात सिंह, ए.सी.पी. डी. एल. कश्यप, विनय चौधरी, रामकुमार और एस.बी.एस. त्यागी भी थे।

घंटों वकील धमकियां देते रहे और गंदे नारे लगाते रहे। सूं यथासंभव उनसे टकराना नहीं चाहते थे इसलिए वह सब कुछ सहन करते रहे लेकिन कुछ कांस्टेबल ऐसा न कर पाए। कुछ वकीलों ने सिपाहियों के नाम के बिल्लों और टोपियों से खींचा-तानी शुरू कर दी तो उन्होंने जवाबी हमला किया। बस फिर तो कयामत ही आ गई। कुछ वकीलों और कुछ सिपाहियों को भी चोटें आईं। कई फोटोग्राफरों के कैमरे तोड़ डाले गए। इस निरंकुश उद्दंड हंगामे के बाद वकीलों को एक ही तकलीफ़ थी। किरण के साथ दुर्व्यवहार करने की जिस मंशा से वे लोग आए थे वह पूरी न हो सकी। अब तो उन्हें किरण का 'सिर' चाहिए था। अनिश्चित काल के लिए हड़ताल घोषित करके उन्होंने मांग रखी कि किरण को सेवा से निलंबित किया जाए। उनका आरोप था कि किरण ने उन पर लाठीचार्ज का आदेश किया था ताकि वे ज़ख़्मी हो जाएं उन्होंने अपनी चोटों के लिए मुआवजा भी मांगा था मगर किरण के निलंबन की शर्त अटल थी। इस घटनाक्रम के बड़ी तेज़ी से बदलते दृश्यों के अलग-अलग मुकामों पर अनेक चश्मदीद गवाह थे। इसलिए अगले दिन के समाचारपत्रों में हर पक्ष द्वारा दिए गए वृत्तांत प्रकाशित हुए जिनमें उल्लेख था चोटों का, टूटे हुए कैमरों का और गंदे नारों का और, दूसरी तमाम बातों का।

प्रकाशित समाचारों से स्पष्ट था कि वकील हमले के माध्यम से लिंगभेद पर आधारित अपना संदेश संप्रेषित करना चाह रहे थे, वे एक सेवारत महिला का मान भंग करना चाहते थे। अगर ऐसा नहीं था तो इतने आक्रामक रवैये या फिर इस्तेमाल की गई भाषा का क्या अर्थ निकलता है? अगर प्रश्न सिर्फ़ वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को जवाबदेही का था तो पुलिस कमिश्नर का घेराव भी किया जा सकता था या किसी और तरह से उन्हें परेशान किया जा सकता था। किरण की कार्यशैली में ज़रूर कुछ ऐसा था जिससे वकील बौखलाए हुए थे। 7 फरवरी तक उनके पास किरण बेदी के विरुद्ध कोई भी ठोस बात न थी। इसलिए हथकड़ी वाली बात को तूल देते हुए, पुलिस की ज़्यादतियों का झूठा बहाना बनाते हुए वे किरण को निलंबन और बर्ख़ास्तगी की मांग करते रहे।

पलटकर देखा जाए तो लगता है कि वकीलों के इस प्रबल रोष के पीछे किरण की अपराध विरोधी गतिविधियां तो नहीं थीं? किरण को जो कमिश्नरी अधिकार दिए गए थे उनके तहत वह अपनी कचहरी लगाकर प्रभावशाली ढंग से अपराधों की रोकथाम कर रही थीं, जिसमें शहर-निकाला भी शामिल था। इस तरह अनेक वकीलों, बिचौलियों की रोज़ी-रोटी पर बुरा असर पड़ा था। आख़िर ये लोग मुख्य रूप से छोटे-मोटे अपराधियों, जेबकतरों, अपने ही या दूसरों के घरों में चोरी करनेवालों और व्यसनियों को जमानत दिलवाने के सहारे ही पैसा कमाते थे। यह बात भी सोचकर देखने लायक है।

दिल्ली के उपराज्यपाल एच. एल. कपूर ने 22 जनवरी, 1988 को इस घटना की मजिस्ट्रेटी जांच का आदेश जारी किया था जिसकी रिपोर्ट एक सप्ताह के भीतर दी जानी थी।

वकील इस जांच के बारे में कुछ सुनने को तैयार ही नहीं थे। किरण की बर्ख़ास्तगी से कम

किसी भी शर्त पर उन्हें समझौता मंजूर नहीं था।

भारत में प्रचलित यूनियन और एसोसिएशन प्रणाली का प्रभावी उपयोग करते हुए दिल्ली के वकील पूरे देश के पांच लाख वकीलों को हड़ताल में शामिल करवा लेने में सफल रहे। कानूनी पेशे के इतिहास में इतने बड़े पैमाने की हड़ताल एक रिकॉर्ड है। आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि जंगल की आग-सी यह हड़ताल किसी ऊँचे सिद्धांत या संवैधानिक संकट से उत्पन्न नहीं हुई थी। इसका आधार सिर्फ वकीलों का एकसूत्री कार्यक्रम था- किरण बेदी की बर्ख़ास्तगी और यह सब उस व्यक्ति को हथकड़ी लगाने के कारण हो रहा था जो अपना और पता बार-बार बदल-बदलकर बतला रहा था और जिसे छात्रों ने रंगे हाथों पकड़कर कानूनी कार्रवाई के लिए पुलिस को सौंपा था। फ़र्क सिर्फ़ इस बात से पड़ा कि संयोगवश वह व्यक्ति भी वकील था।

जांच मजिस्ट्रेट ने 4 फरवरी, 1988 को अपनी रिपोर्ट पेश की। उन्होंने यह माना था कि घटनाक्रम के विवरण से स्पष्ट हो गया है कि राजेश अग्निहोत्री निश्चित रूप से चोरी के अपराध से जुड़ा था और रौशनारा थाने की पुलिस द्वारा उसकी गिरफ़्तारी उचित थी। हां, यह उन्होंने अवश्य माना था कि राजेश को हथकड़ी लगाना अनुचित था। वकीलों ने तुरंत मांग की कि हथकड़ी लगाने के कारण संबद्ध सब-इंस्पेक्टर को निलंबित करके उसके विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई की जानी चाहिए।

इस बीच 21 जनवरी को डी.सी.पी. (उत्तर) के कार्यालय के बाहर वकीलों पर किए गए लाठीचार्ज के मामले को लेकर एक न्यायिक जांच आरंभ कर दी गई थी। जांच दिल्ली उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त जब न्यायमूर्ति पी. एन. खन्ना को करनी थी। उन्हें निर्देश दिया गया था कि वह एक सप्ताह के भीतर एक अंतरिम रिपोर्ट और एक माह के भीतर अंतिम रिपोर्ट दे दें। लेकिन इतनी कार्रवाई वकीलों के लिए पर्याप्त न थी। उनकी मांग थी कि जांच दिल्ली उच्च न्यायालय के एक वर्तमान जज करें। अपनी बात चलाने में वे सफल भी हुए।

सुप्रीम कोर्ट के वकीलों ने 7 फरवरी को अपनी हड़ताल वापस ले ली लेकिन निचली अदालतों के वकील अपनी एकसूत्री ज़िद पर समझौता करने को तैयार न थे। इस मामले से संबद्ध कोई भी अगला कदम उठाने से पहले उन्हें किरण बेदी की बर्ख़ास्तगी चाहिए थी।

अपनी मांग पूरी करवाने के लिए तीस हज़ारी अदालत के वकीलों द्वारा गठित पंद्रह सदस्यों वाली कार्यकारी समिति ने क्रमिक भूख हड़ताल शुरू कर दी।

इस तरह कचहरियों का काम ठप्प पड़ा रहा। 17 फ़रवरी को तीस हज़ारी अदालत के परिसर में एक अभूतपूर्व दंगा-फ़साद हुआ। समयपुर और बादली जैसे दूर-दराज़ इलाकों से और निकट के क्षेत्रों से भी ट्रकों और टैम्पों में भर-भरकर लोग अपनी समझ में गैरकानूनी और बेबुनियाद हड़ताल के विरुद्ध प्रदर्शन करने आए। उन्होंने हड़ताली वकीलों के विरुद्ध नारे लगाए। वकीलों ने भी विरोधी दल गठित करके जवाबी हमला किया। खूब गाली-गलौज और पथराव हुआ जिसमें दोनों ओर से लोगों के अलावा कई दर्शक भी ज़ख़्मी हुए। लोगों को अलग करने और व्यवस्था कायम करने के लिए पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा। कई लोगों को

गिरफ़्तार किया गया जिनमें सबसे प्रमुख व्यक्ति था दिल्ली नगर-निगम पार्षद राजेश यादव।

इस घटना के बाद वकीलों का आंदोलन और भड़क उठा। उनका दावा था कि उस दंगे की जुगत किरण बेदी ने स्वयं की है और साथ ही उन्होंने घोषणा की कि उन्हें किरण का सिर चाहिए।

इस प्रसंग का एक दिलचस्प पहलू यह था कि स्वयं वकील कार्यक्रम पर एकमत न थे। सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट के लगभग सभी वरिष्ठ वकील हड़ताल के सख़्त विरुद्ध थे, जबकि जूनियर वकीलों ने ज़िद्द ठान रखी थी कि किरण बेदी की बर्ख़ास्तगी तक वे चैन से न बैठेंगे। वरिष्ठ वकीलों का आग्रह था कि इस विषय पर बहुमत की सही राय जानने के लिए गुप्त मतदान करवाया जाना चाहिए। ज़ोरदार विरोध और प्रदर्शनों के साथ सुप्रीम कोर्ट बार ऐसोसिएशन के पुस्तकालय में गुप्त मतदान हुआ। दिल्ली बार एसोसिएशन की कार्रवाई समिति के अध्यक्ष गोविंद मुखौती ने सबको आश्वासन दिया था कि मतदान के समय किसी प्रकार की ज़ोर-जबरदस्ती नहीं होगी और अगर हुई तो वे अपने पद से इस्तीफ़ा दे देंगे। लेकिन मतदान पेटियां ज़बरन उड़ा ली गईं। सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन के अध्यक्ष एम. सी. भंडारे ने इस ग़ैरलोकतांत्रिक और कायरतापूर्ण कार्य बताते हुए इसकी घोर निंदा की। उन्होंने घोषणा की, ''जो लोग मानव अधिकारों के लिए लड़ते हैं उन्हें यह देखना चाहिए कि औरों के मतदान के अधिकार का खंडन न हो। सुप्रीम कोर्ट के मौन बहुमत ने 7 मार्च से इस घेराबंदी को हटाने का फ़ैसला किया है।''

अगर पेटियों को ज़बरन उठा ले जाने का कोई प्रमाण चाहिए था तो अगले दिन कुछ समाचार पत्रों में प्रकाशित वे तस्वीरें पर्याप्त थीं जिनमें कुछ वकील सुप्रीम कोर्ट परिसर से पेटियां उठाकर ले जाते दिखाए गए थे। इन तस्वीरों में प्रमुख रूप से दिखाई दे रहे थे नई दिल्ली बार एसोसिएशन के अध्यक्ष ठाकुर ओंकार सिंह और नई दिल्ली बार एसोसिएशन के एक सदस्य राजेश वाधवा। मगर दोनों ने दावा किया कि शक्लो-सूरत में समानता के बावजूद ये तस्वीरें उनकी नहीं है। गोविंद मुखौती ने बयान दिया था कि उनके लड़कों द्वारा मतदान पेटियों को उठा ले जाने और चुनाव-प्रक्रिया में बाधा डालने का 90 प्रतिशत प्रमाण बेशक उपलब्ध था लेकिन निश्चित प्रमाण में चूंकि 10 प्रतिशत की गुंजाइश फिर भी थी, अत: वे त्याग पत्र नहीं देंगे। बाद में उन्होंने अवश्य अपनी मुद्रा बदली और इस्तीफ़ा देने को तैयार हो गए। दिल्ली बार एसोसिएशन के चेयरमैन दलजीत सिंह की आंखों में आंसू लाने के लिए यह बात काफ़ी थी और उन्होंने घोषणा की कि एक बार दौलत की शक्ति और विपरीत प्रचार के सहारे उनके प्रयासों को कुचला जा रहा है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात हुई। वकीलों का एक प्रतिनिधिमंडल गृहमंत्री बूटासिंह के पास गया, और उसने किरण बेदी के निलंबन की मांग की। गृहमंत्री ने उनकी अपील अस्वीकार कर दी और अनुरोध किया कि इस मामले से जुड़ी उच्चस्तरीय जांच समिति की रिपोर्ट आने तक वे अपना आंदोलन रोक दें। अपनी मांग की नामंजूरी पर हड़ताली वकीलों ने गृहमंत्री के विरुद्ध प्रदर्शन किया। मगर महिला अधिकारों के आंदोलनकारियों, महिला संगठनों और

विश्वविद्यालयों के छात्रों ने बूटासिंह के बयान के समर्थन में एक विशाल रैली की।

दिल्ली में तो वकीलों ने अपना आंदोलन जारी रखा लेकिन पूरे देश के अनेक उच्च न्यायालयों ने इसकी निंदा करते हुए इसे ग़ैरकानूनी घोषित कर दिया। उनका निश्चित मत था कि इस तरह कर्तव्य के त्याग को कठोर सजा मिलनी चाहिए। उन्होंने अपना मत दिया कि अपनी प्रतिबद्धताओं के प्रति किसी भी प्रकार की ज़िम्मेदारी महसूस किए बग़ैर मामूली-से-मामूली बहाने पर भी हड़ताल कर बैठने की वकीलों ने आदत ही बना ली। परिणामस्वरूप आम लोग परेशान होते हैं। वकीलों की हड़तालें तो अजीब से निरर्थक कारणों से भी शुरू होती रही हैं। जैसे एक जज द्वारा 'योर ऑनर' कहकर संबोधित न किए जाने पर ऐतराज़, वकील के देर से आने के कारण मुकदमे का ख़ारिज़ हो जाना; और एक अलग तेलंगाना प्रदेश के निर्माण के लिए राजनीतिक मांग।

इस बीच दिल्ली के प्रशासक के कार्यालय ने वकीलों की मांग स्वीकार करते हुए न्यायमूर्ति खन्ना द्वारा की जाने वाली जांच का आदेश रद्द कर दिया। उसे लगा कि इस पूरे मामले को इसकी शुरुआत से जांचने के लिए एक नया आयोग नियुक्त किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप न्यायमूर्ति एन. एन. गोस्वामी और न्यायमूर्ति डी. पी. वाधवा को लेकर एक आयोग नियुक्त कर दिया गया।

गोस्वामी-वाधवा आयोग से एक निश्चित समय के भीतर अंतरिम रिपोर्ट मांगी गई। इन्होंने वह रिपोर्ट दी, जिसमें किरण बेदी को हर संभव मुद्दे पर दोषी ठहराया गया था। इसके तुरंत बाद किरण का तबादला सी.आर.पी.एफ. (केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल) में कर दिया गया। चौबीस घंटों के अंदर ही स्वयं प्रधानमंत्री राजीव गांधी के व्यक्ति हस्तक्षेप के फलस्वरूप यह आदेश बदल दिया गया। प्रधानमंत्री ने किरण को व्यक्तिगत मुलाकात के लिए बुलवा भेजा और सुझाव दिया कि मादक द्रव्यों के व्यापार की रोकथाम में उनकी क्षमताओं का बेहतर उपयोग होगा। (देखें अध्याय 9)

लेकिन उस वक्त न तो प्रधानमंत्री और न ही किरण स्वयं जानती थीं कि उन्हें कितनी लंबी कानूनी लड़ाई का सामना करना है। किरण के दिन की शुरुआत वकील के कक्ष में होती (अगर उन्हें सौभाग्य से कोई वकील मिला होता), इसके बाद सुनवाई के लिए वह कचहरी जातीं। उन पर चलाए जा रहे मुकदमे ने एक सार्वजनिक मुकदमे की शक्ल इख़्तियार कर ली। इसके बाद वह एन. सी. बी. कार्यालय जातीं और फिर दोबारा वकील के कक्ष में जाकर अगले दिन की सुनवाई की तैयारी में जुट जातीं, या दिल्ली पुलिस के अपने सहयोगी अधिकारियों- एम. एस. संधू, विनय चौधरी, प्रभात सिंह, जिंदर सिंह आदि के साथ सुनवाई की तैयारी करतीं। ऐसे भी दिन आते जब किरण को तीन-तीन कचहरियों- जांच आयोग, दिल्ली उच्च न्यायालय और सुप्रीम कोर्ट-में स्वयं उपस्थित रहना पड़ता। वह स्वयं उपस्थित होकर अपनी पैरवी करतीं जबकि विपक्ष की ओर से उनके विरुद्ध बहस करने को वरिष्ठतम वकील के. के. वेणुगोपाल हाज़िर रहते। उन दिनों किरण सुबह, दोपहर, शाम, रात-जीवन को एक-एक घंटे में बांटकर जी रही थीं वह बताती हैं कि उनके दिन चार मुख्य भागों में बंट गए थे

जिनमें दृश्य बदलते रहते और साथ ही बदलती रहतीं प्राथमिकताएं और रणनीतियां। वकीलों के एक वर्ग का नारा था- ''अंत तक लड़ेंगे, किरण बेदी का सिर लेंगे।'' इस लड़ाई में एक औरत वकीलों की एक विराट संगठित संघ के विरुद्ध खड़ी थी। निस्संदेह दोनों पक्षों की अपनी-अपनी शिकायतें थीं, लेकिन प्रश्न यह था कि अभियुक्त कौन है और अभियोक्ता कौन? जीवन में पहली बार किरण स्वयं अपनी वकील बनीं और सर्वोच्च न्यायालय में उन्होंने अपनी याचिका दर्ज करवाई। उस समय किरण के एक मित्र अनिल बाल ने उनकी बहुत मदद की। किरण बताती हैं कि अनिल ने उनका परिचय एक वरिष्ठ एडवोकेट गोपाल सुब्रह्मण्एम से करवाया था। उनके कार्यालय से किरण को याचिकाएं तैयार करने और सुप्रीम कोर्ट में अपनी पैरवी स्वयं करने के लिए हर प्रकार की कानूनी सलाह और अन्य मदद मिलती थी, न्यायमूर्ति श्री ई. एस. वेंकटरामैया, न्यायमूर्ति श्री एम. एम. दत्त और न्यायमूर्ति श्री एन. डी. ओझा द्वारा सुनाए गए फ़ैसले कानूनी इतिहास का एक हिस्सा बन चुके हैं और अक्सर इन ऐतिहासिक फ़ैसलों को उद्धृत किया जाता है। जांच आयोग के समक्ष किरण की स्थिति अभियुक्त की थी। इस पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए किरण ने खुद अपनी पैरवी करने का अधिकार सुप्रीम कोर्ट से मांगा था। जब जांच आयोग ने किरण को प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कठघरे में आने को कहा तब किरण ने वहां आकर कहा था, ''श्रीमान, मैं बयान नहीं देना चाहती, इसकी अनुमति मुझे दी जाए।'' न्यायमूर्ति कुछ देर तक मौन रहे, और तभी न्यायाधीश वाधवा ने किरण से कुछ देर बैठ जाने को कहा था। इस बीच वह अपने सहयोगी से सलाह करना चाहते थे। किरण ने उत्तर दिया कि ''मुझे लंबे समय तक खड़े रहने की आदत है।''

न्यायमूर्ति वाधवा ने किरण के वकील जी. रामास्वामी से पूछा, ''क्या आप अपने मुविक्कल को शपथ न लेने की सलाह दे रहे हैं? आप जानते हैं कि अदालत की अवमानना के लिए इन पर मुकदमा चलाया जा सकता है।''

उनके वकील ने उत्तर दिया, ''योर ऑनर, मैं सिर्फ़ यह मांग कर रहा हूं कि मेरी मुविक्कल को अपने बचाव का मौका दिया जाए। पहले गवाहों से प्रश्न पूछे बिना आप इन्हें वह मौका लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।'' इसके बाद रामास्वामी ने न्यायाधीशों से कहा कि अगर वे चाहें तो इस दलील को अस्वीकृत कर सकते हैं ताकि हम उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर कर सकें।

अगले दिन, 20 मई 1988 को इंडियन एक्सप्रेस में छपा यह वर्णन कचहरी में स्थिति का बखूबी संकेत करता है:

किरण बेदी द्वारा शपथ लेने से इनकार

बृहस्पतिवार को श्रीमती किरण बेदी ने न्यायमूर्ति वाधवा और गोस्वामी के समक्ष शपथ लेने से इनकार कर दिया। उन्हें शुक्रवार तक यह कारण बताने का निर्देश दिया गया है कि

उन पर न्यायालय की अवमानना का मुकदमा क्यों न चलाया जाए?

बृहस्पतिवार को श्रीमती बेदी के साथ ही सब-इंस्पेक्टर जिंदर सिंह से भी ज़िरह की जानी थी। लेकिन वह कचहरी में आए ही नहीं। जिंदर सिंह के नाम ग़ैरजमानती वारंट जारी किया गया है। उन्हें 23 मई को कचहरी में पेश होना होगा।

श्रीमती बेदी के वकील ने दोनों न्यायाधीशों को सूचित किया कि वह उनके द्वारा जारी व्यवस्था के विरुद्ध उच्चतर न्यायालयों में अपील करेंगे। इस बीच तीस हज़ारी बार एसोसिएशन ने हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में यह याचिका दे दी है कि जारी कार्यवाही को रोकने के लिए कोई एकपक्षीय कदम न उठाया जाए।

श्रीमती बेदी ने जब शपथ लेने से इनकार किया, उसके पहले उनके वकील ने तर्क पेश किया था कि आयोग के समक्ष चूंकि उनकी हैसियत एक अभियुक्त की-सी हैं, अत: उन्हें शपथ लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। फिर भी न्यायाधीशों ने उनसे ज़िरह किए जाने का आदेश दिया। तब श्रीमती बेदी ने कहा, ''मुझे यह कहने की अनुमति देने की कृपा करें कि मैं कोई बयान नहीं देना चाहती हूं।'' कचहरी में 'अवमानना' शब्द गूंज उठा। अदालत की कार्यवाही स्थगित हो गई और किरण बेदी के नाम 'कारण बताओ' नोटिस जारी कर दिया गया।

साथ-ही-साथ न्यायालय ने भूतपूर्व पुलिस अध्यक्ष श्रीमान वेद मारवाह और भूतपूर्व अतिरिक्त पुलिस उपायुक्त संधू को भी शुक्रवार के दिन ज़िरह के लिए पेश होने का आदेश जारी किया।

श्रीमती बेदी की गवाही सुनने-देखने के लिए बृहस्पतिवार को कचहरी में बड़ी संख्या में वकील मौजूद थे। न्यायाधीशों द्वारा आसन ग्रहण करने के पांच मिनट बाद जब पुलिस विभाग के बचाव के लिए अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री जी- रामास्वामी ने कचहरी में प्रवेश किया तो वहां उत्तेजतना की लहर दौड़ गई। सोमवार को बार एसोसिएशन के इनकी उपस्थिति पर कई बार एतराज़ किया।

श्री रामास्वामी ने पहले इस मामले में अपनी स्थिति को स्पष्ट किया। उन्होंने बताया कि उन्हें इस मामले की पैरवी करने के लिए भारत सरकार ने आदेश दिया है इसलिए यह उनका कर्तव्य है। श्री रामास्वामी ने कहा, ''वकीलों ने मेरे साथ अपनी गुप्त रणनीति पर बातचीत नहीं की है। अत: मेरा अन्त:करण साफ़ है।''

इसके बाद रामास्वामी ने मुकदमे के विषय पर चर्चा करते हुए कहा कि इस समय की जा रही जांच के दौरान सिर्फ़ तथ्य नहीं ढूंढ़े जा रहे हैं, बल्कि विशिष्ट व्यक्तियों के विरुद्ध लगाए गए विशिष्ट आरोपों की जांच की जा रही है। उन्होंने कहा, ''श्रीमती बेदी के इस आयोग के समक्ष लगभग एक अभियुक्त के रूप में मौजूद हैं।''

श्री रामास्वामी ने कहा कि अगर कोई आम गवाह आयोग के समक्ष साक्ष्य देने से इनकार करता है तो आप उसे सज़ा दे सकते हैं लेकिन एक अप्रत्यक्ष अभियुक्त को आप बयान देने

के लिए मजबूर नहीं कर सकते।

श्री रामास्वामी ने श्रीमती इंदिरा गांधी के मामले को उद्धृत करते हुए स्मरण कराया कि इन्हीं परिस्थितियों में श्रीमती गांधी ने शाह आयोग के समक्ष बयान देने से इनकार कर दिया था। उन्होंने कहा, ''हाईकोर्ट ने गवाही न देने के उनके अधिकार का समर्थन किया था।''

न्यायमूर्ति वाधवा ने प्रश्न किया, ''क्या आप यह कह रहे हैं कि श्रीमती बेदी शपथ नहीं लेंगी?'' श्री रामास्वामी ने उत्तर दिया कि उनके विरुद्ध बयान देने वालों से वह पहले ज़िरह कर लें फिर श्रीमती बेदी को पेश किया जा सकता है।

न्यायाधीशों ने व्यवस्था दी कि श्रीमती गांधी और श्रीमती बेदी के मामलों में मूलभूत अंतर है। श्रीमती गांधी ने आयोग के समक्ष शपथपत्र दायर नहीं किया था जबकि श्रीमती बेदी ने ऐसा किया है। न्यायमूर्ति गोस्वामी ने कहा, ''उनसे ज़िरह उन्हीं के शपथपत्र को लेकर की जा रही है।''

न्यायधीशों ने एस. आई. जिंदर सिंह से कठघरे में आने को कहा, लेकिन वह कचहरी में मौजूद नहीं थे। उनके विरुद्ध 23 मई को पेश होने के लिए ग़ैरजमानती वारंट जारी किया गया।

इसके बाद श्रीमती बेदी को कठघरे में बुलाया गया। न्यायमूर्ति गोस्वामी ने पूछा, ''श्रीमती बेदी, क्या आपने शपथपत्र दाख़िल किया है?'' अभी वह उत्तर दे ही रही थीं कि बार एसोसिएशन के वकील बाबा गुरचरन सिंह ने उन्हें शपथ लेने को कहा।

प्रवाचक ने श्रीमती बेदी को अपने साथ-साथ शपथ दोहराने के लिए कहा। श्रीमती बेदी ने उत्तर दिया, ''श्रीमान, मैं बयान नहीं देना चाहती, मुझे इसकी अनुमति दी जाए।''

वकीलों ने शोर मचा दिया- ''अवमानना! अवमानना!'' तो श्री रामास्वामी ने उत्तर दिया, ''आप इन्हें शपथ लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।''

न्यायाधीश कुछ देर तक चुप रहे। न्यायमूर्ति वाधवा ने श्रीमती बेदी को बैठ जाने के लिए कहा ताकि वह अपने सहयोगी से सलाह कर लें। श्रीमती बेदी ने उनसे कहा, ''मुझे लंबे समय तक खड़े रहने की आदत है।''

न्यायमूर्ति वाधवा ने श्री रामास्वामी से पूछा, ''क्या आप अपने मुवक्किल को शपथ न लेने की सलाह दे रहे हैं? अदालत की अवमानना के लिए इन पर मुकदमा चलाया जा सकता है।''

श्री रामास्वामी ने न्यायाधीशों से कहा कि वह इंदिरा गांधी मामले में दिए गए फ़ैसले का एक अंश पढ़कर सुनाना चाहते हैं। ''इसके बाद अगर आप मेरे दावे को रद्द करते हैं तो मैं इन्हें शपथ लेने को कह दूंगा।''

फ़ैसला पढ़कर सुनाया गया। श्री रामास्वामी ने कहा कि अभियुक्त को केवल अपना बचाव करने का मौका दिया गया था। ''गवाहों से हमारी ज़िरह के बग़ैर आप इन्हें वह मौका

लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते हैं।'' न्यायमूर्ति वाधवा ने जब शपथपत्र का ज़िक्र किया तो श्री रामास्वामी ने कहा, ''अगर आप कानून बारीकियों में जाएंगे तो मैं आपसे कई कदम आगे बढ़कर और ज़्यादा तकनीकी नुक्ते निकाल सकता हूं।''

इस मुकाम पर श्रीमती बेदी ने पूछा कि क्या वह शपथ लेकर यह कह सकती हैं कि वह कोई बयान नहीं देंगी? न्यायाधीश वाधवा ने कहा, ''इसे अवमानना माना जाएगा।''

श्री रामास्वामी ने उनसे अपनी दलील के विरुद्ध व्यवस्था देने का आग्रह किया ताकि वह उच्च न्यायालयों में अपील कर सकें। न्यायाधीश वाधवा ने उत्तर में पूछा, ''इससे बढ़कर आप और क्या विरोधी व्यवस्था चाहते हैं?'' इसके बाद श्रीमती बेदी के नाम नोटिस जारी कर दिया गया जिसमें पूछा गया था कि अदालत की अवमानना के लिए उन पर मुकदमा क्यों न चलाया जाए।

इसी मामले को लेकर किरण ने सुप्रीम कोर्ट के अवकाश न्यायाधीश के समकक्ष विशेष अनुमति याचिका पेश की। उन्होंने तीन मसले उठाए-

1. जांच आयोग के समक्ष उनकी स्थिति क्या है? वह अभियुक्त हैं या नहीं?
2. अगर वह अभियुक्त हैं तो क्या उन्हें खुद प्रश्नों के उत्तर देने से पहले अपने बचाव की ख़ातिर अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जानकारी हासिल करने और इसके लिए दूसरे गवाहों से ज़िरह करने का अधिकार है या नहीं?
3. उन्होंने निवेदन किया कि मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट आर.एल. चुग की अदालत में उन पर दायर मुकदमे को रद्द कर दिया जाए।

अवकाश प्राप्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री के.एन. सिंह ने उनकी तीनों बातों पर अनुकूल फ़ैसला सुनाया। ठसाठस भरी अदालत में अवकाश प्राप्त न्यायाधीश ने गोस्वामी-वाधवा आयोग को अपने उस आदेश पर पुन: विचार करने का निर्देश दिया जिसमें पुलिस और दिल्ली बार एसोसिएशन के गवाहों से ज़िरह की बात थी।

बाद में यही मामला नियमित न्यायपीठ के समक्ष रखा गया। न्यायपीठ के न्यायाधीश न्यायमूर्ति ई. एस. वेंकटरमैया, न्यायमूर्ति एम.एम. दत्त और न्यायमूर्ति एन.डी. ओझा ने अनेक महत्त्वपूर्ण टिप्पणियां कीं जिन पर बहुत ज़ोरदार प्रतिक्रियाएं हुईं। उन्होंने व्यवस्था दी कि जांच आयोग के समक्ष बार एसोसिएशन द्वारा सिर्फ़ किरण बेदी पर हमला किया जा रहा है इसलिए जांच अधिनियम आयोग की धारा 8 (बी) के तहत किरण को अभियुक्त को दी जाने वाली ज़िम्मेदारी सहित उसे मिलने वाला हर अधिकार और सुविधा भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए। आयोग द्वारा अदालत की अवमानना के मामले को लेकर जारी उस मुकदमे को भी न्यायपीठ ने रद्द कर दिया था जिसमें किरण जमानत पर थीं। शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि किरण बेदी के विरुद्ध पक्षपात किया जा रहा है। आगे कहा गया कि उन पर जारी मुकदमा वैधानिक न होने के कारण रद्द कर दिया जाना चाहिए। अनेक राष्ट्रीय समाचारपत्रों ने इस

ऐतिहासिक घटना का विवरण प्रकाशित किया था। 29 जुलाई, 1988 को इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित विवरण इस प्रकार है:

धार 8 (बी) के तहत संरक्षण

किरण बेदी पक्षपात की शिकार

किरण बेदी के मुकदमें की सुनवाई करने वाले न्यायपीठ की अध्यक्षता कर रहे न्यायमूर्ति ई. एस. वेंकटरमैया ने बृहस्पतिवार को कहा कि जांच आयोग अधिनियम की धारा 8 (बी) के अंतर्गत संरक्षण के हकदार के रूप में केवल चार लोगों को नामज़द किया गया है। यह आदेश प्रत्यक्ष रूप से पक्षपाती है क्योंकि इसमें भूतपूर्व डी. सी. पी. (उत्तर) श्रीमती बेदी का नाम शामिल नहीं किया गया है।

न्यायाधीश ने आगे स्पष्ट किया, ''या तो आदेश ही रद्द किया जाए या फिर नया आदेश जारी किया जाना चाहिए।'' अगर आयोग ने न्यायाधीशों ने इस पक्षपात के कारण बताए होते तो यह अपील सुप्रीम कोर्ट तक न आती।

चूंकि श्रीमती बेदी पर इसी मुद्दे को लेकर मुकदमा चलाया जा रहा है इसलिए न्यायाधीश ने मुकदमे की वैधता पर ही शंका व्यक्त की। आयोग के सम्मुख उनके शपथ न लेने के कारण उन पर जो मुकदमा चल सकता था उस पर अदालत ने पहले ही रोक लगा दी थी।

उनके वकील और अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री रामास्वामी ने कहा कि किरण बेदी ने शपथ लेने से इनकार नहीं किया है बल्कि उनका मानना है कि उन्हें कठघरे में बुलाए जाने का समय अभी नहीं आया है। स्वयं आयोग के आदेश में भी कहा गया था कि धारा 8 (बी) के तहत आने वाले गवाहों से ज़िरह अदालती कार्यवाही के अंत में की जाएगी। इसलिए उन पर मुकदमा चलाना उचित नहीं है।

उन्होंने तर्क पेश किया कि इसके अलावा (वादी) वकील मुकदमे में दख़लअंदाज़ी नहीं कर सकते हैं क्योंकि मामले में उनकी कोई अधिकारिता नहीं है।

न्यायमूर्ति वेंकटरमैया ने वकील से आयोग का वह आदेश पढ़ने को कहा जो रिकण बेदी के विरुद्ध पक्षपात का सूचक लगता था। उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि दोनों पक्षों के साथ एक समान व्यवहार नहीं किया गया है। जब उन्होंने संकेत किया कि मुकदमा रद्द किया जा सकता है तब वकीलों के वकील के. के. वेणुगोपाल ने कहा कि आदेश को तकनीकी आधार पर रद्द नहीं किया जाना चाहिए। न्यायाधीश ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि आधार 'ठोस' है।

बृहस्पतिवार को लगभग पूरे दिन श्री रामास्वामी गत दो सप्ताहों में पेश अपने तर्कों का संक्षिप्त विवरण देते रहे और जांच आयोगों की कार्यप्रणालियों पर दिए गए प्रसिद्ध फ़ैसलों

को पढ़कर सुनाते रहे।

न्यायमूर्ति वेंकटरमैया ने बीच-बीच में कुछ फ़ैसलों का उद्धृत करके अपने तर्कों को पुष्ट किया। 1980 के न्यायाधीशों वाले मामले को पढ़कर सुनाते समय उन्होंने टिप्पणी की कि किसी के भी लिए बदनामी मौत से भी बदतर होती है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत न्यायाधिकरण द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाएं न्यायसंगत और तर्कसंगत होनी चाहिए। श्री रामास्वामी द्वारा प्रस्तुत इस तर्क से सहमति व्यक्त करते हुए कि वकीलों को साक्ष्य पहले सामने लाना चाहिए, न्यायाधीश ने कहा कि वकीलों को पहले प्रमाण पेश करने की ज़िम्मेदारी के सिद्धांत का पालन करना चाहिए।

अगली सुनवाई शुक्रवार को होगी। गोस्वामी-वाधवा आयोग द्वारा अपनाए गए तरीकों को लेकर श्रीमती बेदी ने अपील की है, जिसकी सुनवाई कर रही न्यायपीठ के अन्य सदस्य हैं, न्यायमूर्ति एम. एम. दत्त और न्यायमूर्ति एन. डी. ओझा।

इसी घटना का विवरण 29 जुलाई 1988 के द टाइम्स आफ़ इंडिया में इस प्रकार हैं:

बेदी मुकदमे को सुप्रीम कोर्ट द्वारा रद्द किए जाने की संभावना

आज सुप्रीम कोर्ट ने संकेत दिए कि श्रीमती किरण बेदी और श्री जिंदर सिंह के विरुद्ध गोस्वामी-वाधवा आयोग के समक्ष शपथ न लेने के कारण चलाया जा रहा मुकदमा रद्द किया जा सकता है क्योंकि तथ्यशोधक समिति इन दोनों अफ़सरों के प्रति निष्पक्ष नहीं रही है।

न्यायपीठ के तीनों न्यायाधीशों न्यायमूर्ति श्री ई. एस. वेंकटरमैया, न्यायमूर्ति श्री एम. एम. दत्त और न्यायमूर्ति श्री एन. डी. ओझा ने भी संकेत दिए हैं कि पुलिस को एक वकील को हथकड़ी लगाने की घटना से लेकर 17 फरवरी को तीस हज़ारी परिसर में वकीलों पर हुए हमले की वारदात तक की तमाम घटनाओं का ब्यौरा गवाही में पेश करने के लिए कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति में उत्तरी जिले की भूतपूर्व डी. सी. पी. और एन. सी. बी. की वर्तमान उपनिदेशक श्रीमती बेदी को गवाही के लिए सबसे अंत में बुलाया जाएगा।

पुलिस अधिकारियों की ओर से बहस करते हुए श्री जी. रामास्वामी ने तर्क पेश किया कि न्यायमूर्ति श्री एन. एन. गोस्वामी और न्यायमूर्ति श्री डी. पी. वाधवा की सदस्यता वाली दिल्ली उच्च न्यायालय समिति ने प्रार्थियों के साथ न्यायसंगत व्यवहार नहीं किया है। उन्होंने कहा कि श्रीमती बेदी ने शपथ लेने से सिर्फ़ इसलिए इनकार किया है कि उनके पास कोई दूसरा विकल्प ही नहीं था।

सुनवाई के दौरान न्यायमूर्ति वेंकटरमैया ने टिप्पणी की कि मामले के तथ्यों से यह बात

मुश्किल से ही निकलती है कि श्रीमती बेदी पर जांच अधिनियम आयोग की धारा 8 (बी) लागू नहीं होती। न्यायमूर्ति ने कहा कि यह धारा अपने अंतर्गत आनेवाले व्यक्ति को विरोधी पक्ष के गवाहों से ज़िरह करने का अधिकार देती है और समिति को इस धारा के प्रावधानों को विस्तारित करना होगा। अपने ऊपर पुलिस की तथाकथित ज्यादातियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की मांग करते हुए वकील जब अनिश्चितकालीन हड़ताल पर चले गए थे तो केंद्र ने दो न्यायाधीशों की सदस्यतावाली समिति का गठन किया था।

न्यायाधीश ने आगे कहा कि धारा 8 (बी) के अंतर्गत आने का हक श्रीमती बेदी को उन तीन पुलिस अधिकारियों के मुकाबले कहीं अधिक है जिन्हें समिति ने इस धारा के तहत नोटिस दिए हैं। कारण कि इस मामले में सिर्फ़ श्रीमती बेदी को ही अभियुक्त ठहराया जा रहा है।

न्यायमूर्ति श्री ओझा ने टिप्पणी की कि बार एसोसिएशन द्वारा श्रीमती बेदी पर लगाए गए आरोप उनके व्यवहार और प्रतिष्ठा को सीधे प्रभावित करते हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण टिप्पणी में न्यायाधीशों ने कहा कि न्यायालय (समिति) को चाहिए कि किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाने का आदेश देते समय वह संयम से काम ले। न्यायाधीशों ने यह भी कहा कि किरण बेदी के शपथ लेने के पहले अपना बयान देने के उनके निवेदन को अस्वीकार करना समिति की ग़लती थी।

न्यायालय द्वारा दी गई टिप्पणियों को सुनकर दिल्ली बार एसोसिएशन के वकील के. के. वेणुगोपाल ने निवेदन किया कि न्यायाधीशों को इस चरण पर इस मामले का निर्णय नहीं करना चाहिए। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि समिति की कार्यप्रणाली को चुनौती देने वाली याचिकाओं की सुनवाई करने वाली अदालत उन दो पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ अभियोजन को रद्द नहीं कर सकती।

वकील के तर्कों से असहमति व्यक्त करते हुए न्यायमूर्ति वेंकटरमैया ने आयोग द्वारा किरण के अभियोजन के लिए दिखाई गई जल्दबाज़ी पर प्रश्नचिह्न लगाया। इसके अलावा उन्होंने कुछ और मुद्दों पर भी एतराज़ किया। इस टिप्पणी के बाद न्यायमूर्ति श्री गोस्वामी ने जांच आयोग से इस्तीफ़ा दे दिया। इस इस्तीफ़े पर न्यायमूर्ति श्री वेंकटरमैया ने खेद व्यक्त करते हुए एक पत्र में कहा कि जब सुप्रीम कोर्ट में इस विषय पर विचार-विमर्श किया जा रहा था तब उनका ध्यान आयोग के सदस्यों पर कतई न था। शीर्ष न्यायालय की तीन न्यायाधीशों वाली न्यायपीठ सिर्फ़ आयोग के 29 जून वाले आदेश पर विचार कर रही थी।

गवाहों से जि□रह
वाधवा आयोग आदेश वापस ले- सुप्रीम कोर्ट

सुप्रीम कोर्ट में किरण बेदी की याचिकाओं की सुनवाई कर रहे न्यायाधीश, न्यायमूर्ति ई. एस. वेंकटरमैया ने बृहस्पतिवार को फिर दोहराया कि गोस्वामी-वाधवा आयोग को गवाहों से ज़िरह से संबद्ध आदेश वापस लेना चाहिए।

सुनवाई के दौरान उन्होंने कहा कि वे अपना मत तीसरी बार दोहरा रहे हैं- ''आयोग को चाहिए कि इस आदेश को वापस लेकर मामले पर नए सिरे से गौर करें, और ऐसा आदेश जारी करके जो पक्षपातपूर्ण न लगे।''

न्यायाधीश ने कहा कि अगर ऐसा पहले ही कर लिया जाता तो अदालत को सात दिन बहस में न बिताने पड़ते। ''अन्यथा हमें इस पर रातोंरात विचार करना होगा।'' न्यायमूर्ति वेंकटरमैया ने यह भी कहा कि वकील इस मामले में पक्षकार नहीं है। ''हम आपकी बात सिर्फ़ कचहरी के मित्रों की हैसियत से सुन रहे हैं।''

वकीलों की तरफ़ से बहस कर रहे श्री के. के. वेणुगोपाल लगभग पूरे दिन ब्रिटिश अदालतों द्वारा दिए गए उन फ़ैसलों को पढ़-पढ़कर सुनाते रहे जो उनके इस तक को पुष्ट करते थे कि मामले में न कोई अभियुक्त है और न ही अभियोक्ता। इसलिए जांच आयोग जरूरत पड़ने पर किसी भी व्यक्ति को बयान देने के लिए कह सकता है।

वकील महोदय ने यह भी कहा कि जिस समय आयोग मूल मसले पर विचार कर रहा था उस वक्त उसने जांच अधिनियम की धारा 8 (बी) से जुड़ी बहस को मद्देनज़र नहीं रखा था। उनका कहना था आयोग के काम में विलंब कराने के उद्देश्य से यह बात बाद में जोड़ी गई थी।

भूतपूर्व डी.सी.पी. (उत्तर) श्रीमती किरण बेदी के वकील ने इस वक्तव्य का खंडन करते हुए कहा कि यह मुद्दा पहले कई बार उठाया जा चुका है।

बहस शुक्रवार को जारी रहेगी। न्यायपीठ के सदस्य हैं न्यायमूर्ति वेंकटरमैया, न्यायमूर्ति एम. एम. दत्त और न्यायमूर्ति डी. एन. ओझा।

श्रीमती बेदी ने आयोग की कार्यप्रणाली और धारा 8 (बी) के तहत गवाहों को दिए जाने वाले संरक्षण से अपने नाम के निकाले जाने को चुनौती दी है। आयोग के सम्मुख शपथ न लेने के कारण अपने ख़िलाफ़ दायर किए गए मुकदमे को भी उन्होंने चुनौती दी है।-इंडियन एक्सप्रेस, 5 अगस्त 1988

इन सबके बाद किरण ने बहुत राहत महसूस की और वह वाधवा आयोग के समक्ष उपस्थित हो गई। उन्होंने आयोग के अध्यक्ष पद पर किसी अन्य सदस्य की नियुक्ति की अपील के साथ-साथ उसके कार्यस्थल के परिवर्तन और अपने लिए किसी वकील की नियुक्ति का भी निवेदन किया। हालांकि इनमें से पहले दो अनुरोध तो नहीं माने गए लेकिन तीसरी बात मान ली गई। एक वरिष्ठ और बहुत प्रतिष्ठित वकील के. टी. एस. तुलसी ने किरण का मुकदमा लड़ना मंजूर कर लिया। वह अधिकतर चंडीगढ़ में ही प्रैक्टिस करते थे और विश्वविद्यालय के समय

से किरण के मित्र थे। दरअसल वह वकीलों की हड़ताल के विरुद्ध सबसे पहले आवाज़ उठाने वालों में से थे।

लेकिन इसके पहले किरण को एक बार फिर गवाह के कठघरे में जाने से इनकार करना पड़ा था। उनके पहले वकील पी. पी. ग्रोवर को परेशान कर-करके 'भगा' दिया गया था। तीस हज़ारी कचहरी के बाहर फूलों के हारों से लिपटा मिट्टी का एक मटका रख दिया गया था। देखने में यह अस्थिकलश-जैसा लगता था हालांकि कहने को यह 'चंदा' इकट्ठा करने के लिए रखा गया था।

इस संबंध में 16 दिसंबर 1988 के द स्टेट्समैन में छपा था:

> ''शुक्रवार के दिन राजधानी के तीस हज़ारी कचहरी परिसर में दिल्ली बार एसोसिएशन के चुनावों की पूर्वसंध्या पर मिट्टी का एक मटका देखा गया। प्रत्यक्षत: यह वाधवा आयोग के सामने वकीलों के खिलाफ़ किरण बेदी तथा अन्य पुलिस अफ़सरों का पक्ष प्रस्तुत करने वाले एडवोकेट श्री पी. पी. ग्रोवर के सहायतार्थ धन इकट्ठा करने के लिए रखा गया है। श्री ग्रोवर के अनुसार, इसके कारण वह अन्य वकीलों की नज़रों में हास्यास्पद बन गए हैं।''

के. टी. एस. तुलसी के आने के बाद आयोग में मुकदमे ने गति पकड़ ली। वकीलों के बाद किरण ज़िरह का सामना करने खड़ी हुई और पूरे एक सप्ताह तक वह कठघरे में खड़ी-खड़ी प्रश्नों की बौछार झेलती रहीं।

आख़िरकार अप्रैल 1990 में आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी। इसमें किरण, संबद्ध पुलिस अफ़सरों, हड़ताल करने वाले वकीलों और भीड़ को उकसाने वाले राजनेताओं- सभी को दोषी करार दिया गया था। मामला अभी तक वहीं रुका हुआ है। उसके बाद जल्दी ही किरण का तबादला मिज़ोरम हो गया था (जो काफ़ी 'कठिन' नियुक्ति है)। पुलिसवालों का कहना था कि उन्हें इन सबकी कोई परवाह नहीं है और वकीलों (में से कुछ) ने अब दूसरे कारणों से अपनी हड़ताल रखी। न्यायमूर्ति वाधवा अपने पीठ पर लौट गए जिससे उन लोगों को बड़ी राहत मिली जिनके मुकदमे लटके हुए थे।

इस मुकदमे के संबंध में 10 मार्च, 1990 के इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित विवरण इस प्रकार है:

किसी दांडिक कार्रवाई का प्रस्ताव नहीं
वाधवा आयोग द्वारा सभी की निंदा

आज तक वकीलों द्वारा की गई सबसे लंबी हड़ताल के कारणों की जांच के लिए गठित वाधवा आयोग की रिपोर्ट में पुलिस अधिकारियों, वकीलों और राजनेताओं की निंदा की गई

है। रिपोर्ट में किसी के भी विरुद्ध दांडिक कार्रवाई की सिफ़ारिश नहीं की गई है।

इस जांच के निष्कर्षो का महत्त्व हाल ही की एक घटना के संदर्भ में और बढ़ जाता है जिसमें एक पुलिस, अधिकारी ने एक अतिरिक्त ज़िला सेशन जज के प्रति तथाकथित रूप से दुर्व्यव्हार किया था। इसके फलस्वरूप राजधानी की निचली अदालतों में हड़ताल हो गई।

वाधवा आयोग ने अपनी रिपोर्ट गत माह प्रस्तुत की थी। इसे सभी सार्वजनिक स्तर पर जारी नहीं किया गया है और आने वाले बजट सत्र में इसे संसद के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की संभावना है।

21 जनवरी, 1988 को जब एक वकील को हथकड़ी पहनाकर कचहरी में पेश किया गया था तो बड़ी संख्या में वकील तत्कालीन डी. सी. पी. (उत्तर) श्रीमती किरण बेदी के कार्यालय के बाहर प्रदर्शन करने के लिए जमा हुए थे। उस समय उन पर हुए लाठीचार्ज के मामले को लेकर किरण बेदी पर अभियोग लगाया गया है।

रिपोर्ट में कुछ वकीलों की भूमिका को भी संदिग्ध माना गया है और श्री राजेश अग्निहोत्री पर भी, जिनकी गिरफ़्तारी इस हड़ताल का मूल कारण थी, प्रतिकूल टिप्पणियां की गई हैं।

स्त्रोतों से पता चला कि कांग्रेस (इ) और भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के कुछ ऐसे राजनीतिज्ञों के नाम भी इस रिपोर्ट में शामिल हैं जो 99 दिन तक चलने वाली इस हड़ताल से जुड़े रहे हैं।

17 फरवरी, 1988 को समयपुर-बादली से आई भीड़ के तीस हज़ारी अदालत परिसर में घुस पड़ने के फलस्वरूप जब हिंसा भड़की थी उस समय कर्तव्य के निर्वाह में लापरवाही बरतने के लिए पुलिस अधिकारियों की निंदा की गई है।

स्रोतों से पता चला है कि कथित रूप से सर्वांगपूर्ण इस रिपोर्ट में 1988 के वकील आंदोलन के संपूर्ण ब्यौरों का अध्ययन किया गया है किंतु किसी भी प्रकार की सज़ा की तजवीज़ नहीं की गई है।

15 जनवरी, 1988 को वकीलों द्वारा शुरू की गई हड़ताल से संबद्ध घटनाओं की जांच के लिए एक प्रशासनिक आदेश के तहत उपराज्यपाल ने दो न्यायाधीशों की सदस्यतावाले आयोग का गठन किया था।

अप्रैल 1988 में आयोग ने उपराज्यपाल को अपनी अंतरिम रिपोर्ट दे दी थी जिसे यथासमय संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। तहकीकात की सुविधा की दृष्टि से, इसमें श्रीमती किरण बेदी और चार अन्य अधिकारियों के तबादले की सिफ़ारिश की गई थी। कचहरी परिसर में लाठीचार्ज और हिंसा की घटनाओं की जांच के लिए सी. बी. आई. द्वारा तहकीकात की सिफ़ारिश भी इसमें की गई थीं।

सी. बी. आई. की जांच-पड़ताल डी. आई. जी. श्री जसपाल सिंह की अध्यक्षता में होनी थी। पर इस जांच-पड़ताल के निष्कर्ष आयोग की अंतिम रिपोर्ट में शामिल नहीं है। सी. बी.

आई. की तहकीकात के नतीजे वाधवा रिपोर्ट के विपरीत भी हो सकते थे।

स्त्रोतों के अनुसार, ''किसी पर भी कोई गंभीर अभियोग नहीं लगाया गया है। लेकिन अनेक व्यक्तियों के व्यवहार की निंदा की गई है।''

वकील इस आधार पर रिपोर्ट को सार्वजनिक करने की मांग कर रहे हैं कि आयोग का गठन प्रशासनिक आदेश के अंतर्गत हुआ था।

आयोग के एक सदस्य न्यायमूर्ति एन. एन. गोस्वामी ने सुप्रीम कोर्ट के एक न्यायाधीश द्वारा उनके एक आदेश पर दी गई टिप्पणी के विरोध में सितंबर 1988 में इस्तीफ़ा दे दिया था।

किरण के वकील टी. एस. तुलसी को बाद में भारत का अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल नियुक्त किया गया। जून 1990 में लिविंब मीडिया लि. की वीडियो पत्रिका न्यूजट्रैक में दिल्ली बार एसोसिएशन के वकील बावा गुरचरन सिंह ने कहा, ''किरण का करियर हमेशा के लिए ख़त्म हो गया है।'' बाद में कभी उनके एक मुवक्किल ने उन्हीं के दफ़्तर में उनकी हत्या कर दी। किरण के एक और वकील-मित्र स्वराज कौशल ने कचहरी में अपनी सफ़ाई पेश करने से संबद्ध तैयारी में उनकी मदद की। वह बाद में मिज़ोरम के राज्यपाल बने।

12

उत्तर से पूर्वोत्तरः कठिन परिश्रम से संकट तक

किरण को नार्कोटिक कंट्रोल ब्यूरो (एन. सी. बी.) में अपनी नियुक्ति उबाऊ लगने लगी थी। कार्यालय की ओर से विकास और उन्नति के लिए कोई प्रयास नहीं किया जा रहा था। सब कुछ बंद दरवाजे के पीछे होता और कार्य को पारदर्शी बनाने का कोई प्रयास भी नहीं हो रहा था। कुछ वरिष्ठ अधिकारी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और संगोष्ठियों में भाग लेने की ख़ातिर विदेश यात्रा की योजनाओं को सबसे अधिक प्राथमिकता देते थे। वे बाहर से अर्जित जानकारी को अपने तक ही सीमित रखते थे ताकि जानकार होने के नाते वही लोग अगले सम्मेलन या संगोष्ठी में जाने का दावा कर सकें। एन सी बी के महानिदेशक एम. एम. भटनागर हर सम्मेलन में अकेले खुद ही जाना चाहते थे लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता था कि एक साथ दो सम्मेलनों का निमंत्रण आ जाता था। ज़ाहिर है, वे दोनों सम्मेलनों में भाग नहीं ले सकते थे। उनके नीचे कार्यरत कर्मचारियों में कड़वाहट आ जाना स्वाभाविक था। किरण को उस समय बड़ी हंसी आती जब वह देखतीं कि किसी सम्मेलन के लिए निमंत्रण पत्र आता और फ़ाइल पर महानिदेशक स्वयं ही अपने नाम की सिफ़ारिश करते। इस तरह के तमाम पत्र व्यवहार को वह अपने ही पास रखते और उनके अलावा किसी भी दूसरे व्यक्ति को इनका कोई सुराग न मिलने पाता। किरण को पता तब लगता जब वह किसी इंस्पेक्टर की ग़ैरमौजूदगी के बारे में पूछताछ करतीं और बताया जाता कि बड़े साहब किसी सम्मेलन के सिलसिले में विदेश जा रहे हैं और वह इंस्पेक्टर उनके वीज़ा और यात्रा की व्यवस्था के लिए भेजा गया है। किरण मानती हैं कि ऐसे सम्मेलनों में देश का प्रतिनिधित्व विदेशों में होना चाहिए और इस काम के लिए अधिकतर विभागाध्यक्ष ही बेहतर व्यक्ति होता है। उन्हें गुस्सा आता था तो सिर्फ इस बात पर कि बाहर दी गई या वहां से अर्जित की गई जानकारी को कभी भी आपस में बांटा क्यों नहीं जाता। किरण बताती हैं, ''हमें सिर्फ टुकड़ों-टुकड़ों में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती थी। वह भी तब जब बड़े साहब अपने ज्ञान का दिखावा करना चाहते। वह अपने आपको संपूर्ण ज्ञान का एकमात्र भंडार और इस नाते देश का प्रतिनिधित्व करते रहने के लिए सबसे उपयुक्त पात्र जताते थे।'' यह आसानी से समझा जा सकता है कि उस समय किरण किस कदर कुंठित महसूस करती होंगी।

किरण ने जैसे-तैसे एन. सी. बी. में दो वर्ष का कार्यकाल पूरा किया और तबादले के लिए आवेदनपत्र भेज दिया। उन्होंने भारत के सबसे दूर-दराज के क्षेत्र में तबादला मांगा था। तब उन्हें इसके परिणामों का आभास न था।...

किरण संघ राज्यक्षेत्र काडर से संबद्ध थीं और मिज़ोरम भी इसी काडर के अंतर्गत आता है। यह राज्य दिल्ली से हज़ारों किलोमीटर दूर है और वहां के बारे में किरण की जानकारी दूरदर्शन द्वारा प्रसारित मौसम की जानकारी और गणतंत्र दिवस समारोह के दौरान राजपथ पर प्रस्तुत बांस-नृत्य तक ही सीमित थी। आसान नियुक्तियों से किरण का जी फ़िलहाल भर चुका था। अब उन्होंने स्वयं एक कठिन नियुक्ति के लिए आवेदन किया था। उन्होंने संघ राज्यक्षेत्र के संयुक्त सचिव को लिखा कि उन्हें अंडमान, अरुणाचल प्रदेश या मिज़ोरम भेज दिया। जब उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला तो वह स्वयं संयुक्त सचिव के कार्यालय गईं। वहां उन्हें आश्वासन दिया गया कि मामला विचाराधीन है और उन्हें बहुत जल्दी ही सूचना भेज दी जाएगी। बहुत दिनों तक कोई समाचार न आने पर वह फिर संयुक्त सचिव के कार्यालय गई तो उन्हें बताया गया कि मिज़ोरम की राजधानी आइज़ोल में अच्छे स्कूल नहीं हैं और उन्हें अपने आवेदन पर पुन: विचार कर लेना चाहिए। उनकी बेटी सायना ने (जिसका प्यार का नाम गुच्चू है) नई दिल्ली के कॉन्वेण्ट ऑफ जीसस एंड मेरी से दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। मिज़ोरम के स्कूलों की सही स्थिति का पता लगाने के लिए किरण ने उन अधिकारियों से बात की जो वहां काम कर चुके थे। उन्हें पता चला कि बहुत उत्तम न सही कामचलाऊ व्यवस्था तो वहां है ही। यह जानकारी पाने के बाद वह एक बार फिर संयुक्त सचिव के कार्यालय गई और वहां संबद्ध अधिकारियों को बताया कि विचार करने के बावजूद उनका मत वही है। फिर से एक लंबे अंतराल के बाद अंतत: किरण को बताया गया कि वे चाहें तो उनकी नियुक्ति दिल्ली परिवहन निगम (डी. टी. सी.) में सतर्कता अधिकारी के पद पर की जा सकती है। किरण ने संयुक्त सचिव के कार्यालय से निराश होकर गृह सचिव को एक पत्र लिखा और उन्हें अपनी इच्छा से अवगत कराया। गृह सचिव नरेश कुमार ने संयुक्त सचिव को पत्र लिखा कि अगर किरण स्वेच्छा से उस कठिन क्षेत्र में नियुक्ति चाहती हैं तो उन्हें वहां भेज देना चाहिए। इस बीच यह पता लगाने की कोशिश की गई कि क्या किरण जम्मू और कश्मीर जाना पसंद करेंगी? वहां महिला आंदोलनकारियों को संभालने के लिए महिला पुलिस अधिकारी की जरूरत थी। साफ़-साफ़ लिंग-पूर्वाग्रह से प्रेरित यह प्रश्न अट्ठारह वर्ष सेवा कर चुकी अधिकारी के लिए बड़ा अपमानजनक था। किरण ने विनम्रतापूर्वक अपना इनकार जता दिया। किरण और संयुक्त सचिव के एक सहपाठी और मित्र परमिंदर सिंह ने संयुक्त सचिव को समझाया कि दूसरे अधिकारीगण मिज़ोरम जाने से इनकार कर देते हैं जबकि किरण ने स्वयं वहां काम करने की इच्छा व्यक्त की है। इसलिए उनकी बात मान ली जाए। इसके बाद किरण को आदेश मिला कि वह 27 अप्रैल, 1990 को मिज़ोरम सरकार को हाज़िरी दें। किरण तुरंत मिज़ोरम के लिए रवाना हो गईं।

वह परिवर्तन चाहती थीं और अब उन्हें सचमुच परिवर्तन मिला। दिल्ली के प्रदूषण, भीड़.भड़क्के और शोर से वह शांत, खुले इलाके, शुद्ध हवा और दूर-दूर तक फैली वादियों के बीच आ गई थीं। दिल्ली में एक के बाद दूसरा हर दिन कामों का बेइंतहा अंबार और भाग-दौड़ लेकर आता था और यहां दफ़्तर के बंधे घंटों की नियमितचर्या के कारण वह सुघड़ और सोद्देश्य तरीके से अपना काम कर सकती थीं; पहले जहां कुछ पढ़ पाने के लिए (अपने अतिव्यस्त जीवन में से) कीमती पल चुराने पड़ते थे, अब इत्मीनान से किताबों का शौक पूरा करने के

लिए काफ़ी फुर्सत मिल जाती थीं; वहां सुबह-सुबह अख़बार पढ़ने से दिन की शुरुआत होती थी, यहां अख़बार आते ही नहीं थे।

इस बदलाव की उन्हें बहुत जरूरत थी। अट्ठारह वर्ष के सेवाकाल के दौरान यह पहला मौका था जब वह अपने परिवार के साथ बैठकर दोपहर का खाना खाती थीं और शाम को ठीक पांच बजे घर लौट आती थीं। स्वभाव से ही उन्हें घरेलू जीवन से प्यार था और नौकरी शुरू करने के बाद शायद पहली बार वह पारिवारिक जीवन की अंतरंगता का सुख उठा रही थीं। उनके घर के बहुत निकट एक टेनिसकोर्ट था और कार्यालय तो सिर्फ़ 20 कदम नीचे था (उनका घर एक पहाड़ी पर था)। वहां ख़रीददारी की कोई खास गुंजाइश न थी इसलिए किरण थोड़ी-बहुत बचत भी कर लेती थी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मिज़ो लोग मूल रूप से मांसाहारी होते हैं और वे सुअर, गाय, बकरे, मुर्गे, कुत्ते के मांस और मछली से तृप्त हो जाते हैं। उन्हें सब्ज़ी, दूध और दूध से बने पदार्थ न भी मिलें तो उनका काम आराम से चल जाता है। जब किरण और उनके परिवार को पता चला कि यहां साफ़ किया हुआ मुर्गा नहीं मिलता है और रसोइए को घर ही मुर्गे को मारकर साफ़ करना होता है तो सबने मुर्गा खाना बंद कर दिया।

मिज़ोरम का क्षेत्रफल विशाल है और ज़मीन ऊबड़-खाबड़। राज्य की जनसंख्या बहुत बिखरी हुई है और अच्छी सड़कों की ग़ैरमौजूदगी में अधिकांश स्थान अगम्य हैं। इसी कमी के फलस्वरूप वहां रहने वाली जनजातियों के बीच जातीय बंधन अधिक प्रगाढ़ नहीं हैं। इसके अलावा आर्थिक विकास की गतिविधियां और शिक्षा की सुविधाएं वहां लगभग नगण्य हैं। दूर-दराज़ के गांवों और भीतरी प्रदेशों में रहने वाले लोग आमतौर पर अपनी स्थिति से बहुत असंतुष्ट हैं। इस तरह के क्षेत्र विद्रोह और उग्रवाद के पनपने के लिए आदर्श स्थल प्रमाणित हुए हैं और मिज़ोरम में इस प्रकार की गतिविधियों के फलस्वरूप बहुत विनाश हुआ है। इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि हमारे देश में आइज़ोल एकमात्र शहर है जहां अपनी ही वायुसेना ने बमबारी की थी।

विद्रोही गतिविधियों में मिज़ो लोगों का सबसे अग्रणी दल है ह्मार। अन्य जनजातियों के मुकाबले इनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक है और चूंकि इनकी बोली अन्य मिज़ों बोलियों से भिन्न है इसलिए इनका अपना एक समूह बन गया है। इसी कारण पुलिस और सेना को इस क्षेत्र में मिज़ो विद्रोह से निपटने के लिए काफ़ी परेशानी उठानी पड़ती थी। फिर भी सतत और समन्वित प्रयासों से अंततः वे स्थिति को काबू में लाने में सफल हुए, यहां तक कि ह्मार क्रांतिकारी परिषद (एच. आर. सी.) के सदस्य (सरकार) हावी होने के स्थान पर आत्मसमर्पण और पुनर्वास के लिए राज़ी हो गए। एच. आर. सी. के पास शायद इसका एक ही विकल्प था और वह था बड़े पैमाने पर घुल-घुलकर ख़त्म हो जाना। इस तरह के द्वन्द्व बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होते हैं और मिज़ों इनमें बहुत-कुछ खो चुके थे।

अनेक वर्षों के विद्रोह के बाद मिज़ोरम ने शांति समझौते पर हस्ताक्षर किए। जिस समय किरण की नियुक्ति वहां डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल [(रेंज) डी आई जी (आर).,] के पद पर हुई,

उस समय तक स्थिति काफ़ी सामान्य हो चुकी थी। अधिकांश क्षेत्रों में बिजली नहीं थी और वर्षों तक जारी कर्फ्यू की परिस्थितियों के कारण मिज़ोरम-निवासियों को सूर्योदय के साथ जाग जाने और सूर्यास्त के साथ ही घरों के भीतर चले जाने की आदत पड़ चुकी थी। पर धीरे-धीरे स्थिति में परिवर्तन आने लगा था और शाम के समय, विशेष रूप से गर्मियों में, बड़ी संख्या में लड़के-लड़कियां घरों के बाहर गिटार बजा-बजाकर गाने या इत्मीनान से सड़कों पर घूमते-फिरते नज़र आने लगे थे। मिज़ोरम के लोग अपने सामाजिक व्यवहार और रीति-रिवाज़ों में काफ़ी उदार हैं। वहां लड़के-लड़कियां खुलेआम आज़ादी से मिलते-जुलते हैं और उनके माता-पिता कोई एतराज़ नहीं करते। नौजवान लोग अपने जीवन-साथी खुद चुनकर विवाह करते हैं और तलाक यहां कोई अनोखी बात नहीं मानी जाती।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मिज़ोरम की उत्तरी सीमा पर कड़ी निगरानी नहीं है और वहां के युवावर्ग मादक पदार्थों का बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग करता है। मादक पदार्थों का सेवन और वहां के युवावर्ग में उच्छृंखलता की हद तक फैली आज़ादी- इन्हीं सब कारणों से मिज़ोरम में एड्स के सबसे अधिक मामले पाए जाते हैं। मिज़ोरम में चावल पर्याप्त मात्रा में नहीं उपजता। अत: केंद्र को इसके लिए राज्य को चावल की भारी इमदाद देनी पड़ती है। मगर इस चावल की बड़ी मात्रा में उपयोग स्थानीय शराब 'जू' बनाने के लिए किया जाता है। इसी से यहां मद्यव्यसनी लोगों की संख्या बहुत बड़ी है।

किसी भी नवगठित प्रदेश की तरह यहां भी मिज़ो लोग ग़ैर-मिज़ों व्यक्तियों को संदेह की नज़रों से देखते हैं। वे विदेशियों को 'वई' कहते हैं और उनके प्रति इनका अविश्वास विद्वेष की हदों को छूता है। इन स्थितियों में मिज़ोरम में गैर-मिज़ों लोगों का जीवन बड़ा कठिन होता है। अधिकांश अपराधों का लक्ष्य इन्हीं को बनाया जाता है। इनको बार-बार लूटा जाता है मगर ये औपचारिक शिकायत करने से डरते हैं कि इन्हें कहीं और भी परेशान न किया जाए। निचले स्तर के अधिकतर पुलिसकर्मी मिज़ो ही होते हैं और घनिष्ठ सामुदायिक संबंधों के नाते ये अधिकतर स्थानीय परिवारों से किसी-न-किसी रिश्ते से जुड़े होते हैं। इसलिए किसी 'वई' के लिए न्याय हासिल होने की आशा बहुत कम होती है और वे इस लूटमार को अपनी नियति मानकर धैर्य से सहन करना ही बेहतर समझते हैं। उनमें से बहुतों ने स्थानीय लड़कियों से शादी भी कर ली है मगर मिज़ो समुदाय में उन्हें अपनाया नहीं गया है। स्वाभाविक ही है कि वे इस आशा में स्थिति को ज्यों-का-त्यों चलने देते हैं कि 'अच्छा बच्चा' मानकर भविष्य में उनके साथ रिआयत की जाएगी। घर को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह बसाने के सदमे से बचने के लिए भी ये इसी जगह रहते चले जाते हैं।

बांग्लादेश से आए चकमा शरणार्थियों की समस्या के राजनीतिक आयामों को अगर नज़रअंदाज़ कर भी दिया जाए तो उनके प्रति घोर आक्रामकता का कारण समझा जा सकता है। हत्या, आगज़नी लूट-खसोट वहां आम बातें हैं।

मिज़ोरम में कानून और व्यवस्था की एकमात्र ज़िम्मेदारी डी. आई. जी. (आर.) पर होती है। कानून और व्यवस्था के अलावा अपराधों की रोकथाम, जनता और सार्वजनिक संपत्ति की

सुरक्षा, ट्रैफिक का प्रबंध और पूरे मिज़ोरम में मादक पदार्थों के स्रोतों का उन्मूलन करके इस व्यसन पर नियंत्रण पाने का काम उनके ज़िम्मे है। किरण की प्राथमिकता थी- उपलब्ध पुलिस बल को चुस्त-दुरुस्त बनाना। जब उन्होंने कार्यभार संभाला तो विभाग की तमाम कार्रवाई व्यावसायिक या संस्थागत स्तर के स्थान पर बड़े व्यक्तिगत स्तर पर चलती थी। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने पुलिस बल, विशेषकर मुख्यालय में कार्यरत कर्मियों को सुधारने का प्रयास किया। वहां की कार्यशैली में (विशेष रूप से अभिलेखन कार्य में) बहुत ही ढीलापन और लापरवाही बरती जाती थी। नतीजतन, हर बार हम मामले की छानबीन शुरू से ही शुरू करनी पड़ती थी। किरण ने स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कदम उठाए।

किरण ने हमेशा अपराधी को पकड़ने और सज़ा देने के स्थान पर अपराध की रोकथाम को महत्त्व दिया है। मिज़ोरम में भी उन्होंने जनता की सहायता से निवारक कार्रवाई को अपना आज़माया हुआ तरीका अपनाया। बेहद अपर्याप्त रिकॉर्ड प्रणाली में नियमित रूप से नई जानकारी जोड़ते-जोड़ते उनके दफ़्तर के पास अब इतनी सामग्री जमा हो गई थी कि पुराने रिकॉर्ड के आधार पर अपराधियों की गतिविधि पर नज़र रखी जा सके। उससे यह भी सुनिश्चित किया जा सकता था कि किसी मुजरिम का अता-पता मालूम किया जा सकता है या नहीं, या फिर यह कि वह अब भी अपराध-जगत में सक्रिय है या इसे छोड़ चुका है। आपराधिक रिकॉर्ड वाले लोगों की एक सूची बनाकर गांव के स्तर पर लोगों में वितरित की गई। इस सूची की प्रतियां ग्राम सुरक्षा दलों और वाई. एम. सी. ए. को भी भेजी गई। इस तरह खुले तौर पर पहचान लिए जाने के कारण कई अपराधी अपराध करने से बचने लगे। एक और फायदा यह हुआ कि पकड़े गए अपराधियों से जो सूचना मिलती थी उसके आधार पर अभी भी अपराधकर्म में लिप्त लोगों को पकड़ना आसान हो गया।

उनका स्टाफ अधिकारी ललहुलियाना अंग्रेज़ी और मिज़ो भाषाएं जानता था इसलिए किरण की भाषा-समस्या हल हो गई। उसके माध्यम से वह समझ, प्रतिबद्धता और प्रेरणा के विभिन्न स्तरों वाले अधिकारियों और दूसरे कर्मचारियों तक अपनी बात पहुंचा पाती थीं। इस प्रकार आदेश देने के लिए मीटिंग्स इतनी बार और इतने नियमित रूप से होती थीं कि स्टाफ़ अधिकारी बिना विस्तार से समझाए ही सब समझने लगा था और अन्य कर्मियों को मिज़ो भाषा से बात का खुलासा धड़ाधड़ सुना देता था। अगर भाषण का विषय 'प्रबंधन' होता तो उसे बस संकेत देने की जरूरत थी। विषय का नाम सुनते ही वह सारी बात समझा देता।

किरण का विश्वास है कि कर्मियों में प्रेरणा, सहभागिता और अभिनव प्रयोगों को प्रोत्साहित करने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों तक उनकी सीधी पहुंच बहुत ज़रूरी है। इसीलिए किरण के कांस्टेबल उनसे बहुत खुश रहते थे। दरअसल किरण ने जहां भी काम किया उनके कांस्टेबल हमेशा उनके नाम की माला जपते और हमेशा सभी से यही कहते कि उनके नेतृत्व में काम करते हुए वे बहुत सुरक्षित महसूस करते हैं। जाहिर है, उनके रवैये और काम में बहुत बदलावा आ गया। गोवा की ही तरह आइज़ोल के पुलिसकर्मियों की फटेहाल शक्लो-सूरत में भी स्पष्ट रूप से सुधार हुआ।

बीट-प्रणाली का दिल्ली में किया गया प्रयोग मिज़ोरम में भी प्रभावशाली ढंग से लागू किया गया। सुस्त-निस्तेज मिज़ो सिपाहियों को एकाएक पता चला कि अपने इलाके में उनकी सत्ता चल सकती है। सिपाहियों को यह भी समझ में आ गया कि अधिकार के साथ ज़िम्मेदारी भी आती है। एक के आकर्षण ने उन्हें दूसरे की ओर प्रेरित किया। इस तरह मिज़ो पुलिसकर्मी स्वयं पहल करते हुए अपने-अपने इलाकों की देखभाल करने लगे और खुद फैसले करने लगे।

आदेश जारी करने या बदलने के लिए होने वाली मीटिंग और रोज़ सुबह-शाम नियमित हाज़िरी की इस नई प्रक्रिया मात्र ने उन्हें अपनी ज़िम्मेदारी के प्रति सचेत कर दिया। वे अपने इलाके में घट रही घटनाओं और वहां के निवासियों का अधिक ख़याल रखने लगे। अपराधियों की तैयार की गई सूची और अपने इलाके के प्रति नए-नए दायित्व-बोध के फलस्वरूप उनका काम निश्चित रूप से पहले से अधिक प्रभारी हो गया।

शायद अपनी प्रकृति और निश्चित रूप से अपनी परिस्थितियों के कारण मिज़ो समुदाय बहुत ही व्यवस्थित है। सकारात्मक विकास के लिए यह तत्त्व बहुत सहायक सिद्ध हुआ। लगभग हर व्यक्ति किसी-न-किसी संगठन का सदस्य था। इन संगठनों के होने से पुलिस को बहुत मदद मिली क्योंकि ये उसे बढ़-चढ़कर समर्थन देते थे। उदाहरण के लिए, ग्रामीण परिषदों, ग्राम सुरक्षा दलों, युवा विभागों और मिज़ोरम महिला संगठन ने बहुत मदद की। इन संगठनों के अलावा मिज़ो लोग जिन गिरजाघरों से संबद्ध थे उन्होंने भी अपनी भूमिका बखूबी निभाई। राजनीतिक दलों- कांग्रेस (इ), द मिज़ो नेशनल फैडरेशन या फिर जनता दल जैसी प्रतिबद्ध पार्टियों ने भी अपना योगदान दिया।

सामुदायिक स्तर पर निगरानी में बेशक उक्त संगठनों तथा दलों ने पूरे दिल से सहायता दी लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रक्रिया की पहल किरण ने ही की थी। अपने विभाग की सफ़ाई उन्होंने खुलेआम की, तभी तो मिज़ो लोगों को इतनी जल्दी और इतने प्रभावशाली ढंग से उन पर भरोसा हो गया। जनता को आम शिकायत थी कि शराब पिए हुए आम नागरिकों को तो पकड़-पकड़कर सज़ा दी जाती थी लेकिन वर्दी पहने शराबियों को कोई कुछ नहीं कहता था। अपने-अपने इलाके में कानून और व्यवस्था बनाए रखने की प्रणाली कांस्टेबलों में बहुत लोकप्रिय हो गई थी। किरण ने इस बात का ध्यान रखा कि किसी भी व्यसनी कांस्टेबल को 'बीट' ड्यूटी की ज़िम्मेदारी न सौंपी जाए। इस निर्णय से शराबी सिपाहियों के आत्मसम्मान को चोट पहुंची। इसलिए शराबियों के इलाज के लिए खोले गए मिज़ो आर्म्ड पुलिस हास्पिटल में इलाज करवाने के लिए उन्हें तैयार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इस स्वास्थ्यकर व्यवस्था ने न सिर्फ पुलिसकर्मियों की मदद की बल्कि पूरे समुदाय को प्रेरणा भी दी।

परामर्श और इससे भी बढ़कर पुनर्वास की व्यवस्था के माध्यम से 'ज़ू' बनाने और बेचने वालों को भी समझा-बुझाकर इस रास्ते से हटाया गया। यह तरीका दिल्ली में साँसी समुदाय और यमुना पुश्ता झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र की महिलाओं पर सफलतापूर्वक आज़माया जा चुका था। आइज़ोल में भी यह तरीका बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुआ। क्रिसमस के दिनों में आइज़ोल में लोगों के बेहिसाब शराब पी लेने के कारण बहुत ज़्यादा सड़क-दुर्घटनाएं होती हैं। 1990 और 1991

के दौरान क्रिसमस के दिनों में घटी सड़क-दुर्घटनाएं और लड़ाई-झगड़ों के रिकॉर्ड से पता चलता है कि शराब पीकर गाड़ी चलाने वालों की संख्या में किस कदर कमी आई थी। स्थानीय अस्पतालों के आपातकालीन विभागों और थानों में दर्ज करवाई गई प्रथम सूचना रिपोर्टों के रिकॉर्ड से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इस पूरे अभियान का प्रबंध जनता ने किया था। पुलिस तो सिर्फ मददगार थी- यही तो सफलता की कुंजी थी।

आइज़ोल में प्रवेश और निकास के प्रमुख नाकों पर जनता में बड़े पैमाने पर यातायात सहायता कार्ड बंटवाए गए। पोस्टकार्ड जैसे इन कार्डों का डाकव्यय पुलिस विभाग वहन करता था। बसों और टैक्सियों में सफ़र कर रहे यात्री इन पोस्टकार्डो पर अपनी शिकायतें लिखकर पुलिस को भेज सकते थे और पुलिस वास्तविकता की जांच करके कार्रवाई करती। इन शिकायतों में मुख्य थीं- अत्यधिक तेज़ी से वाहन चलना, शराब पीकर वाहन चलाना, निश्चित संख्या से अधिक यात्रियों को बैठाना या उनसे अधिक किराया ऐंठना। अगर किसी का सामान पीछे छूट जाए तो इन कार्डों से उसके बारे में भी सूचना मिल सकती थी इस व्यवस्था के फलस्वरूप वाहनचालकों पर मानसिक दबाव बना रहता था जिससे अनियमितताओं में काफ़ी कमी आ गई और यह तमाम उपलब्धि विभाग पर आर्थिक दबाव डाले बग़ैर हुई क्योंकि इस परियोजना का ख़र्च स्थानीय प्रायोजकों ने उठाया था।

मिज़ो समुदाय बहुत धार्मिक है। अपराध की रोकथाम के लिए इस प्रवृत्ति का उपयोग बड़े प्रभावशाली ढंग से किया गया। एक उत्साही पुलिस अधिकारी आइज़ोल नगर क्षेत्र के सब-डिवीज़नल पुलिस आफ़िसर श्रोया की मदद से पुलिस थाने में ही नियमित रूप से प्रार्थना-सभाएं (जिन्हें 'रेह' कहा जाता है) आयोजित की जातीं। इनमें सूचीबद्ध अपराधियों के साथ ही मिज़ो पुलिसकर्मी भी भाग लेते। श्रोया ने एक पादरी की व्यवस्था भी कर ली थी वह स्वयं अपनी गिटार की संगत में प्रार्थना-सभाओं का नेतृत्व करता था। बहुत जल्द इस पुनर्वास और सुधारपरक दृष्टिकोण की सूचना मिज़ो केवल टी. वी. नेटवर्क तक पहुंच गई और पूरे नगर में इस कार्यक्रम की चर्चा होना लगी।

लेकिन आइज़ोल जिले के पुलिस सुपरिटेण्डेंट एल. एम. सैलों को ये गतिविधियां पसंद नहीं आई। वह स्वयं मिज़ो थे। उन्होंने जल्दी ही स्थानीय नागरिकों का एक समूह अपने पीछे एकत्रित कर लिया और प्रेस के एक हिस्से को भी स्थानीय रीति-रिवाजों में एक वई' की दख़लअंदाज़ी का विरोध करने के लिए सक्रिय कर दिया। इस चाल से प्रार्थना-सभाएं बंद हो गईं। किरण याद करती हैं कि गृह सचिव एस. एल. आर. सियामा ने उन्हें सलाह दी थी कि वह काम कम करें और मिज़ो को अपने ढंग से चलने दें। यह बात उन्होंने बेशक सही नीयत से ही कही थी क्योंकि उन्हें किरण की चिंता थी कि किरण को गलत समझा जाए।

मिज़ों लोगों में स्वभाव से ही मैदानी इलाके से आए लोगों. 'वई'. के विरुद्ध ज़बरदस्त पूर्वाग्रह रहता है, लेकिन उन्होंने देखा कि किरण बेदी उनके लिए और उनकी मिज़ो काउंसिल के लिए काम कर रही थीं। उन्होंने किरण को सराहना और स्वीकारना शुरू कर दिया। किरण के काम आम आदमी के हित के लिए थे और वह धीरे-धीरे इनसे लाभ उठाने भी लगा था। राज्य के

अधिकारी अवश्य इन कार्यकलापों को कुछ संदेह की नज़रों से देखते थे लेकिन उनका रुख़ भी समझ में आता है। शायद पहली बार उन्होंने एक पुलिस अधिकारी को तलाशी, गिरफ़्तारी, मुकदमेबाज़ी और सज़ा देने-दिलवाने के स्थान पर आम आदमी से मिलते-जुलते देखा था। लेकिन इस तरह के आपसी आदान-प्रदान के लिए सहायक संस्थाओं और समुदाय द्वारा समझाने-बुझाने और तालमेल की जरूरत पड़ी थी। किरण बेदी की कार्यपद्धति का प्रतीक ही रहा है- समुदाय के साथ लगातार जारी आदान-प्रदान। इस तरह की सकारात्मक पारस्परिक क्रिया में भी उनकी नीयत को अनिवार्यत: संदेह से देखा जाता रहा है, जैसा कि मिज़ोरम में भी हुआ। यह तथ्य हमारी अफ़सरशाही की उस प्रकृति को सामने लाता है जो लोगों को उनसे विमुख कर देती है।

पारिवारिक स्तर पर किरण बेदी को एक बहुत ही यंत्रणादायक अनुभव से गुज़रना पड़ा था। इस दौरान किरण के पिता मिज़ोरम के मनोरम स्वास्थ्यवर्धक वातावरण का आनंद उठा रहे थे और जी खोलकर अपने प्रिय शौक टेनिस के खेल में जुटे रहते थे। एक सुबह उन्होंने पेट के बाजू में तीखे दर्द की शिकायत की तो उनकी पत्नी उन्हें अस्पताल ले गई। किरण भी वहां पहुंचीं तो उन्हें बताया गया कि उनके टेस्ट हो रहे हैं और चिंता की कोई भी बात नहीं है। कुछ समय बाद किरण अपने कार्यालय लौट गई। कुछ मिनट बाद ही उनकी मां प्रेमलता पेशावरिया को डॉक्टरों ने बताया कि उनके पति का अपेंडिसाइटिस कभी भी फट सकता है इसलिए तुरंत आपरेशन की जरूरत है। डॉक्टर और अस्पताल के अन्य कर्मचारी सिर्फ मिज़ो भाषा ही जानते थे इसलिए वे कुछ समझ नहीं सकीं, लेकिन क्योंकि उनके पति पीड़ा से छटपटा रहे थे इसलिए उन्होंने आपरेशन के लिए दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर कर दिए। उन्हें आश्वासन दिया गया था कि ऑपरेशन सिर्फ़ आधे घंटे में संपन्न हो जाएगा लेकिन वास्तव में वह चार घंटों तक चला। किरण और कुछ देर मिज़ोरम के राज्यपाल स्वराज्य कौशल भी प्रेमलता पेशावारिया के पास अस्पताल पहुंच गए। कौशल तो इस बात से हतबुद्धि रह गए कि लोग जहां ज़रा-सी खांसी-बुखार होते ही दिल्ली भागते थे, वहां किरण और उनकी माताजी ने इतने बड़े ऑपरेशन की इज़ाजत कैसे दे दी। ऑपरेशन के बाद उन्हें बताया गया कि रोगी का अपेंडिसाइटिस नहीं था बल्कि आंतों का तपेदिक था। उनकी पूरी-की-पूरी अंतड़ियों को बाहर निकालकर साफ़ करके परीक्षण के बाद वापस लगाया गया।

बाद में पता चला कि इस परीक्षण के दौरान अंतड़ियों का एक भाग थोड़ा-सा कट गया था। इस लापरवाही के फलस्वरूप किरण के पिता प्रकाशलाल पेशावरिया मौत के द्वार पर ही पहुंच गए थे। तीव्र संक्रमण और प्रमुख अवयवों को क्षति पहुंचने के कारण उनका पेट उसी समय तेज़ी से फूलना शुरू हो गया था। सिलचर के सरकारी अस्पताल के प्रिंसिपल डॉ. बरुआ से संपर्क किया गया। मिज़ोरम के राज्यपाल और विश्वविद्यालय के दिनों में किरण के मित्र स्वराज कौशल किरण के माता-पिता का बहुत आदर करते थे। उन्होंने एक हेलिकॉप्टर मंगवा भेजा। इस हेलिपकॉप्टर में सिलचर से डॉक्टर को लाया गया। मरीज़ के निरीक्षण के बाद डॉक्टर ने उनके पेट के बाजू में एक चीरा लगा दिया। बहुत बड़ी मात्रा में पित्त और घिनौना द्रव बह निकले। सबसे अधिक कष्ट तो स्वराज कौशल को हुआ। वह समझ गए थे कि किरण के पिता

को यदि उपयुक्त उपकरणों से लैस किसी अस्पताल में न पहुंचाया गया तो उनकी जान को पूरा ख़तरा है। उन्होंने फिर से एक हेलिकॉप्टर मंगवाकर डॉक्टर सहित किरण के पिता को सिलचर भेज दिया। किरण और उनकी माताजी जीप से वहां पहुंची। सिलचर में पहले से जारी द्रव निकासी के अलावा कोई दूसरा इलाज नहीं सुझाया गया, न किया गया। प्रकाशलाल का वज़न 58 किलोग्राम से घटकर 6 किलोग्राम रह गया था। शोधकार्य के लिए एक नमूने के तौर पर उनके केस का अध्ययन करने आए एक प्रशिक्षु डॉक्टर ने किरण को सुझाव दिया कि रोगी को दिल्ली ले जाना बेहतर होगा क्योंकि इस अस्पताल में वैसी सुविधाएं हैं ही नहीं। जब प्रिंसिपल से रोगी को छुट्टी देने के लिए निवेदन किया गया तो उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की बल्कि स्वराज ने जिस हेलिकॉप्टर का प्रबंध किया था उसमें रोगी के साथ एक डॉक्टर को भेजने को भी वह तैयार हो गए। सिलचर से उन्हें गुवाहटी पहुंचकर इंडियन एयरलाइंस का जहाज़ पकड़ना था। हेलिकॉप्टर-चालक ने उन्हें बताया कि महिलाओं को उसमें बैठने की अनुमति नहीं है। मामला वरिष्ठ अधिकारियों तक पहुंचा तो उन्हें बताया गया कि पेशावरिया दंपत्ति के चूंकि कोई बेटा नहीं है, अत: इस संकटकाल में इकट्ठी हुई बेटियां- किरण, रीटा और अनु- को ही साथ जाना पड़ेगा। मिज़ोरम के राजभवन में उस रात तब तक कोई नहीं सोया जब तक दिल्ली वायु मुख्यालय से अनुमति नहीं मिल गई। किरण अपने अनेक सहयोगियों से प्रभात सिंह, आमोद कंठ और जोज़फ आदि की बहुत ही आभारी हैं। सभी ने उस संकटकाल में किरण की बढ़-चढ़कर मदद की थी।

हेलीकॉप्टर के पायलट ने दिल्ली जाने वाले इंडियन एयरलाइंस के विमान चालक से निवेदन किया था कि एक आपातकालीन स्थिति के मरीज़ को गुवाहाटी ला रहे हैं और उनका इंतज़ार किया जाए। किरण के बैच के ही कर्मी जी. पी. श्रीवास्तव हवाई अड्डे पर बेचैनी से उनका इंतज़ार कर रहे थे। जब हेलिकॉप्टर वहाँ पहुँचा तो हवाई जहाज उड़ने को तैयार था। असम के राज्यपाल तक उनका इंतज़ार कर रहे थे। इंडियन एयरलाइंस के विमानचालक कैप्टन कौल ने किरण को आश्वासन दिया था कि वह विमान को बिना किसी धक्के या झटके के आराम से दिल्ली ले जाएंगे।

दिल्ली हवाई अड्डे पर डॉ. हंस नागर, कृपाल सिंह, परिवार के मित्रगण, किरण के बहनोई आश्विन शिराली तथा देशकीर्ति मेनन, किरण के सहकर्मी धर्मेन्द्र, कुमार, एस.बी.एस. त्यागी उज्ज्वल मिश्र और कुछ अन्य लोग मौजूद थे। वे किरण के पिता को तुरंत एम्बुलेंस में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के आपरेशन थिएटर में ले गए। वहां के प्रतिभाशाली शल्यचिकित्सक डॉ. एस. एन. मेहता (जो अब मध्यपूर्व में है) ने रोगी को संभाला। उन्होंने किरण को खेदपूर्वक बताया कि मरीज़ की हालत इतनी ख़राब थी कि उस समय दूसरा आपरेशन संभव ही न था, इसलिए दवाइयों के सहारे इलाज शुरू हुआ। परिवार तो बस ईश्वर से प्रार्थना ही करता रहा कि किसी तरह आंत का ज़ख़्म स्वयं ही भर जाए।

चार महीनों के बाद कहीं जाकर प्रकाशलाल अपने पैरों पर खड़े होने लायक हुए थे। इस समय तक परिवार की तमाम बचत समाप्त हो चुकी थी। माता-पिता और चारों बेटियों के तन

और मन पर इस बीच क्या गुज़री थी उसका तो बयान ही नहीं किया जा सकता। आज 75 वर्ष की आयु में प्रकाशलाल चेम्सफोर्ड क्लब में टेनिस खेलते ही जीते, खाते और पढ़ते हैं, और सपने भी टेनिस के ही देखते हैं।

लंबी छुट्टी के बाद किरण मिज़ोरम लौटीं तो पुलिस अधिकारी के तौर पर अपने दैनिक क्रम में ढलने लगीं। उन्हें पता चला कि जब वह अपने पिता के साथ सिलचर में थी, तो सिलचर के आई. जी. (पी.) लाल छंगा, अनेक मंत्री और आइज़ोल के कई अधिकारी राज्यपाल से यह सलाह करने की कोशिश कर रहे थे कि किरण के पिता का अंतिम संस्कार यदि यहां होता है तो उसके लिए किन-किन व्यक्तियों को सूचना दी जानी चाहिए। उसके ठीक बाद ही राज्यपाल ने किरण को अपने पिता को तुरंत दिल्ली ले जाने की सलाह दी थी। उन्होंने इसके लिए एक और हेलिकॉप्टर की व्यवस्था की थी और दिल्ली जाने के लिए गुवाहाटी से संबद्ध विभाग में आरक्षण की भी। किरण आज स्वराज को अपना भाई मानती हैं। ''जो विपत्ति में काम आए, वही मित्र होता है।''

स्वराज ने इस कहावत को कल्पनातीत रूप से सिद्ध कर दिखाया।

13

स्वतंत्रता की राह पर

किरण की बेटी सायना ने नई दिल्ली के कॉन्वेंट ऑफ़ जीसस एंड मेरी से दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। स्कूली शिक्षा में सबसे महत्त्वपूर्ण कक्षाएं होती हैं- 11 वीं और 12 वीं। इनकी पढ़ाई उसने आइज़ोल के केंद्रीय विद्यालय में की थी। इस वजह से वह प्री-मेडिकल परीक्षा में दिल्ली से नहीं बैठ सकती थी क्योंकि उसके लिए छात्र का दिल्ली से ही 11 वीं और 12 वीं परीक्षा देना अनिवार्य है। इस प्रतिबंध के कारण उसके लिए केवल अखिल भारतीय स्तर पर ही परीक्षा में बैठना संभव था। दिल्ली और मिज़ोरम की शैक्षिक सुविधाएं बहुत भिन्न थीं और इस विकल्प के तहत सायना का दिल्ली में रहना ज़रूरी था। मां की नौकरी की कठिनाइयों को मद्देनज़र रखते यह संभव नहीं था। स्कूल में अपनी सहेलियों के साथ बातचीत के दौरान सायना को पता चला कि आइज़ोल में पढ़ाई करने के नाते वह केंद्र द्वारा मिज़ोरम के लिए नियत मेडिकल सीटों के लिए प्रतियोगिता में बैठ सकती है। योग्यता का निर्णय बारहवीं कक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर होगा। आइज़ोल के स्कूल में सही तथा उपयुक्त मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं था, स्कूल में अध्यापकों की भी कमी थी, पर सायना पूरी मेहनत से पढ़ाई में जुट गई। बोर्ड की परीक्षा में उसका परिणाम बहुत अच्छा रहा। उसे 89 प्रतिशत अंक मिले जो ग़ैर-मिज़ों छात्रों में सबसे अधिक थे। दिलचस्प बात यह है कि योग्यता सूची में जो दो मिज़ों लड़कियां उससे ऊपर थीं, उनकी स्कूली पढ़ाई मद्रास में हुई थी। लेकिन मेडिकल सीट के कोटे के लिए आवेदन के साथ आवासीय प्रमाण पत्र लगाना ज़रूरी था। किरण ने ज़िला कलेक्टर से इस प्रमाण-पत्र के लिए निवेदन किया तो उन्होंने साफ़-साफ़ इनकार कर दिया। किरण ने अपने एक अधिकारी को समझाया कि उन्हें ज़िला कलेक्टर से सिर्फ यह प्रमाण-पत्र चाहिए कि सायना दो वर्षो से आइज़ोल में रह रही है, बस। अधिकारी ने सलाह दी कि वे ज़िला कलेक्टर को फोन पर सारी स्थिति समझा दें। कलेक्टर मामले पर विचार करने को राज़ी हो गए और कुछ समय बाद वही अधिकारी उनके दफ़्तर से आवास का प्रमाण-पत्र लेकर आया। आवेदन पत्र और अंक-तालिका के साथ यह प्रमाण-पत्र संबद्ध अधिकारियों को भेज दिया गया। सुकृति को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया। साक्षात्कार के दौरान उससे पूछा गया कि वह कहां के मेडिकल कॉलेज में जाना चाहेगी, तो उसने इसका निर्णय इंटरव्यू बोर्ड पर ही छोड़ दिया।

काफ़ी लंबे समय तक किसी सूची की घोषणा नहीं की गई, न जनता को कोई जानकारी ही दी गई। लोग सरकार की मंशा को लेकर अटकलें लगाते रहे। मेडिकल कोर्स के अलावा शेष सभी पाठ्यक्रमों के लिए योग्यता के आधार पर चुने गए छात्रों की सूचियां घोषित हो चुकी थीं। इस तरह की घोषणा, लगता है, मुख्यमंत्री को विशेषाधिकार होती है।

इसी दौरान एक दिलचस्प घटना यह हुई है कि मिज़ोरम में कार्यरत ग़ैर-मिज़ो डॉक्टरों की

लॉबी ने मांग की कि आरक्षित कोटे के लिए ग़ैर-मिज़ो छात्रों का चुनाव योग्यता के स्थान पर लंबे समय तक आवास के आधार पर किया जाना चाहिए। ये लोग सत्ता के हमेशा ही नज़दीक रहे हैं। राजनीति अपना खेल खेल रही थी, और इससे ग़ैर-मिज़ो समुदाय, छोटा होते हुए भी, बंटने लगा।

भारत सरकार के नियमों के अनुसार सायना तीन कारणों से प्रवेश के योग्य और इसकी हकदार थी- एक, सायना मिज़ोरम की अधिवासी थी और यहीं से उसने हायर सेकंडरी की शिक्षा प्राप्त की थी; दो, वह संघक्षेत्र काडर की मिज़ोरम में नियुक्त अधिकारी की पुत्री थी और तीन, बोर्ड की परीक्षा में वह अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुई थी। यह अंतिम कारण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। केंद्र सरकार ने मिज़ोरम को तेरह सीटें आबंटित की थीं और ऐसा कोई कारण नहीं था जिसके आधार पर कोई सायना से उसका हक छीन लेता। इस निश्चिंतता ने मां और बेटी, दोनों के लिए लंबी प्रतीक्षा की परेशानी को बहुत हलका कर दिया। वर्ष 1992-93 के लिए मिज़ोरम राज्य के लिए एम.बी.बी.एस. और बी.डी.एस. की सीटों के केंद्रीय निकाय के संदर्भ में 4 अगस्त, 1992 को ज़ारी आदेश में स्पष्ट कहा गया है, ''... कि राज्य/संघ क्षेत्र छात्रों का मनोनयन भारत सरकार द्वारा नियत योग्यता-पद्धति के आधार पर करेंगे। अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के बच्चे भी इस योग्यता-पद्धति के अंतर्गत निर्वाच्य होंगे।''

इसी ओदश के आधार पर 11 अगस्त, 1992 को सायना को एक सीट आबंटित की गई थी जिसे बाद में 15 सितंबर, 1992 को एक अधिसूचना द्वारा रद्द कर दिया गया। किरण बेदी तक बात पहुंची कि मुख्यंमंत्री लाल थनहवला उनसे शायद रुष्ट हैं और सज़ा के तौर पर वह उनकी बेटी को उसका अधिकार नहीं लेने देंगे। इस बात ने पूरे प्रकरण को एक नया मोड़ दे दिया। किरण को किसी भी तरह समझ में नहीं आ रहा था कि मुख्यमंत्री आख़िर उनसे क्यों नाराज़ हैं। ऐसी ही स्थितियों में अफ़वाहें चलती हैं, और बहुत जल्दी किरण को कारण भी पता चल गए।

किरण ने अपने अधीन काम कर रहे एक अधिकारी में कुछ ऐसी खूबियां देखीं कि उन्हें वह अपने रेंज के सभी पुलिस अधिकारियों में सबसे अधिक योग्य लगा। वह बहुत चुस्त और सतर्क था, किसी भी स्थिति से निपटने की रणनीति वह तुरंत समझ जाता था; उसमें पहल करने की क्षमता थी और अच्छे नेता के गुण भी। इन सारी बातों के अलावा वह जनकल्याण के प्रति भी पूर्ण सजग था। रेंज के अफ़सरों के साथ हर माह होने वाली एक बैठक में एक अधिकारी अपनी बटालियन का प्रतिनिधित्व करता था। तब उसने किरण को बताया कि उसका एस. पी. उसके साथ किस प्रकार दुर्व्यवहार करता है और उसे परेशान करता है। डी. आई. जी. (रेंज) ने एस. पी. को बुलाकर इस बात की सफ़ाई मांगी। वह नौजवान अधिकारी ग़ैर-मिज़ो था, इसलिए एस. पी. ने तुरंत एक मुद्दा बनाकर हंगामा खड़ा कर दिया कि ग़ैर-मिज़ो प्रवर अधिकारी मिज़ो मातहत के ख़िलाफ़ पक्षपाती रवैया अपना रही हैं। जिस एस. पी. ने पहले किरण द्वारा मिज़ो अपराधियों के लिए प्रार्थना-सभा आयोजित करने के विचार की खिल्ली उड़ाई थी, वह भी तुरंत इस अभियान में शामिल हो गया। दोनों इस मामले को अपने

राजनीतिक आकाओं तक ले गए।

शायद एक और घटना से भी मिज़ोरम सरकार नाराज़ थी। अतिरिक्त एस. पी. (ए. एस. पी.) (अभियोजन) वह मिज़ो था। वह कचहरी से कुछ दूर स्थित अपने दफ़्तर से ही अदालती कार्यवाही की देखरेख करता था। इसलिए कचहरी में स्थित दफ़्तर में नियुक्त उसका मातहत खुद राजा बन बैठा था और इससे कार्यकुशलता में बेहद गिरावट आ गई थी। नज़दीक न होने के कारण अतिरिक्त एस. पी. इस स्थिति में कुछ ख़ास नहीं कर पा रहा था। किरण ने उसे सलाह दी कि वह अपना दफ़्तर कचहरी में ले जाए ताकि थोड़ी-बहुत तो कार्यकुशलता बहाल हो सके। यह बात डी. एस. पी. को कतई पसंद नहीं आई क्योंकि अब उसे न सिर्फ़ नियमित रूप से दफ़्तर में हाज़िरी देनी पड़ती बल्कि काम भी करना पड़ता। इस डी. एस. पी. ने उन दोनों एस. पी. की मदद से पूरे प्रकरण को एक नया आयाम दे दिया- यह कि किरण मिज़ो अधिकारियों के विरुद्ध पक्षपातपूर्ण व्यवहार ही नहीं कर रहीं, बल्कि ए. एस. पी. का स्थानांतरण करने के सरकार के अधिकार को खुद अपने हाथों में ले रही हैं। मुख्यमंत्री ने तुरंत आदेश जारी किया कि ए. एस. पी. अपने पुराने कार्यालय में लौट जाएं। हैरान-परेशान ए.एस.पी. ने बेदी के पास आकर अपनी खीझ जताई। किरण ने उसे मुख्यमंत्री से मिलने की सलाह दी कि उन्हें बताया जा सके कि उसका तबादला नहीं किया गया है। उसे सिर्फ अपने दफ़्तर की जगह बदलने के लिए कहा गया है ताकि अदालती कामकाज की बाकायदा निगरानी हो सके और कार्य अधिक कुशलता से हो सके। ए.एस.पी. ने ऐसा ही किया। मुख्यमंत्री ने कहा कि ऐसी बात है तो वह वही करे जो उसे कहा गया है। जब डी.एस.पी. और दोनों एस. पी. को पता चला कि ए. एस. पी. भी मुख्यमंत्री से मिल आया है तो वे पस्त होकर बैठ गए।

और भी मजे की बात यह है कि मुख्यमंत्री ने डी. आई. जी. से न तो कोई पूछताछ की और न ही किसी प्रकार की पुष्टि की मांग की, बल्कि उनसे नाराज़ हो गए और उनके बेटी सायना को उसका जायज़ अधिकार नहीं लेने दिया।

(संदर्भवश, मिज़ोरम से किरण का तबादला कुछ समय पश्चात ही हो गया और जिस ग़ैर-मिज़ो डी. एस. पी. का पीछे उल्लेख हुआ है उसे उसके बाद ही सेवा से निलंबित कर दिया गया।)

किरण ने स्वास्थ्य मंत्री वैवेंगा से मिलकर अपनी बेटी के मामले की प्रगति के बारे में उनसे साफ़-साफ़ पूछ लेने का फ़ैसला कर लिया। मंत्री महोदय ने किरण को सलाह दी कि वह दिल्ली से किसी तरह सीट हथिया लें क्योंकि मिज़ोरम से यह बहुत मुश्किल होगा। किरण ने पूछा, ''क्यों? मैं ऐसा क्यों करूं?'' मंत्री महोदय की मेज़ पर योग्यता-सूची रखी थी। किरण ने उनसे उस योग्यता-सूची में अपनी बेटी का स्थान जानना चाहा। उन्होंने सूची को एक नज़र देखा और सुझाव दिया कि वह मुख्यमंत्री से बात कर लें।

किरण ने मुख्यमंत्री के स्थान पर मुख्य सचिव पाहनुना से बात करने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा था कि प्रशासन के प्रमुख अधिकारी होने के नाते वह तो योग्यता और न्यायसंगति

को ज़रूर प्राथमिकता देंगे। किरण ने उन्हें बताया कि हालांकि उनकी बेटी दिल्ली से है लेकिन वह वहां से परीक्षा नहीं दे सकती क्योंकि उसने हायर सेकंडरी वहां से नहीं की है। हायर सेकंडरी उसने मिज़ोरम से उत्तीर्ण की है लेकिन वह यहां से परीक्षा इसलिए नहीं दे सकती क्योंकि वह मिज़ो नहीं है। किरण ने मुख्य सचिव से पूछा कि उनकी बेटी आख़िर कहां से परीक्षा दे? कुछ पल सोचकर मुख्य सचिव ने सुझाव दिया कि किरण मुख्यमंत्री से मिल लें।

इस उत्तर से हार माने बिना किरण ने मुख्यमंत्री से मिलकर खुद अपनी बेटी का मामला सुलझाने का फ़ैसला किया। उन्होंने तय किया कि पहले कोई मिज़ो अधिकारी मुख्यमंत्री को मामले की रूपरेखा समझा दे और फिर किरण को उनसे मिलने के लिए अनुमति हो। अनुमति जल्दी ही मिल गई। जब मुख्यमंत्री से मुलाकात हुई तो किरण ने अपनी बात सशक्त रूप से उनके सामने रखते हुए दिल्ली से परीक्षा देने की अनुमति मांगने वाला वह आवेदन पत्र दिखाया जो वहां से अस्वीकृत होकर लौट आया था। फिर किरण ने गुवाहाटी हाई कोर्ट द्वारा हाल ही में दी गई उस व्यवस्था का हवाला दिया जिसमें योग्यता के आधार पर सीटों का आबंटन किए जाने का आदेश था और अंत में एक ज़बरदस्त चोट देते हुए किरण ने मुख्यमंत्री को स्मरण कराया कि मिज़ोरम के उपकरणहीन तथा गिरे हुए स्तर के अस्पताल में कैसे उनके पिता एक आपरेशन के दौरान लापरवाही के कारण मौत के द्वार पर पहुंच गए थे। परिवार ने उस संकट को साहसपूर्वक झेला था और एक बार भी शिकायत नहीं की थी। किरण ने मुख्यमंत्री को स्पष्ट बता दिया कि अगर उन्होंने अपनी तीनों बहनों सहित ऐसा कुछ किया होता तो उन लोगों को जीवन-भर रोटी कमाने के लिए नौकरी न करनी पड़ती।

मुख्यमंत्री की स्थिति बिलकुल स्पष्ट थी। अगर वह स्वयं सूची को स्वीकृति नहीं देते तो किरण के पास इतने दस्तावेज़ थे कि उनके आधार पर न्यायालय उन्हें ऐसा करने का निर्देश दे देता। वही, उसी समय मुख्यमंत्री ने सुकृति के लिए दिल्ली के लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज में सीट के आबंटन का आदेश जारी कर दिया।

किरण उसी दिन दिल्ली चल दीं ताकि अपनी बेटी का दाख़िला करवा सकें।

14 अगस्त, 1992 को पेशावरिया या बेदी, दोनों ही ख़ानदानों से पहली बार किसी ने मेडिकल कॉलेज में प्रवेश किया।

इस दिल्ली-प्रवास के दौरान ही किरण को पता चला कि आइज़ोल में लोगों ने उनके विरुद्ध बड़े पैमाने पर आंदोलन चला दिया है और वे ज़ोरदार प्रदर्शन कर रहे हैं। माता-पिता के रोकने के बावजूद वह अपनी ड्यूटी पर वापस मिज़ोरम लौट गई। आइज़ोल में उनका स्वागत काले झंड़ों, इश्तहारों, तख्तियों और 'किरण बेदी लौट जाओ' के नारों से हुआ।

किरण ने आंदोलनकारियों पर पुलिस द्वारा जवाबी हमला न करवाने का फ़ैसला लिया। फ़ैसला सही था क्योंकि यह स्पष्ट था कि उनके सही नीयत से उठाए गए कदमों को भी पूर्वाग्रह से प्रेरित माना जा सकता था। हालांकि कई लोगों ने इसके खिलाफ़ सलाह दी कि लेकिन मुख्य सचिव का मत भी यही था। अधिकारी-तंत्र का सामान्य रुख भी सहनशीलता और संयम के पक्ष

में था। इन परिस्थितियों में जो होना था, वही हुआ। आंदोलन उग्रतर होता गया। दंगे और आगज़नी की घटनाएं आम हो गई थीं। कुछ मिलाकर स्थिति यह थी कि आंदोलनकारी छात्र मनमानी करने को आज़ाद थे।

उन्हीं दिनों किरण को दिल्ली के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा एक सप्ताह चलने वाली संगोष्ठी के लिए आमंत्रित किया गया। ऐसे समय इस अवधि के लिए उन्हें बाहर भेज देना कुशल रणनीति होती और इससे आंदोलन भी कुछ हलका पड़ जाता, लेकिन उच्च अधिकारियों का सोच कुछ अलग ही थी। ग़ैर-मिज़ो आई. जी. (पी.) कुलबीर सिंह ने मुख्य सचिव को सुझाव भी दिया कि किरण को भेज देना चाहिए, मगर मुख्य सचिव ने उन्हें बताया कि उन्होंने अपनी तरफ़ से ही किरण के संगोष्ठी में भाग न ले सकने के लिए खेद का पत्र भेज दिया है।

राज्य सरकार में आंदोलन रोकने की न तो इच्छा थी, न संकल्प। फलस्वरूप स्थिति नियंत्रण से बिलकुल ही बाहर हो गई। ऐसे ही समय किरण को एक शाम साढ़े-सात बजे कानून और शिक्षामंत्री डॉ. थानसांगा से मिलने उनके दफ़्तर में बुलाया गया। वह अपने एक विश्वस्त मिज़ो अधिकारी को साथ ले उस अंधेरी, ठंडी, बरसात रात में गाड़ी से मंत्री के दफ़्तर पहुंची। वहां कानून और शिक्षा मंत्री के साथ स्वास्थ्य मंत्री भी उपस्थित थे। वहां किरण को समझाया गया कि छात्र असंतोष कितना गंभीर हो गया है और फिर इस मामले में उनका सुझाव मांगा गया। किरण ने कहा कि स्थिति का सामना करना होगा और इस पर नियंत्रण पाने के लिए इच्छा-शक्ति की जरूरत है। किंतु दुर्भाग्यवश ऐसा कुछ नज़र नहीं आ रहा है। इसके विपरीत मजिस्ट्रेट अपने काम से कतरा रहे हैं और कानून के उल्लंघन की घटनाओं के पास भी नहीं फटक रहे हैं। 50 से 200 लोगों के समूह को वे 1,500 से 2,000 तक बढ़ने देते हैं और फिर घोषणा कर देते हैं कि कानून और व्यवस्था की स्थिति पूरी तरह से नियंत्रण से बाहर चली गई है। किरण की इस तरह की तेज़-तर्रार टिप्पणियों को सुनकर मंत्रियों ने अपना रुख़ बदल दिया। उन्होंने सुझाव रखा कि स्थिति को सुधारने का एकमात्र तरीका यह है कि वह अपने बेटी को आबंटित सीट पत्र लिखकर लौटा दें। उनका कहना था कि स्थिति के सुधार के लिए प्रशासन कुछ नहीं कर सकता और अगर वह यह सलाह नहीं मानेंगी तो मामला छात्रों के हाथ में चला जाएगा और वे उन्हें जान से भी मार सकते हैं। ''मुझे मार डालेंगे?'' किरण ने पूछा। डॉ. थानसांगा ने उत्तर दिया, ''हां, मार डालेंगे।'' किरण ने अपनी बेटी और परिवार से सलाह करने का समय मांगा। उन्हें अगली सुबह आठ बजे तक की मोहलत दी गई। इसके साथ ही मुलाकात भी ख़त्म हो गई।

अगली सुबह ठीक आठ बजे डॉ. थानसांगा ने किरण के घर फोन किया। किरण ने उन्हें बताया कि तब तक उनको दिल्ली की टेलिफ़ोन लाइन नहीं मिल पाई थी। तब उन्हें बताया गया कि निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हुए छात्र दस बजे एकत्रित हो जाएंगे और तब यदि सीट लौटाने की सूचना न मिली तो वे मामला अपने हाथ में ले लेंगे। किरण ने राजभवन में शरण लेने का फ़ैसला कर लिया और राज्यपाल स्वराज कौशल के निवास पर चली गईं। निचले

अधिकारियों से लेकर मुख्यमंत्री तक अनेक लोगों ने उनके पता लगाने के लिए उनके दफ़्तर और घर पर बार-बार फ़ोन किए। जब किरण ने आई. जी. (पी.) को सूचना दी कि वे राजभवन में हैं तब जाकर फोन बजने बंद हुए। राज्यपाल की अनुमति से किरण बेदी आधी रात के समय मिजोरम से प्रस्थान कर गई।

दिल्ली पहुंचकर किरण ने द संडे ऑब्जर्वर को यह साक्षात्कार दिया जो 27 सितंबर, 1992 को प्रकाशित हुआ था :

विवाद, परेशानियां, विध्वंसक आलोचना, प्रबल विरोध... ये सब मेरे लिए नए नहीं हैं। जब मैंने अपना जीवन भारतीय पुलिस सेवा (आई. पी. एस.) को समर्पित किया तो इन सबको, और कई और बातों को भी मैंने अपनी नियति का हिस्सा माानकर गले लगाया था। याद कीजिए, अकाली आंदोलन में जब हज़ारों अकाली उन्मत्त होकर नंगी तलवारें भांजते हुए पुलिस पर टूट पड़े थे तो मैं हाथ में सिर्फ एक डंडा लेकर उनसे भिड़ गई थी। घटना की सही तारीख़ तो ख़ैर मुझे याद नहीं लेकिन आज मैं कह सकती हूं कि शारीरिक बल से डरकर नहीं, बल्कि मेरी तरफ़ से पड़े मनोवैज्ञानिक दबाव के कारण ही वह भीड़ भागी थी। उस घटना के प्रति या किसी भी और बात के प्रति मेरा दृष्टिकोण बड़ा सरल है। वह रहा मेरा निशान और यह हूं मैं। मेरे मन में केवल एक ही विचार होता है- मुझे सफल होना है। बस उसके बाद मैं जो भी करूं वह सिर्फ सहज क्रिया होती है। जीवन में मेरा आदर्श वाक्य है: कुछ भी असंभव नहीं है, कोई भी लक्ष्य ऐसा नहीं है जो प्राप्त नहीं किया जा सकता- बस जरूरत है तो सिर्फ जुटकर कोशिश करते जाने की।

जब मैं नार्कोटिक ब्यूरो में थी तो उत्तरप्रदेश की पहाड़ियों में मादक पदार्थों के व्यापारियों पर छापे के दौरान मुझे कुछ-कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ था। मैं सिर्फ इतना स्पष्ट कर देना चाहती हूं- और वकीलों की हड़ताल के दौरान भी मेरा यही रुख था- कि अपने 20 वर्ष के कार्यकाल में मैंने कभी हार नहीं मानी है, कभी डरकर झुकी नहीं हूं। न मैंने कभी अन्याय बर्दाश्त किया है। तो अब मैं मिज़ोरम के मुख्यमंत्री की इस बिलकुल बेतुकी मांग के आगे कैसे झुकूं। लोग अक्सर हैरान होते हैं कि महिला होते हुए भी मैं कुछ स्थितियों का सामना कैसे कर लेती हूं। मैं ऐसे सब लोगों को एक ही उत्तर देती हूं कि महिला होने का यह अर्थ कभी नहीं कि वह नाजुक है। मैं नाजुक नहीं हूं- शायद इसलिए कभी किसी ने मुझे साड़ी में नहीं देखा है- मैं मानती हूं कि साड़ी का पहनावा नाजुक लोगों के लिए है।

वर्तमान विवाद के विषय में मेरा कहना है कि मैं और मेरी बेटी सायना एकदम सही है। मेरी बेटी को सीट दो कारणों से मिली है। पहला कारण, वह भारतीय पुलिस सेवा में कार्यरत एक ऐसी अधिकारी की बेटी है जो एक 'दुर्दम क्षेत्र' में नियुक्त हैं, और केंद्रीय सरकार के निर्देशक नियमों के अनुसार ऐसे अधिकारियों के बच्चे कुछ विशेष सुविधाओं के अधिकारी होते हैं। लेकिन सायना के मामले में यह बात गौण है। उसे यह सीट अपनी योग्यता के आधार पर मिली है क्योंकि मिज़ोरम से परीक्षा में बैठने वाले सभी छात्रों में

सायना ने सबसे अधिक अंक प्राप्त किए हैं। मैं यहां यह बात और जोड़ना चाहती हूं कि मैंने सरकार से नहीं कहा था कि मुझे मिज़ोरम भेजा जाए। सरकार को वहां मेरी सेवाओं की जरूरत थी। चूंकि मेरी बेटी मेरे साथ रहती है। इसलिए वह मेरे संग ही मिज़ोरम गई और उसने दो वर्ष तक वहां सेंट्रल स्कूल में पढ़ाई की। पढ़ाई जब उसने वहां से की है तो परीक्षा कहीं और से क्यों दे? मुख्यमंत्री का कहना है कि वह नहीं चाहते कि ग़ैर-मिज़ो को मिज़ोरम से सीट मिले क्योंकि वे छात्र वापस मिज़ोरम नहीं लौटेंगे। मैं उनसे पूछती हूं, उन्होंने ऐसा कैसे सोच लिया? योग्यता के आधार पर जिन अन्य चार ग़ैर-मिज़ो प्रत्याशियों का चयन हुआ है वे ऐसे लोगों की संताने ं हैं जो मिज़ोरम के अभिन्न अंग बन गए हैं। एक छात्र के पिता लगभग दो दशक से मिज़ो सरकार में अधिकारी हैं और उसी हैसियत से वह सेवानिवृत्त भी होने वाले हैं। एक दूसरे छात्र के पिता वहां डाक्टर हैं। तीसरे की मां मिज़ो हैं...मैं पूछती हूं उन लोगों के बच्चे कहां जाएंगे? आख़िर है तो वे यहीं की पैदाइश। इस मसले को लेकर आज मैं लड़ रही हूं, क्योंकि आज अगर बिना विरोध के मामला नहीं छोड़ दिया गया तो कल कोई मिज़ोरम जाकर काम करना नहीं चाहेगा और फिर कुछ समय बाद दूसरे राज्य भी मिज़ोरम का अनुसरण करने लगेंगे। हमारे देश की राष्ट्रीय एकता, अखंडता, जनतंत्र और उन तमाम मूल्यों को इससे गहरा आघात पहुंचेगा जिनसे हम प्रतिबद्ध हैं। मुझे हैरत है कि कोई राज्य सरकार इस तरह की अन्यायपूर्ण और पक्षपातपूर्ण मांगों के आगे झुक कैसे सकती हैं?

और फिर क्या श्री लाल थनहवला के पास कोई गारंटी है कि एम. बी. बी. एस. के बाद मिज़ो छात्र मिज़ोरम में ही काम करेंगे? पहले भी क्या सभी मिज़ो छात्र अपने राज्य में लौट आए हैं? क्या उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है? भारत आख़िरकार एक लोकतंत्र है, न कि तानाशाही- आप किसी नागरिक का जहां भी वह चाहे, वहीं जाकर काम करने का अधिकार कैसे छीन सकते हैं? तो फिर बात क्या बनी? इसके इलावा राज्य में डॉक्टरों के पद इसलिए ख़ाली नहीं हैं कि डॉक्टर उपलब्ध नहीं हैं। अगर मुख्यमंत्री ऐसा कहते हैं तो मैं उन्हें इसे प्रमाणित करने की चुनौती देती हूं।

मेरा तीसरा प्रश्न यह है कि अगल कल दिल्ली में मिज़ोरमवासियों के साथ ऐसा ही व्यवहार किया गया तो क्या होगा? अगर उन्हें यह कह दिया जाए कि उनके मामले पर दिल्ली में अनुसूचित जाति या जनजाति श्रेणी में विचार नहीं किया जाएगा और उन्हें अपने राज्य लौटकर विशेष कोटा के तहत आवेदना करना होगा तो क्या होगा? आप मुझे गलत न समझें। मैं नहीं चाहती कि ऐसा हो। मैं न तो मिजो हूं न ग़ैर-मिज़ो, न मैं हिंदू हूं, न सिख, और न ही दिल्लीवासी- मैं भारतीय हूं और भारत के हर व्यक्ति को एक समान मानती हूं। इसलिए हाल में घटी घटनाओं से मुझे बड़ी चोट पहुंची है। मैं भारत-विरोधी, राष्ट्र-विरोधी भावनाओं की शिकार बन गई हूं। जब तक नशा-नियंत्रण जैसे मेरे कार्य वहां समाज को लाभ पहुंचा रहे थे तब तक वो मुझे स्वीकारा जा रहा था, लेकिन जैसे ही मामला मिज़ो-ग़ैरमिज़ो भावनाओं को छूने लगा, वैसे ही मैं वहां एक बाहरी व्यक्ति, एक अजनबी मान ली गई।

मुझे लिखित रूप से आदेश दिया गया था कि 12 सितंबर की शाम को मैं मुख्यमंत्री से मिलूं और इस मुद्दे पर उनके साथ विचार-विमर्श करूं। उनके कार्यालय में पहुंचने पर मुझे साफ़-साफ़ कहा गया, ''राज्य में सामान्य स्थिति बहाल करने में सिर्फ़ तुम्हारी बेटी एक रुकावट बनी हुई है। अपने बेटी की सीट लौटा दो नहीं तो परिणाम भुगतने के लिए तैयार हो जाओ........'' नहीं, मैं उस मुलाकात को पूरा विवरण नहीं देना चाहती क्योंकि ऐसा करना मेरी गरिमा के अनुरूप नहीं होगा, लेकिन उन्होंने मुझे डराने-धमकाने से भी कुछ आगे जाने की भरपूर कोशिश की। इसके बाद, अपनी समझ के अनुसार, मुझे वहां से निकल चलना ही बेहतर लगा। मुझे लगा कि इससे कानून और व्यवस्था की स्थिति भी शायद कुछ संभलेगी। लोग कहते हैं कि मैं भाग निकली-सच तो यह है कि मैं बड़ी तेज़ी से भागी थी और वह भी आधी रात के समय। स्थिति नियंत्रण से बाहर हो चुकी थी और मैं जानती थी कि अगर मैं किसी को सूचित करती हूं तो मिज़ोरम से मेरा निकलना असंभव कर दिया जाएगा। मैंने पहले छुट्टी को आवेदन दिया था। पर उसे स्वीकार नहीं किया गया। इसलिए मैं बिना पूछे चली आई हूं। हां, एक पत्र वहां छोड़ा है जिसमें मैंने लिखा है कि मैं विकट परिस्थितियों में मजबूरन मिज़ोरम से जा रही हूं। जब तक स्थिति की यही मांग होगी, मैं नहीं लौटूंगी। इसलिए कृपया मेरी छुट्टी स्वीकृत की जाए। इस तरह से चले आने का मुझे खेद है। मेरा वहां का सेवाकाल चार महीने पहले ही समाप्त हो गया था और मैं वहां से सद्भावनापूर्वक विदा होना चाहती थी। यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि मेरी सारी मेहनत, मेरा संघर्ष, मेरा घोर परिश्रम- सब एक मिज़ो भावना में लुप्त हो गया है।

मेरे पास इसके अलावा दूसरा कोई विकल्प न था। पुलिस प्रशिक्षण के दौरान हम अक्सर 'हम होंगे कामयाब' गीत गाया करते थे। मुझे इन शब्दों में विश्वास है। मैं अन्याय के समक्ष घुटने नहीं टेकूंगी। वे कह रहे हैं कि वे और भी कठोर कार्रवाई करेंगे। ठीक हैं, मैं तैयार हूं। निर्णय उन्हीं के हाथ में है। मेरी बेटी अपनी पढ़ाई जारी रखेगी। मैं दिल्ली में न लोगों से मिलूंगी और न ही अपने लिए समर्थन जुटाऊंगी। मैं योग्यता के आधार पर किसी चीज़ के लिए दावा कर रही हूं। यही सच्चाई मेरी समझ में काफी है। अंतत: अगर इसे पर्याप्त न माना गया तो मैं अनी बेटी के भविष्य की रक्षा के लिए हर संभव उपाय करूंगी। मैंने उसे सफलता हासिल करने के लिए परिश्रम करते हुए देखा है। एक मां होकर मैं उसकी मेहनत का जायज़ फल उससे कैसे छीन लूं। प्रश्न उसके भविष्य, उसकी जीविका और उसके जीवन का है। कानून में एक चीज़ होती है- प्राकृतिक न्याय। यह मेरी बेटी के पक्ष में है। अगर ये लोग मेरी बेटी को कॉलेज से निकलवाने की कोशिश करते हैं तो यह ग़ैरकानूनी कार्रवाई होगी। मुझे नहीं लगता कि उनमें इतनी हिम्मत होगी। मुझे पूरा यकीन है कि न्याय की ही जीत होगी। उसे जीतना ही होगा। यह जीत सुनिश्चित करने के लिए ही मैं यहां हूं।

जैसे ही मिज़ोरम के छात्रों को पता चला कि किरण बेदी सचमुच चली गई हैं वैसे ही उन्होंने अपना आंदोलन वापस ले लिया। राज्य ने तुरंत सुकृति को आबंटित सीट रद्द करने का आदेश जारी कर दिया। लेकिन दिल्ली के लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज ने किसी वैध कारण के

अभाव में ऐसा करने से इनकार कर दिया।

मिज़ोरम सरकार ने उच्चतम न्यायालय में याचिका दायर करने का प्रयास किया, लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने इस पर विचार तक करने से इनकार कर दिया। अंतत: मामला ऐसे निपटा कि भारत सरकार द्वारा आबंटित सीटें मिज़ो लोगों के लिए नहीं बल्कि भारत के एक राज्य, मिज़ोरम के लिए हैं।

तभी से, गैर-मिज़ो व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को भी पूरा फायदा लेते जा रहे हैं, भारत सरकार के आदेश अब भी वैध हैं।

लेकिन किरण के लिए, यह न्याय के लिये लड़ी गई लड़ाई का ही एक हिस्सा था। यदि वे एक तरीके से जीतीं, तो दूसरे तरीके से उसका मोल चुकाया। दिल्ली लौटने पर, पूरे नौ महीने तक बिना किसी काम के रहना पड़ा, जब तक भारत के एक अकाउंटेंट जनरल ने इस विषय में नहीं पूछा। लेकिन कौन जानता था कि भाग्य ने उनके लिए क्या रचा था? अंतहीन इंतजार व नियुक्ति के बिना महीनों काटने के बाद, उन्हें तिहाड़ जेल, नई दिल्ली भेज दिया गया।

बाकी तो आप जानते ही हैं; पढ़ते रहिए.........

14

भय से मुक्ति : जेल सुधार के लिए ब्ल्यू प्रिंट का निर्माण

किरण बेदी के कार्यजीवन के क्रम से उन गुणों का स्पष्ट परिचय मिल जाता है जो उन्होंने बचपन में, जीवन के विकास-काल में अर्जित किए थे। स्कूल में, कॉलेज के प्रारंभिक दौर में- जब वे पढ़ाई, पाठ्येत्तर गतिविधियों, और हां, टेनिस में उत्कट लगन से डूबी रहती थीं, तब भी अर्जन की यह प्रक्रिया चलती रहती थी। पूरे कार्यजीवन में, वे अपने भंडार में संग्रहित इन गुणों का परिस्थितियों की मांग के अनुसार उपयोग करती रहीं। इनमें से कुछ विशेषताएं तो उन्हें प्रकृति से मिली थीं और कुछ उन्होंने लगन और परिश्रम से अपने-आप में विकसित की थीं। समय बीतता गया और अपने मूल्यों तथा कार्यों के बीच पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया के माध्यम से किरण परिपक्व होती गईं।

अधिकतर अपनी परिस्थितियों की मांग के ही अनुसार उनके व्यक्तित्व में जो खुरदरापन आ गया था, अब अनुभव की धार के नीचे घिसकर वह क्रमश: अधिकाधिक स्निग्ध होता जा रहा था। फिर भी, अगर एक पल उन्हें संतोष मिलता तो शीघ्र ही अपनी संभावनाओं को बाधित करने वाली परिस्थितियों से उत्पन्न चिड़चिड़ाहट भी उन्हें घेर लेती। उन्हें मानो लगता कि इतना कुछ सीखने, हृदयंगम करने और अनुभव करने के बावजूद उन्हें अपने-आपको पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने के अवसर नहीं दिए जा रहे हैं।

अपने को सचमुच सिद्ध कर दिखाने का अवसर किरण को तब मिला जब उन्हें नई दिल्ली की तिहाड़ जेल का इंस्पेक्टर-जनरल (आई. जी.) नियुक्त किया गया। यह नियुक्ति किरण के लिए एक विराट चुनौती थी। ग्रीक पुराण-प्रसिद्ध ऑजियस के अस्तबल जैसी बेइंतहा गंदगी उन्हें साफ़ करनी थी। इसका परिणाम आज सबके सामने है।

यहां जेल के बारे में कुछ जानकारी देना प्रासंगिक होगा। दिल्ली जेल की स्थापना ब्रितानी शासन के दौरान हुई थी। मुग़ल काल में लाल किले के निकट स्थित खूनी दरवाज़े (या दिल्ली गेट) के पास फ़रीद ख़ाँ नाम के एक व्यक्ति ने दिल्ली से गुज़रने वाले यात्रियों के लिए एक बहुत बड़ी सराय बनवाई थी। जब अंग्रेज़ों ने सत्ता संभाली तो उन्होंने सराय को अपने अधिकार में लेकर उसे मुख्यत: स्थानीय अपराधियों के लिए जेल में बदल दिया। लेकिन 1919 के बाद जब भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने गति पकड़ी तो अंग्रेज़ों को बड़ी संख्या में पकड़े गए राजनीतिक बंदियों को रखने के लिए स्थान की जरूरत पड़ी। इसलिए 1937 में स्थानीय जेल को ज़िला जेल का दर्जा दिया गया। भारत की स्वतंत्रता के बाद इस जेल को तिहाड़ गांव के

निकट स्थानांतरित कर दिया गया जो उस समय दिल्ली की सीमा पर बसा हुआ था। कुछ वर्षों के बाद इसे केंद्रीय जेल का दर्जा दे दिया गया जो कि आज तक बरकरार है। यह अवश्य है कि पिछले कुछ वर्षों में इससे आकार और क्षमता में तेज़ी से परिवर्तन आए हैं। 1958 में तिहाड़ जेल 170 एकड़ भूमि पर फैली थी। आज 2,500 लोगों के लिए निर्मित जेल में 8,500 लोग रहते हैं।

सन् 1965 से ही तिहाड़ जेल दिल्ली प्रशासन के नियंत्रण में आई। इससे पहले इस पर पंजाब राज्य पुलिस का नियंत्रण था। जब दिल्ली प्रशासन ने इस जेल का कार्यभार संभाला तब भी दिल्ली का डिप्टी कमिश्नर ही पदेन जेल इंस्पेक्टर-जनरल (आई. जी.) होता था और जेल के अधीक्षक और अन्य कर्मचारी पंजाब राज्य पुलिस से ही प्रतिनियुक्त होकर आते थे।

आज आई. जी. (जेल) के पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवा या भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी को नियुक्त किया जाता है। डी. आई. जी. का चयन दिल्ली और अंडमान सिविल सेवा के अधिकारियों में से किया जाता है। जेल के अधीक्षक भी इसी सेवा में से चुने जाते हैं। तिहाड़ जेल के काडर में उपअधीक्षक, सहअधीक्षक, मुख्य वार्डर आते हैं। यह बहुत ही उपेक्षित काडर है क्योंकि इस सेवा में न तो तरक्की और न ही सेवा-शर्तों पर किसी प्रकार का ध्यान दिया जाता रहा है। फलस्वरूप इस सेवा में कार्यरत कर्मचारी बहुत ही कुंठित रहते हैं। वे स्वयं को शोषित महसूस करते हैं और इसीलिए उनके मनोबल तथा ईमानदारी का स्तर हमेशा गिरा रहता है। उनका तबादला दिल्ली के बाहर भी नहीं होता है क्योंकि राजधानी की हैसियत एक प्रकार से नगर-राज्य-की-सी है। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक वे सेवारत रहते हैं। तब तक उन्हें हमेशा तिहाड़ जेल में ही नौकरी करनी पड़ती है- मानो उन्हें लगातार दो बार आजीवन कारावास भुगतना पड़ता है क्योंकि सामान्य रूप से आजीवन कारावास की अवधि चौदह वर्ष की ही होती है।

किरण तिहाड़ जेल में आईं तो कुछ मिली-जुली भावनाओं के साथ। जनता की नज़र में यह पद विशेष प्रतिष्ठित नहीं था। स्वयं पुलिस सेवा में भी यह 'कूड़ा' नियुक्ति मानी जाती थी। किरण अभी एक 'कठोर' नियुक्ति से लौटी थीं और उन्हें दिल्ली पुलिस में वापस लौटने का अधिकार था लेकिन ज़ाहिरन उनके लिए कोई जगह (खाली) न थी। मिज़ोरम से लौटकर किरण नौ महीने तक दिल्ली में नियुक्ति का इंतज़ार करती रहीं और अब सरकार के लिए उन्हें इस प्रकार खाली बैठाए रखने की संगति को सिद्ध करना कठिन हो गया। तिहाड़ जेल में स्थान रिक्त था। किरण को वहीं 'टिका' दिया गया। पर किरण स्वयं मन-ही-मन इसे अपराधों की रोकथाम और सुधार का अवसर मान रही थी। वहां तकरीबन 8,500 लोग थे जिनके पुनर्वास का प्रयत्न वह अपनी सुधार-पद्धतियों के माध्यम से कर सकती थीं। इस प्रकार नियति उन्हें उस कार्य तक ले आई थी जो वह वैसे भी सहर्ष स्वेच्छा से करने को तत्पर होतीं।

तिहाड़ जेल किरण की अपेक्षाओं के बिलकुल अनुरूप थी। वहां की कार्यशैली पूरी तरह गोपन और रहस्यमय थी। उस पूरे इलाके में बाहरी व्यक्तियों का प्रवेश निषिद्ध था- शायद इस भय से कि उन्हें यह पता न चल जाए कि बंदियों के साथ किस तरह जानवरों-जैसा व्यहार

होता है। उनकी किसी प्रकार की देखभाल नहीं होती थी, वे पूरी तरह अव्यवस्थित थे और इससे उनकी पूरी मानसिकता एक भीड़ की-सी मानसिकता हो गई थी। इसलिए उनकी व्यवस्था की भीड़ से निपटने के तरीकों के ही अनुसार होती थी। उन्हें पूरी तरह विशंखलित करना भी बात को घटाकर प्रस्तुत करना ही कहा जा सकता है।

जेल के कर्मचारियों का दृष्टिकोण पूरी तरह उपनिवेशीय था। प्रारंभिक दिनों में जब किरण जेल में आती तो वे उनके आगे-आगे हाथों में बेत लिए रास्ता साफ़ करते चलते थे। उनकी भाषा? -कैदियों के प्रति वह एकदम असभ्य, अशिष्ट और अपमानजनक होती थी। कैदी किरण के चारों ओर जमा हो जाते थे। उनकी समझ में यह नहीं आता था कि एक वरिष्ठ अधिकारी जेल में क्या करने आई हैं? पहले जब कभी कोई अधिकारी जेल के दौरे के लिए आता था तो कैदियों को बंद कर दिया जाता था। व्यवस्था-अधिकारियों के अनुसार ऐसा करना सुरक्षा की दृष्टि से ज़रूरी था। पूरा वातावरण भयाक्रांत रहता। आई. जी. और कैदियों के बीच कोई संवाद नहीं था। हर किसी के सामने ढेर-सी समस्याएं थीं, लेकिन बातचीत न होने के कारण किसी प्रकार का हल नहीं निकल पाता था। व्यक्तिगत स्तर पर कुछ प्रयास किए जाते थे लेकिन इस दिशा में सामूहिक प्रयास कतई नहीं हुए। पुलिस अधिकारी होने के नाते किरण को आक्रामक भीड़ में घूमने की आदत थी, इसलिए उन्हें कैदियों के बीच घूमने में कोई दिक्कत नहीं हुई। हालांकि यहां आक्रामकता का परिमाण कहीं अधिक था। उन्हें उस वातावरण में कोई ख़तरा महसूस नहीं हुआ और वह बड़ी सहजता से कैदियों के बड़े-बड़े समूहों के साथ खड़े-खड़े या उनके बीच बैठकर बातचीत कर लेतीं। इस निकट संपर्क से उन्हें पता चला कि कैदी पूरी तरह से अव्यवस्थित और विभ्रांत हैं। इन मुलाकातों का उद्देश्य तुरत-फुरत समस्याएं हल करने से अधिक यह था कि कर्मचारी और वह स्वयं उनसे अवगत हों। चूंकि कैदियों के साथ बातचीत के दौरान वह स्वयं मौजूद रहती थीं, इसलिए वह अपने कर्मचारियों को इन मुलाकातों के दौरान उभरी समस्याओं के विश्लेषण करके उन्हें दूर करने का सामूहिक हल ढूंढ़ने के लिए कह सकती थीं। इस तरीके से वर्तमान स्थिति तथा उसके सुधार में उनकी हिस्सेदारी भी बढ़ी और लगाव भी।

जेल की शब्दावली से 'मुआयना' शब्द लुप्त हो चुका है। कर्मचारियों को यह सुझाव दिया गया कि वे अपने कार्य के कारण- परिणाम पर ध्यान देने का प्रयास करें और देखें कि जो कुछ भी उन्होंने किया है उसे लेकर उनकी अंतरात्मा साफ़ है या नहीं। इस सुझाव ने अनेक कर्मचारियों को अपने अंदर झांकने को प्रेरित किया और उनकी अपनी ग़लतियों से जो समस्याएं उत्पन्न हुई थीं, उन्हें सुलझाने के लिए उन्होंने मुक्त मन से उपाय भी सुझाए। यह एक तथ्य है कि अपनी भूलों को सुधारने में अधिकारियों ने काफ़ी तत्परता दिखाई। यह बहुत अच्छा संकेत था और इसी के माध्यम से विकास की गति अपेक्षा से अधिक बढ़ गई।

पहले कर्मचारियों की हर बात 'क्रोध' पर आकर ही ख़त्म होती थी। वे किसी भी प्रकार की अनुशासनहीनता को देखते ही बलप्रयोग पर उतर आते थे। कैदियों के मन में अधिकारियों के प्रति भय उत्पन्न करना एकमात्र ध्येय होता था, उनमें अधिकारियों के प्रति आदर की भावना

जागृत करने का उन्होंने शायद कभी प्रयास ही नहीं किया था। ऐसा लगता था कि वहां दो विरोधी शक्तियां मौजूद हैं- एक ओर कैदी तो दूसरी तरफ़ जेल के कर्मचारी। दोनों में परस्पर अविश्वास की भावना के कारण कर्मचारी शायद भय को ही (नियंत्रण की) कुंजी मानते थे। पूरे वातावरण में नकारात्मकता व्याप्त थी और आदर अर्जित करने की चेष्टा का अता-पता ही न था।

किरण स्वयं इस स्थिति को बड़ी स्पष्टता से बताती हैं :

मुझे एक ऐसे तथ्य का पूरा बोध था जो मेरे प्रयासों को हानि पहुंचा सकता था। मुझे पता था कि मेरे अधीनस्थ कर्मचारी जानते हैं कि मैं जेल काडर से नहीं हूं, और उनको मुझे तभी तक बर्दाश्त करना होगा जब तक कि मैं यहां नियुक्त हूं। दिल्ली पुलिस में स्थिति बहुत भिन्न है क्योंकि वहां उन्हें पता है कि शायद एक के बाद दूसरी, तीसरी या आगे की अन्य नियुक्तियों में भी हमें साथ-साथ काम करना पड़ सकता है। तिहाड़ में अधिकतर कर्मचारी जेल सेवा से भी नहीं थे और उन्हें पता था कि हमारा संबंध ज्यादा दिन नहीं रहेगा। दूसरा बाधक तथ्य यह था कि उन्हें महिला अधिकारी के मातहत काम करने की आदत न थी। उन्हें लगता था कि वे मुझसे उतना खुलकर संवाद नहीं कर पाएंगे जितना कि पुरुष अधिकारी के साथ। मैं ये बातें समझती थी और मुझे इनका सामना करना था।

जेल सेवा में कर्मियों का तबादला नहीं होता इसलिए मैं अनुशासन लागू करने के लिए तबादले की धमकी नहीं दे सकती थी। मेरे पास कर्मचारियों की कमी थी और मुझे सभी उपलब्ध कर्मियों की जरूरत थी। मुझे उनकी सोच को एक सकारात्मक स्वरूप देना था। आमतौर पर मेरे अधीन कर्मचारी पूरी तरह प्रशिक्षित नहीं थे। कुछ को तो बिलकुल ही प्रशिक्षण मिला था। वे बद-दिमाग़ थे और पिछली व्यवस्था के अनुरूप दमन और बल प्रयोग के अभ्यस्त। उनमें से कई उम्र में मुझसे काफ़ी बड़े थे। एक अच्छी बात यह थी कि वे सब समझ गए थे कि मैं किसी प्रकार का अनापशनाप काम सहन नहीं करती हूं। वे यह भी जान गए थे कि मैं बेईमान, बलप्रयोग और मारपीट को कभी भी प्रश्रय नहीं दूंगी।

जेल-अधीक्षक अपने अधीन कार्यरत कर्मियों के आगे सिर्फ इसलिए झुक जाते थे कि उन्हें अपने वरिष्ठ अधिकारियों के समर्थन का सहारा न था। इसके अलावा वे कर्मी जेल में बड़े लंबे समय से कार्यरत थे। जो भी काम अधीक्षकों को करना-करवाना होता वह उनके मातहत काम करने वाले लोगों के माध्यम से ही होता था। इसलिए उन्हें काफ़ी समझौते करने पड़ते थे। इस व्यक्ति-विशिष्ट कार्यप्रणाली के कारण ऐसा बहुत-कुछ घट रहा था जो कभी नहीं घटने देना चाहिए था। लेकिन वे अपनी सीमाओं में बंधे थे। समस्या बिलकुल स्पष्ट थी। निचले स्तर के कर्मचारी अपनी मनमर्ज़ी से जो भी चाहते या कर पाते वही करते, क्योंकि अधीक्षकों का उन पर कोई नियंत्रण नहीं था। इसकी वजह यह थी कि अधीक्षकों को अपने वरिष्ठ अधिकारियों का सहयोग प्राप्त नहीं था। मुख्यालय ने स्वयं को जेल से अलग-सा कर लिया था और वहां से कोई भी तिहाड़ का दौरा तक करने का कष्ट नहीं उठाता था। इस तरह न वे जेल और कैदियों की समस्याएं ही समझ पाते थे और न उनका कोई हल ही दे पाते थे। इस प्रकार वे स्वयं

समस्या का अंग बन गए थे। यह स्पष्ट है कि समस्या इतनी विराट थी कि कोई भी मारे डर के उसे हल करने का प्रयास तक नहीं करना चाहता था। इस प्रकार उनकी मनोवृत्ति आरम्भ से ही पराजयकारी थी। पारस्परिक सहयोग के माध्यम से काम करने वाला एक दल बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया था। उस समय सहयोगी प्रयत्न ही सफल हो सकता था और सहयोग से मिलजुलकर काम करना एक दल के लिए ही संभव था।

मैं जानती थी कि मेरे अधीनस्थ कर्मचारी मार-पीट, गाली-गलौज, भ्रष्टाचार तर्कहीन और असंवेदनशील व्यवहार से झिझकते न थे। लेकिन यह सब मेरी सुनी-सुनाई थी, देखी नहीं। अगर मैं केवल अफ़सरों के आधार पर ही उन्हें दोषी ठहराती तो वे मेरे विरोधी बन जाते। जब स्थितियों के माध्यम से उनके ये कर्म सामने आते तभी मैं उन्हें सच्चाई के रू-ब-रू खड़ा करके समझाती कि क्या गलत है और क्या किया जाना चाहिए था या किया जा सकता था। कभी-कभी ये कर्मचारी मुझे बताते कि अगर ये पिटाई का सहारा नहीं लेते तो कैदी उन्हें दबोच लेती। मैंने उन्हें बताया कि उनकी बात से यह अर्थ निकलता है कि उन्हें पर्याप्त सुरक्षा नहीं मिली हुई है। इसका उपाय मार-पीट नहीं, बल्कि अधिक सुरक्षा का प्रावधान है।

इस तरह मैंने एक-एक कर्मचारी और उनकी एक-एक समस्या को हल किया। इससे उनमें विश्वास जागा और वे मेरे सुझावों के अनुसार चलने को तैयार हो गए। मैंने महसूस किया कि लंबे-चौड़े सैद्धांतिक भाषणों के स्थान पर हम कर्मचारी से संपर्क बनाने का मेरा तरीका उन्हें प्रभावित करने में बेहतर सिद्ध हो रहा था। कभी-कभी मेरे कर्मचारी मुझसे कहते कि ये सारे कैदी चोर और अपराधी हैं और कठोर व्यवहार के ही लायक हैं। मुझे बहुत ही धैर्य से उनकी बात सुनकर उन्हें समझाना पड़ता कि जो मामले उनकी ड्यूटी के दायरे में नहीं आते उन पर निर्णय सुनाने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। वे कैदियों के अभिभावक और अंगरक्षक मात्र हैं। उनका काम सिर्फ़ कैदियों की सुरक्षा और कल्याण की व्यवस्था करना है। इसलिए उन्हें अपने काम की साफ़-साफ़ सीमा-रेखा निश्चित कर लेनी चाहिए। उससे परे जाकर कैदियों के चरित्र की आलोचना करना या उनके तथाकथित अपराधों की निंदा करना उनका काम नहीं है। वे जज नहीं बन सकते।

तिहाड़ जेल में अपने आठ महीनों में किरण डी. आई. जी. (जयदेव सारंगी) और चार अधीक्षकों (के. आर. किशोर, डी. पी. द्विवेदी, पी. आर. मीणा और तरसेम कुमार) के साथ दोपहर का भोजन करतीं। इस समय सब मिलकर सुबह के दौरे के दौरान देखी-सुनी समस्याओं पर चर्चा करते, विशेष समस्याओं पर विशेष ध्यान देते और उन्हें हल करने की रणनीति तय करते। इस तरह की सहभागिता कई प्रकार की दूरियों को समाप्त करती और इससे काफ़ी समय भी बच पाता था। अब सबको पता चल गया था कि तिहाड़ में मुख्यालय और कर्मचारीगण एक टीम के रूप में काम कर रहे हैं। इस प्रकार निचली श्रेणी के कर्मियों के लिए स्थिति का फ़ायदा उठाने के मौके न रहे। इस तरह पहली बार ऐसा होने लगा कि मुख्यालय ऐसे संवेदनाशून्य, अबोध्य और अव्यावहारिक आदेश जारी नहीं कर रहा था जिनका पालन करना केवल काग़ज़ों पर ही संभव होता है।

पहले भी अनेक आई. जी. दो पदों का कार्यभार संभालते रहे हैं और जेलों के काम में रुचि लेना उन्हें अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल लगता रहा है। वे अपने अधीक्षकों को सुझाव देते थे कि आई. जी. को अनुपस्थित ही मान लें और जेल का काम इस तरह चलाएं जैसे आई. जी. के कहीं और होने पर चलाते। इसका मतलब यह था कि इस पद से सत्ता तो जुड़ी थी मगर ज़िम्मेदारी और जवाबदेही की भावना नहीं। जेल को कभी भी स्नेह-सहानुभूति और सहयोग से पूर्ण नेतृत्व का लाभ नहीं मिला था। दोपहर को इकट्ठे भोजन करने का चलन कई रूपों में सचमुच फायदेमंद सिद्ध हुआ। पुराने वार्डरों और सहकारी वार्डरों के गुट की कारगुज़ारियों पर रोक लग गई। अब उन्हें आदेश मिल रहे थे कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है, और वे समझ गए थे कि अब जेल में प्रभावशाली नेतृत्व आ गया है।

याचिकाओं, वास्तविक अवलोकन और प्रत्यक्ष नज़र आने वाली स्थितियों के माध्यम से मुख्यालय की टीम और अधीक्षक अवर कर्मचारियों के निकट कार्य और व्यवहार का मूल्यांकन करते थे। अपनी-अपनी क्षमता प्रमाणित करने के लिए हर एक को यथेष्ट मौका दिया गया था। जो कर्मी अपनी पुराने तौर-तरीके बदलने को तैयार न थे उन्हें जेल के बाहर सुरक्षा कार्य दे दिया गया ताकि कैदियों से उनका कोई संपर्क न रहे। कुछ कर्मियों को कोई भी काम नहीं सौंपा गया। उनके बग़ैर जेल का काम और अच्छी तरह चल रहा था। लेकिन किसी भी बात को अंतिम मानकर नहीं चला जाता। अगर कोई व्यक्ति अपनी क्षमता प्रमाणित कर देता तो ठीक, अगर नहीं तो उसे जेल में अस्वीकार्य व्यक्ति घोषित कर दिया जाता था। ऐसा व्यक्ति दूसरों की नज़रों में गिर जाता और उसके साथ किया गया व्यवहार औरों के लिए एक उदाहरण बन जाता। कर्मचारियों के काम में बार-बार अदला-बदली की जाती ताकि पहले से स्थापित उनका एकाधिकार टूट जाए। लेकिन ऐसा निरंतर सतर्क निगरानी और तालमेल से ही संभव हुआ। इस प्रयास में जेल में अतिरिक्त समय तक अतिरिक्त काम भी करना पड़ता, लेकिन इसका कुल परिणाम अपने-आप में एक पुरस्कार था।

धीरे-धीरे आदेश और ब्यौरों संबंधी इन बैठकों में वार्डरों को भी बुलाया जाने लगा। उनकी प्रतिक्रिया सकारात्मक थी और उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे ज़िम्मेदार भी हैं। यदि अपनी-अपनी जेलों में वे योग-कक्षाओं, या प्रार्थना-सभाओं या फिर खेलों का आयोजन करते तो उनका नाम मुख्यालय और उनकी अपनी जेल के नोटिस बोर्डों पर लिखा जाता। नोटिस बोर्ड पर नामों के प्रदर्शन की वजह से वार्डरों में कुछ प्रतिस्पर्धा की भावना भी आ गई और कोई अच्छा काम करने पर उन्हें जहां संतोष का अनुभव होता वहीं पूरी जेल को फ़ायदा भी होता।

इस नए शासन के अंतर्गत जब बहुत-से सुधार किए जा रहे थे और जेल कर्मियों के विचार और धारणाओं को उन्हें समझा-बुझाकर बदला जा रहा था तब भी लोगों की पुरानी आदतें पूरी तरह से छूटी न थीं। तिहाड़ में कैद एक ब्रितानी लड़की ने अपने माता-पिता को इंग्लैड एक ख़त लिखा था कि उसने एक महिला वार्डर से अपनी जान-पहचान वालों से मुलाकात के अपने हक के बारे में मदद मांगी तो उससे कहा गया कि कुछ पाने के लिए कुछ देना भी पड़ता है। उसकी बात तभी मानी जाएगी जब वह यौन संबंध के लिए तैयार होगी। लड़की के माता-

पिता ने आई. जी. (पी.) को ख़त लिखा। वह महिला वार्डर एक होमगार्ड थी। जांच के बाद उसे तुरंत सेवामुक्त कर दिया गया। वार्षिक पुनरीक्षण के दौरान किरण ने अपने कर्मचारियों को इस घटना के बारे में बताया और समझाया कि जब ऐसे लोगों को ज़िम्मेदारी सौंप दी जाती है जो न तो प्रशिक्षित होते हैं, न इस प्रकार की सेवा के प्रति उनमें रुझान होता है, तब ऐसी ही घटनाएं होते हैं, न इस प्रकार की सेवा के प्रति उनमें रुझान होता है, तब ऐसी ही घटनाएं घटती हैं। वर्तमान जेल-संस्कृति के मद्देनज़र यह अधिक अच्छा होगा कि जेलकर्मी अपने घर की महिलाओं को इस प्रकार की नौकरी में आने के लिए प्रेरित करें।

इतने सद्भावपूर्ण नेतृत्व के रहते अगर तिहाड़ में पुरानी आदतें बदलने में इतना समय लग रहा था तो ज़रा सोचिए, इससे पहले पूरी व्यवस्था की क्या हालत रही होगी जब उच्च अधिकारियों ने इसे अपने ही हाल पर छोड़ रखा था।

एक विदेशी संवाददाता ने किरण को घर पर फोन करके एन. डी. पी. एस. अधिनियम के तहत बहुत ही लंबे समय से हवालात में बंद उन विदेशियों के बारे में पूछा था जो अभी तक मुकदमे की राह ही देख रहे थे। किरण ने उत्तर दिया कि वे कितने समय तक जेल में रहते हैं इसका फ़ैसला किरण के हाथ में नहीं हैं, लेकिन जब तक वे बंदी हैं तब तक उनका समय बेहतर बीते इसकी व्यवस्था वह कर सकती हैं। अब विदेशियों को कुछ विशेष छूट दी गई। अब वे एकसाथ एक ही वार्ड में रह सकते थे। उनके भोजन में भी थोड़ा सुधार हुआ, उन्हें विविध भाषाओं की पुस्तकें उपलब्ध करवाई गईं और वे अन्य विदेशी भाषाएं भी सीख सकते थे। उन्हें गिटार बजाने की अनुमति तथा और भी कुछ इसी तरह की सुविधाएं दी गईं। विदेशियों की भारत से भिन्न अपनी अलग संस्कृति होती है, और इन सुविधाओं के माध्यम से उनकी यातना थोड़ी कम हो जाती है। किरण आगे समझाती हैं कि जेल आख़िर बाहरी संसार का ही तो एक छोटा-सा अंश है इसलिए भारत की आम और औसत जीवन शैली का प्रतिबिंब इस छोटी-सी दुनिया में भी नज़र आएगा ही। इसलिए विदेशियों को इससे अधिक विशेष सुविधाओं की उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

हां, यह सच है कि तिहाड़ जेल भारत का ही एक लघु प्रतिरूप है। भारत में अधिकांश महिलाओं की स्थिति बहुत ही करुण है। उन्हें किसी प्रकार के भी अधिकार नहीं के बराबर हैं। उनकी स्थिति ऐसी संपत्ति जैसी है जिसे किसी तरह से बर्दाश्त किया जाता है और जो पिता से पति को मिलती है, और फिर पुत्र को। इनमें से किसी भी चरण पर अगर वह दख़लअंदाजी करती नज़र आती है या औरों को बोझा प्रतीत होती है तो उसका जीवन नरक बना दिया जाता है। जो अभागी औरतें जेल में पहुंच जाती हैं उनमें से अधिकांश अशिक्षित, दब्बू और अपनी तकदीर के प्रति उदासीन होती हैं। जेल में भी, उन्हें अपने कानूनी या कारावास संबंधी अधिकारों की तकनीकी बारीकियों का ज़रा भी ज्ञान नहीं होती। वकील उनका मुकदमा बड़ी तत्परता से ले लेते हैं ओर वे भी वकीलों के हाथों में ही सारा मामला सौंपकर बैठी रहती हैं। वकील बीच-बीच में उनसे पैसे भी ऐंठते रहते हैं पर फिर भी वे वर्षों बिना मुकदमे के जेल में ही सड़ती रहती हैं। कई औरतों ने तो इस लंबे अर्से से एक बार भी अदालत की सूरत तक नहीं

देखी होती है।

जेल के कर्मचारियों के लिए ऐसी औरतें उनकी कामुकता को तृप्त करने का साधन बन जाती हैं। बाहरी दुनिया की उदासीनता यहां निर्दयता और क्रूरता में बदल जाती है। ये औरत जिस अनुपात में मानसिक यंत्रणा झेलती हैं, उसी अनुपात में ये जेल-कर्मचारियों के वश में आती जाती हैं। इन्हें शारीरिक दंड, सज़ा देकर सुधारने के लिए नहीं, वरन कर्मचारियों की परपीड़क भावना को संतुष्ट करने के लिए दिए जाते हैं। जेल की दीवारों के घेरे में इन पाशविक प्रवृत्तियों से खुलकर खेलने का मौका मिलता है और बलात्कार तो मानो यहां सबल का अधिकार ही बन गया है। भारी भीड़ के कारण तिहाड़ में आज भी हवालाती, सज़ायाफ़्ता और पक्की अपराधी औरतों तथा वेश्याओं को एक ही साथ रख दिया जाता है। आम बैरकों में क्षमता में चार गुना अधिक बंदी होते हैं। जो औरतें यहां लंबे समय से कैद हैं उन्होंने जेल-कर्मचारियों से साठगांठ कर ली है और सब पर अपना सिक्का चलाती हैं। हवालात में जो युवतियां कुछ दिनों, हफ़्तों या महीनों के लिए आती हैं, वे इनका मुख्य निशाना होती हैं। उन्हें तुरंत गुलाम बनाकर उनसे झाड़ू लगाने और कपड़े धोने-जैसे काम करवाए जाते हैं और लगातार दबाव डालकर उन्हें समलैंगिक संबंधों के लिए भी मजबूर किया जाता है।

अस्पताल में भी महिलाओं की कोई विशेष देखभाल नहीं होती थी। उन्हें पुरुष कैदियों से अलग नहीं रखा जाता था और उनका निरीक्षण-परीक्षण भी पुरुष डॉक्टर ही करते थे।

अगर औरतों के लिए संसार में कोई नरक है तो वह यहीं हैं।

एक भूतपूर्व अधीक्षक के बयान से जेल-कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के स्तर और कैदियों के साथ होने वाली ज़्यादतियों का पर्दाफ़ाश होता है।

कैदियों की देखभाल के लिए शाहदरा के मानसिक चिकित्सालय ने तिहाड़ जेल में एक शाखा खोली थी। इस शाखा में इलाज के लिए आने वाले मरीज़ों में अधिकतर औरतें थीं। मानसिक अस्पताल की इस शाखा में दाख़िल कुछ बदनसीब औरतों को शाम के समय जेल के बाहरी गेट पर आकर खड़े होने को मजबूर किया जाता। फिर सड़क से ला-लाकर ग्राहक जुटाए जाते जो जेल-कर्मचारियों को कीमत चुकाकर सलाखों के पार से हाथ बढ़ाकर इन औरतों के शरीर से खेलते। आपातकाल के तुरंत बाद संजय गांधी को इस जेल में रखा गया था। उनकी पत्नी मेनका गांधी उनसे मिलने यहां आती थीं। उन्होंने ही इस अश्लील कृत्य का पता लगाया और अपनी पत्रिका सूर्या में इसके बारे में लिखा।

इस तरह की स्थितियों ने एक अलग ही प्रकार के दिमाग़ी सांचे तैयार कर दिए थे। बहुत बड़ी संख्या में कैदी किसी भी तरह की उत्तेजना की प्रबल जरूरत महसूस करते थे। यह जरूरत शायद सिर्फ़ मादक पदार्थों से या फिर अस्वाभाविक यौन व्यवहार से ही संतुष्ट हो सकती थी। सहनशीलता का यहां नाम भी नहीं था और इस असामान्य स्थिति में व्यक्तियों या समाज के कुछ विशेष हिस्सों के प्रति घृणा और प्रतिशोध की भावना ही उपज सकती थी, या फिर हताशा की। लोगों की सोच संकीर्ण और हठीली बनती गई जिसकी वजह से दिल कठोर

और दिमाग़ भ्रष्ट हो चले। कैदी अपनी भावनाओं को समझने-संभालने की सारी क्षमता खो बैठे थे। इसका परिणाम हुआ- बार-बार होने वाली मारपीट, हिस्टीरिया और अवसाद।

तिहाड़ के हालात कुछ बेहद परेशान करने वाले सवाल उठाते हैं :

- जेल को सुधार-गृह होना चाहिए या सामाजिक प्रतिशोध का माध्यम है?
- क्या समाज को अपने सामूहिक अपराध को नज़रअंदाज़ करके एक व्यक्ति के अपराध पर फ़ैसला सुनाना चाहिए?
- कुछ शर्तों के साथ चालू व्यवस्था के अनुकरण से अपनी आत्मतृप्ति को क्या परस्पर व्यवहार तथा पारस्परिक सूझ जैसी मानवीय भावनाओं के ऊपर हावी होने देना चाहिए?
- क्या हमें इस कल्पकथा को मानते चले जाना चाहिए कि केवल अपराधों के दोषी व्यक्तियों को ही जेल काटनी चाहिए?
- क्या हमें इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि असामान्य निर्णय कठोर दिल और अपराधी दिमाग़ के सूचक हैं?
- वैधता की तलाश में क्या हमें किसी अन्य व्यक्ति के मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशून्य हो जाना चाहिए?

इन प्रश्नों के उत्तर मात्र सैद्धांतिक स्तर पर नहीं दिए जा सकते। इसके लिए इन प्रश्नों को जन्म देने वाली मानवीय स्थितियों को जीना और अनुभव करना होगा। इस अध्याय का शीर्षक- 'भय से मुक्ति'- पाठकों तक ऐसे ही अनुभव को पहुंचाने का प्रयास है।

मई 1993 के बाद के नाटकीय क्षणों को फिर से याद करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि तिहाड़ में परिवर्तन हालांकि बड़ी स्वत: स्फूर्ति और सहजता से आए थे किंतु उनमें स्पष्ट ही एक साफ़ दिखाई देने वाला पैटर्न था।

इसके पहले तिहाड़ जेल में जो स्थितियां थीं वे बड़ी अस्वस्थ मानसिकता को जन्म दे रही थीं जिससे अभागे बंदियों के दिमाग़ में अपराध-वृत्ति निरंतर बढ़ती जा रही थी। किसी भी प्रकार की रचनात्मक या सृजनात्मक गतिविधि का वहां अभाव था। माहौल भीड़-भरा और अस्वास्थ्यकर था। डॉक्टरी सहायता लगभग न के बराबर थी। अगर कभी किसी को कोई ज़िम्मेदारी सौंपी भी जाती तो उसके साथ जवाबदेही का भाव नदारद होता था। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि इस बेपनाह तकलीफ़ के प्रति किसी में भी संवेदनशीलता नज़र नहीं आती थी। शायद यही इस भयंकर दुर्दशा का मूल कारण था।

तिहाड़ को सुधारमूलक संस्थान बनाने के प्रयास में जो भी सुधार वहां किए गए हैं उनमें से अधिकतर सुधार बंदियों में अपराधी प्रवृत्तियों के निरंतर उन्मूलन में सफल हुए हैं। उनकी ऐंद्रिक उत्तेजना की जरूरत और इस जरूरत को पूरा करने के साधनों तक उनकी पहुंच लगभग पूरी तरह समाप्त कर दी गई हैं। उनमें से बहुसंख्यक बंदी कोई-न-कोई कौशल सीखने में व्यस्त हैं। क्रमश: उनमें निर्णय लेने की क्षमता विकसित होती जा रही है और इस प्रकार वे

अपनी ज़िम्मेदारियों के लिए जवाबदेह होने की स्थिति में आ गए हैं। जीवन के आधारभूत कौशल उपलब्ध होने के कारण उनमें से एक बड़ी संख्या को भविष्य कुछ आशाजनक नज़र आता है, और इन सबसे उन्हें अपनी भावनाओं पर अधिक नियंत्रण कर पाने में बहुत मदद मिलती है।

15

जेल में सुधार के हर संभव प्रयास

भारत की सबसे अधिक सुरक्षा-व्यवस्थावाली जेल, तिहाड़ जेल का परिसर 180 एकड़ में फैला हुआ है। इस परिसर में चार स्वतंत्र जेलें हैं। यह सारा इलाका ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है। इनकी निगरानी के लिए तमिलनाडु पुलिस के सशस्त्र रक्षा दल यहां नियुक्त हैं और ये पूरे घेरे में गश्त लगाते रहते हैं। ऊँची-ऊँची गुमटियों में कठोर पहरेदार जेल के प्रवेश और निकास मार्ग की ओर भयावने स्वचालित अस्त्र ताने खड़े रहते हैं। लोहे की सलाख़ों और भारी-भरकम तालोंवाले विराट लोहे के फाटक मानो अंदर बंद 8,500 से भी ज़्यादा व्यक्तियों के भाग्य को मुहरबंद किए खड़े हैं। इस दृश्य को देखकर मन में भय और संत्रास उत्पन्न होता है। यह आतंककारी दृश्य भीतर आने वालों को तमाम आशा त्यागकर निराशा में डूब जाने को बाध्य करता है।

लेकिन जेल की दीवारों के भीतर वातावरण एकदम बदल गया है। कैदियों की बैरक के भीतर जाते ही भजनों और गीतों के मधुर स्वर सुनाई पड़ते हैं। चारों तरफ़ लोगों के झुंड नियमित रूप से कक्षाओं में पढ़ाई करते नज़र आते हैं। हर बैरक का अपना अलग पुस्तकालय है जहां वहां के वासी समाचार पत्र, पत्रिकाएं या किताबें पढ़ते दिखाई देते हैं। हर व्यक्ति, जी हां, हर व्यक्ति कुछ-न-कुछ करने में व्यस्त है- कोई अध्ययन में जुटा दिखाई देगा तो कोई कसरत में, कोई योग का अभ्यास करता दिखाई देगा तो कोई टेलीविज़न सेट की मरम्मत, सिलाई-बुनाई या अन्य किसी गतिविधि में व्यस्त होगा। यह सब करते हुए बंदी तनाव या चिंता से ग्रस्त नज़र नहीं आते, बल्कि समाज के अन्य सदस्यों की ही तरह सामान्य भाव से अपने दैनिक कामकाज में लगे दिखाई देते हैं। हवालातियों के रूप में बरसों मुकदमे का इंतज़ार कर रहे कैदियों में इतना लंबा दौर जेल में बिताने को लेकर शिकायतें और कुंठाएं अवश्य हैं, लेकिन इस समय के उचित उपयोग से वे संतुष्ट हैं।

इस धरती को नरक बनाने के लिए जो कुछ भी चाहिए, सब तिहाड़ जेल में मौजूद था- प्रशासन में चरम सीमा का भ्रष्टाचार, नज़रबंदी शिविरों- जैसी बर्बरता, कैदियों के बीच बड़ी कुशलता से सक्रिय माफिया, चिकित्साकर्मियों द्वारा बेईमानी, मादक द्रव्यों का धड़ल्ले से मिलना, कैदियों और जेलकर्मियों, दोनों के द्वारा विकृत यौनाचार, लूट-खसोट, ब्लैकमेल और अस्वास्थ्यकर परिवेश।

जेल नंबर 4 के उपअधीक्षक सुनील गुप्ता गत 12 वर्षों से अधिक समय से तिहाड़ में कार्यरत हैं। तिहाड़ के अतीत के बारे में वह स्पष्ट कहते हैं :

यहां का वातावरण ही अपराध-वृत्ति का पोषण करता था। हल्के या छोटे-मोटे अपराध करके आए कैदियों को पुराने, पक्के मुजरिम सिखा-पढ़ा लेते थे। बहुत सारे गिरोहों के लिए भर्ती यहीं

होती थी। दरअसल लूट-खसोट, ज़बरन धन वसूली, ब्लैकमेल, फिरौती के लिए अपहरण और हत्या आदि अपराधों के द्वारा उत्तरप्रदेश के मेरठ, ग़ाज़ियाबाद और बुलंदशहर जिलों में भारी आतंक फैला देने वाले त्यागी और मनजीत के गिरोह यहीं पर गठित हुए थे। कोई इस बात को रोकने का प्रयास भी नहीं करता था क्योंकि एक तो उन अपराधियों का आतंक बड़ा प्रबल था और ऊपर से (जेल का) नेतृत्व भी दिशाहीन था। जेल हमारे नहीं बल्कि पक्के मुजरिमों के आदेशों से चलती थी।

गुप्त के इस बयान की पुष्टि एक स्पष्टवक्ता, लंबा अश्वेत अमरीकी विल्फ्रेड करता है। वह लगभग साढ़े-सात वर्ष से अपने मुकदमे की राह देख रहा है। उसका कहना है :

गिरोहों के ये सदस्य जब चिकित्सा अधिकारी के पास जाते तो वहां डिप्टी जेलर और दूसरे जेल-कर्मचारी भी मौजूद होते थे। उन सबकी परवाह किए बग़ैर ये कतार में दवाओं के लिए खड़े कैदियों को निकल जाने का आदेश दे देते, और फिर जो भी जितनी भी दवा ये चाहते ले लेते थे- अधिकतर डाइजेपैम ही लेते थे और कोई भी न कुछ करता, न इन्हें कुछ कहता।

जेल के पूर्व अधीक्षक जगदीश प्रसाद नैथानी पुरानी बातें याद करते हुए इस स्थिति के कारण बताने की कोशिश करते हैं:

जेलों में हमेशा दो प्रकार के कैदी होते हैं- एक तो वे जिनके पास सब कुछ होता है, दूसरे वे जिनके पास कुछ नहीं होता। तिहाड़ में पहली श्रेणी के कुछ कैदी इतने जोरदार अपराधी थे कि जेल में रहते हुए भी वे बाहर अपना प्रभाव और रौबदाब बनाए रखते थे। धन और शारीरिक बल के बूते पर वे सबको डराए रखते थे, यहां तक कि जेल-कर्मचारियों को भी। भय के कारण और आसानी से मिलने वाले धन के लोभ में जेल-कर्मचारी हर गड़बड़ी के नज़रअंदाज़ कर देते थे। इसके अलावा छोटी-सी जगह में इतने अधिक कैदी भरे रहते थे कि उनमें आपसी संपर्क बहुत अधिक होता था। यही कारण है कि जेल में इतने अधिक अपराध होते थे और उनके बारे में कभी भी कोई औपचारिक शिकायत दर्ज नहीं करवाई जाती थी। 1979-80 तक तिहाड़ का प्रशासन ज़िला पुलिस कमिश्नर की ही अतिरिक्त ज़िम्मेदारी होती था। जेलकर्मियों की नियुक्ति पंजाब और हरियाणा पुलिस के कर्मचारियों में से की जाती थी। जेल में कर्मचारियों की संख्या बहुत ही अपर्याप्त थी। इनमें से भी अधिक संख्या वार्डनों तथा सहायक वार्डनों की होती थी। विभागों के बीच मारक प्रतिस्पर्धा तथा ईर्ष्या का वातावरण रहता था जिसका असर प्रशासन की गुणवत्ता पर पड़ता था। देश के अन्य राज्यों की जेलों के मुकाबले इस जेल के प्रशासन पर न्यायपालिका का बहुत प्रभाव रहता था। कर्मचारियों द्वारा नियमों तथा कर्तव्य के उल्लंघन की सज़ाओं पर निचली अदालतों में विचार होता था, जहां मामले अनंत काल तक लटके रहते थे। कैदी उस स्थिति का भरपूर लाभ उठाते हुए जेल-कर्मचारियों पर झूठे इलज़ाम लगाते रहते। फलस्वरूप उन कर्मचारियों का सारा समय कचहरियों में निराधार तथा झूठे आरोपों से अपना बचाव करने में बर्बाद होता रहता था। कर्मचारियों के पास बदला लेने का एक ही हथियार था और वह यह कि वे जेल के भीतर यथासंभव अमानुषिक और अप्रीतिकर वातावरण बनाए रखें।

दिल्ली विश्वविद्यालय की एक नाइजीरियाई छात्रा एनी पांच साल पहले की उन घटनाओं को याद करके सिहर उठती है जब वह पहले-पहल यहां लाई गई थी। वह बताती है:

जब मैं यहां आई तो मैं मरना चाहती थी। हालात बेहद ख़राब थे। कुछ कैदी पागल लगे, और हमें एक ही साथ रखा जाता था। हमें बराबर पीटा जाता था। मुझे हिंदी नहीं आती इसलिए मैं उनकी बात का उत्तर नहीं दे पाती थी। इसी बात पर मुझे सज़ा दी-जाती थी।

मुझे बहुत शर्म आती। मैं खुद से प्रश्न करती- मैं यहां क्या कर रही हूं?

जेल सेवा के भूपिन्दर सिंह जरियाल तब जेल नंबर 3 के उप-अधीक्षक थे। उनके अनुसार पहले के वरिष्ठ अधिकारियों को जेल के कामों में बिलकुल दिलचस्पी नहीं थी इसीलिए उस समय जेल के हालात इतने ख़राब थे। वह कहते हैं:

इस विभाग की त्रासदी यही रही है कि कभी किसी ने नेतृत्व ही नहीं किया। कारागार राज्य-सूची का विषय होता है और हर राज्य को इसके प्रबंधन के लिए एक अलग सेवा गठित करनी चाहिए। तकनीकी विशेषज्ञों की मदद के बिना कोई भी व्यवस्था नहीं चल सकती। यह ऐसा काम नहीं है जिसे हर कोई चला ले। इसके लिए पहले एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति, एक ख़ास तरह की व्यवहार-रीति विकसित करनी पड़ती है।

30 अक्टूबर, 1966 तक तिहाड़ पंजाब और हरियाणा सरकार के प्रशासनाधीन था। इस दिन से दिल्ली प्रशासन ने इसका कार्यभार संभाला था। लेकिन 1981 तक वही पुरानी कामचलाऊ नीतियां ही जारी रहीं- कुछ अधिकारी पंजाब और हरियाणा से और कुछ दिल्ली प्रशासन से मिल-जुलकर इसका काम संभालते थे। अपने ही सेवाकाल के दौरान मैंने लगभग 18 आई. जी. (जेल) और इतने ही अधीक्षकों को देखा है। इस प्रकार नौ महीने प्रति व्यक्ति से अधिक का औसत नहीं निकलता है। वे लोग यहां अगली पदोन्नति तक ही टिकते थे और सिर्फ़ वक्त गुजारने के लिए यहां आते थे, इसलिए इस कार्य के प्रति अपेक्षित अभिवृत्ति का उनमें अभाव था।

तिहाड़ मुख्यालय में वर्तमान डी. आई. जी. जयदेव सारंगी तिहाड़ जेल में 1987 से 1990 तक जेल नंबर 1 के अधीक्षक थे। वह दिल्ली और अंडमान सिविल सेवा (ग़ैर-पुलिस) से हैं। उन्होंने उस समय के हालात पर इन शब्दों में प्रकाश डाला:

उस समय हर जेल के संचालन की पूरी ज़िम्मेदारी अधीक्षक पर ही होती थी। आई जी या डी. आई. जी. का प्रशासन के मामले में जेल से किसी भी प्रकार का पारस्परिक संपर्क न था। वे कभी भी जेल के अंदर आकर यह नहीं देखते थे कि काम कैसा चल रहा है। लेकिन वित्तीय मामले वे अपने ही हाथों में रखते थे। 8,000 कैदियों के राशन का ज़िम्मा उन्हीं के हाथों में था। लेकिन वे कभी भी यह देखने का कष्ट नहीं करते थे कि कैदियों को क्या, कितना और कैसा मिल रहा है।

जेल-कर्मचारियों के लिए भ्रष्टाचार के अनेक मौके थे। उदाहरण के लिए, कारावास नियमावली के अनुसार हमें हर कैदी को तीन-तीन कंबल देने होते हैं। लेकिन ताकतवर और

अमीर कैदी घूस देकर आसानी से अधिक कंबल ले लेते थे। हर जेल को चूंकि एक निश्चित संख्या में ही कंबल दिए जाते थे इसलिए इसका खामियाजा कमज़ोर और गरीब कैदियों को भुगतना पड़ता था। कभी-कभी तो उन्हें एक भी कंबल नहीं मिलता था। घूस की रकम बढ़ा दी जाए तो बाहर से रज़ाइयां भी मंगवाई जा सकती थीं। सुरक्षा की दृष्टि से ये रज़ाइयां बड़ी समस्या खड़ी कर सकती थीं क्योंकि इनमें नशीले पदार्थों से लेकर हथियार तक ऐसे छिपाए जा सकते थे कि किसी को पता भी न चले। मैंने सारी रज़ाइयां ज़ब्त करवा लीं और सारे कंबल वापस लेकर, गिनवाकर तीन कंबल प्रति कैदी के हिसाब से फिर से उनमें बंटवा दिए। समय-समय पर जांच करके नियम तोड़नेवालों को सज़ा भी दी जाने लगी।

उन दिनों तिहाड़ में शिकायत करने या सुझाव देने की कोई व्यवस्था न थी। ऐसी एक व्यवस्था शुरू की गई पर वह आज जैसी न होकर 'लचर' थी। शिकायत करने वाले का साक्षात्कार लिया जाता था। बहुत-सारी शिकायतें और जेलकर्मियों द्वारा रुपये ऐंठने और भ्रष्टाचार से संबद्ध होती थीं। यहां भी कोई कैदी घूस देकर मनचाही जेल में अपना तबादला करवा सकता था। इसके लिए उसके पास कारण भी अनेक होते थे। दूसरी जेलों के अधीक्षकों को भी सुझाव भेजा गया कि हर जेल में कैदियों का वितरण उनके नाम के वर्णानुक्रम के अनुसार हो। इस सुझाव को मानकर इसे नियमों में शामिल कर लिया गया।

ये सब कर्मचारियों के भ्रष्टाचार के ज़रिए थे। इसलिए ये परिवर्तन नहीं चाहते थे और, ज़ाहिर है, इसलिए वे काफ़ी नाराज़ भी थे। एक उप-अधीक्षक ने बदला लेने की योजना बनाई। उसने मेरे विरुद्ध शिकायत लिखवाकर अनेक कैदियों से उस पर हस्ताक्षर करवा लिए। कहने को यह शिकायत एक कैदी ने लिखी थी। पर योजना का आभास मिलते ही हम सतर्क हो गए थे और किसी तरह हमें काग़ज़ के वे टुकड़े मिल गए जिन्हें जोड़ने से पता चला कि यह कथित रूप से उस कैदी द्वारा लिखे गए पत्र का मसविदा था, मगर उपअधीक्षक की लिखावट में।

उन फटे काग़ज़ों को जोड़कर उस पत्र की फोटो-प्रति मैंने उपराज्यपाल के दफ़्तर में इस सूचना के साथ भिजवा दी कि जल्दी ही उन्हें जेल से मेरे ख़िलाफ शिकायतों का एक पत्र मिलेगा। ऐसा पत्र उन्हें मिला भी। उस व्यक्ति के विरुद्ध अभी तक सतर्कता विभाग की जांच चल रही है।

ज़ाहिर है, तिहाड़ में ऐसे अधिकारी भी आते रहे हैं तो अपनी अंतरात्मा की आवाज़ सुनते हैं और काम ठीक से करने की कोशिश करते हैं। लेकिन महत्त्वाकांक्षा से रहित और उत्साहहीन नेतृत्व के कारण व्यवस्था उनसे कहीं अधिक शक्तिशाली प्रमाणित होती रही है।

तिहाड़ मुख्यालय में डी. आई. जी. के रूप में जयदेव सारंगी निचली श्रेणी के कर्मचारियों को अपना बीमा करवाने के लिए मना लेने में सफल हुए हैं। 'सारंगी योजना' के नाम से जानी जाने वाली इस योजना के तहत बीमार कराने वाले व्यक्ति को हर महीने चार या पांच रुपये की किस्त भरनी पड़ती थी और उसकी मृत्यु पर उसके परिवार को एक लाख रुपये मिल जाते। शुरू-शुरू में अधिकतर कर्मचारियों ने इस योजना का विरोध किया किंतु तब दो सिपाहियों के परिवार को एक-एक लाख रुपये मिले तो अब हर कोई बीमा करवाना चाहता है, और इससे दुगुनी रकम

का।

16

तिहाड□ कैदियों को मिला स्वर

तिहाड़ जेल में केवल 2,500 लोगों के रहने की जगह है लेकिन उतनी जगह में 8,500 से अधिक लोग ठुंसे रहते हैं। एक अधीक्षक के अनुसार, ''इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो है मादक द्रव्य (एन.डी.पी.एस.) संबंधी अधिनियम जिसके तहत बहुत ज्यादा गिरफ़्तारियां होती हैं और जो गैर-जमानती अपराध है और इस अधिनियम के तहत पूरे-के-पूरे परिवारों को कभी-कभी तो बच्चों सहित गिरफ़्तार करके यहां बंद कर दिया जाता है।''

1985 का एन.डी.पी.एस. अधिनियम और 1988 में इसमें किया गया संशोधन मानवाधिकार के निर्देशों का सीधे उल्लंघन करता है। इस अधिनियम के अंतर्गत मुकदमे की राह देख रहे, 1,200 कैदियों के (जिनमें से कई तो पांच साल से भी अधिक समय से जेल में हैं) सर्वेक्षण से पता चला है कि इनमें से लगभग 90 प्रतिशत कैदी ऐसे हैं जिनके पास नशीली दवाएं बहुत ही कम मात्रा में मिली थीं या जो बहुत ही छोटे फेरीवाले थे। इन छोटे-मोटे धंधेवालों को गिरफ़्तार करके जेल में डालने से नशीली दवाओं के व्यापार की मुख्य धारा में कोई अंतर नहीं पड़ता है क्योंकि इन लोगों के विकल्प बड़ी आसानी से मिल जाते हैं, कम-से-कम दिखाई तो ऐसा ही देता है। एक चौंकाने वाला तथ्य यह भी है कि इनकी गिरफ़्तारी से किसी भी ऐसे आपराधिक षड्यंत्र का पता नहीं चला जो राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैला हो।

इसके अलावा किसी व्यक्ति के पास चाहे कितनी भी कम मात्रा में नशीली दवाएं मिली हों, उसके मामले की सुनवाई सिर्फ़ सत्र अदालत के स्तर पर ही हो सकती है, सब-डिवीज़नल अदालत के स्तर पर नहीं। सत्र अदालत पहले ही विचाराधीन मुकदमों से ठसाठस भरी होती है, एन.डी.पी.एस. के मामले आने से उसका बोझ और बढ़ जाता है। इनमें से भी अधिकतर गिरफ़्तारियां दो से दस ग्राम तक अवैध पदार्थ के साथ पकड़े जाने के कारण होती है।

आइए, कुछ-एक व्यक्तियों के मामलों पर गौर करें।

पचपन-वर्षीय सुखा कोई साढ़े-चार साल से एन.डी.पी.एस. के मामले में मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहा है। उसके अनुसार घटनाक्रम इस प्रकार है :

> मैं रोजी कमाने के लिए कनाट प्लेस की सड़कों पर जूते पॉलिश किया करता था। बड़े-बड़े साहब लोग मुझसे अपने जूतों पर पॉलिश करवाया करते थे। मैं दिन-भर काम करता था और शाम को दो रुपयों की चरस ले लेता था। मेरी बस्ती में बहुत-से ऐसे लोग हैं जो रोज़ शराब पीकर अपनी औरत और बच्चों को पीटते हैं। उनका कुछ नहीं बिगड़ता। वे

समाज का कोई नुकसान नहीं करते, पर मैं करता हूं। मुझ-जैसे लोगों के लिए न्याय कहां हैं? किलोग्राम और क्विंटल के हिसाब से चरस बेचने वालों को कोई नहीं पूछता। वे सब तो मौज करते हैं।

राजकुमार (नाम बदल दिया गया है) साढ़े-छः साल से एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत मुकदमे के इंतजार में बैठा है। ऊपर से शांत और मजबूत लगने वाला राजकुमार भीतर से सुलग रहा है वह अपनी कहानी सुनाता है:

मैं कुछ वर्षो से दिल्ली में व्यापार कर रहा था। एक लड़की से मेरी मित्रता थी। बाद में मुझे पता चला कि उसकी बहन मध्य पूर्व से भारत में मादक पदार्थ आयात करने वाले एक गिरोह से जुड़ी थी। मैंने उसे सुधारने की बचकानी कोशिश में एक दिन उसका पर्दाफ़ाश करने की धमकी दे दी।

11 मार्च, 1988 को कुछ लोग इस लड़की रीटा के साथ मेरे घर आए। मैंने सोचा कि वह अपने गिरोह के सदस्यों को साथ लाई है इसलिए जान से मार डाले जाने या मिटने से बचने के लिए मैंने उससे कह दिया कि मैं पहले ही खुफ़िया विभाग को उसके बारे में बता चुका हूं। मुझे घसीटकर बाहर खड़ी गाड़ी में डाल दिया गया। थाने पहुंचकर ही मुझे पता चला कि मेरा अपहरण करने वाले लोग पुलिस के सिपाही थे। वहां मुझसे पूछा गया कि गिरोह के बारे में खुफिया सेवा में मैंने किसे जानकारी दी है। मेरा झूठ ज्यादा न चल पाया। थानेदार हुकुम सिंह (छद्म नाम) रीटा के साथ बाहर चला गया और एक घंटे बाद कुछ लोगों के साथ लौट आया। उनमें से दो लोग अफ़ग़ानी लग रहे थे। उनके साथ दो हिंदुस्तानी आदमी और एक हिंदुस्तानी औरत भी थी। लगभग डेढ़ घंटे तक वे कुछ दूरी पर खड़े बातें करते रहे। उनकी बातें मुझे सुनाई नहीं दे रही थीं। फिर वे लोग वहां एक ब्रीफकेस छोड़कर चले गए। रीटा ने हुकुम सिंह को ब्रीफकेस की चाबी दी। उसने ब्रीफकेस खोला और घोषणा कर दी कि मैं हेरोइन ले जा रहा था और वह भी पूरी दस किलोग्राम। रात को मुझे बुरी तरह से पीटा गया और जब मेरी सहनशक्ति चुक गई तो हिंदी और अंग्रेज़ी में लिखे कुछ काग़जों पर मुझसे दस्तख़त करवा लिए गए।

अपने दैनिक फिटनेस क्रियाकलाप के दौरान किरण

गुड□गांव में अपने पारिवारिक फार्म हाउस पर किरण

पोस्ता के गुलदस्ते के साथ। चकराता तहसील में अवैध पोस्ता की खेती रोकते हुए सुश्री बेदी

कनॉट प्लेस, नई दिल्ली में जूता पॉलिश करने वालों की परेशानी सुनती किरण बेदी।

फिलीस्तीन के तत्कालीन राष्ट्रपति फीदेल रामोस से मैग्सेसे पुरस्कार लेती हुई किरण बेदी पुलिस अकादमी,

पुलिस अकादमी, मनीला में गार्ड ऑफ ऑनर का निरीक्षण करती किरण

मनीला से वापस तिहाड□ में जश्न मनाते हुए

तिहाड□ जेल की बुरी स्थिति (अपनी क्षमता से चार गुना व्यक्तियों के रहने का प्रबन्ध)
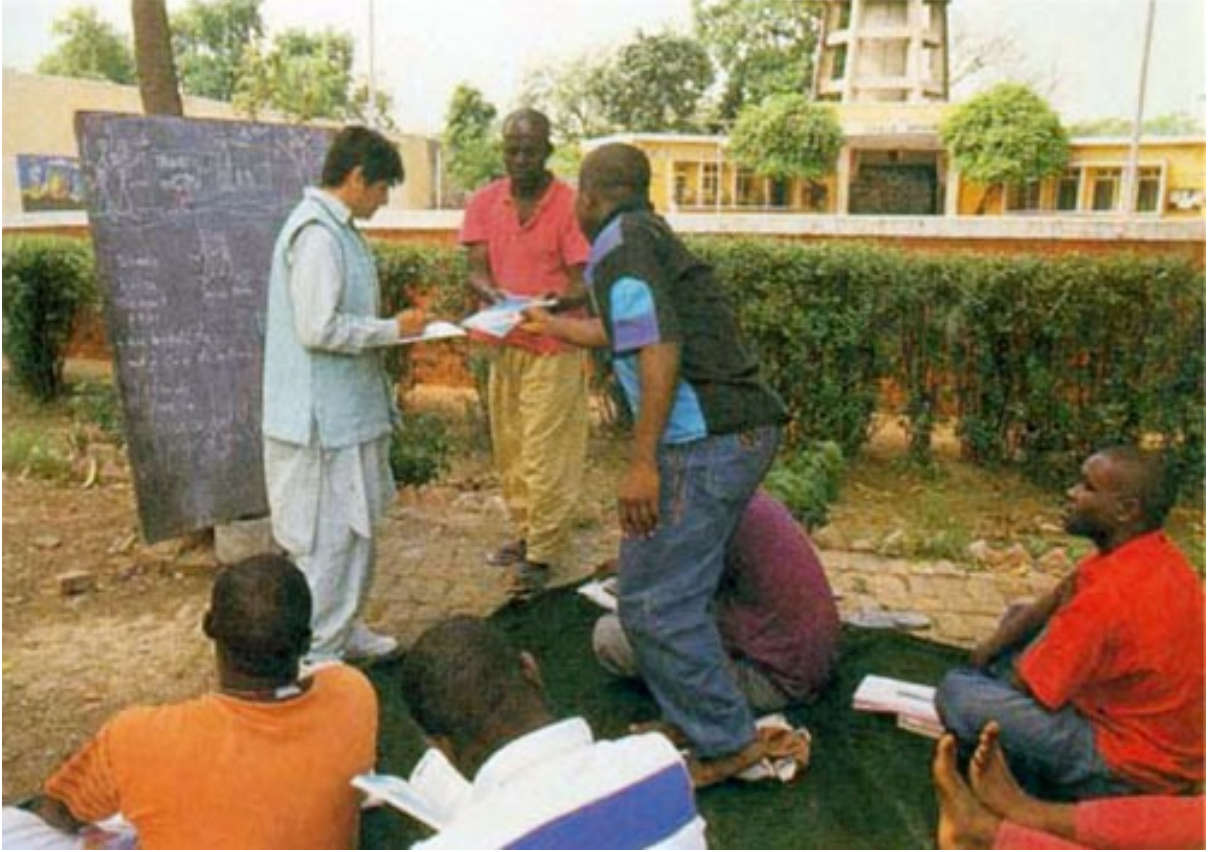
तिहाड□ जेल में फ्रेंच कक्षा का आयोजन

तिहाड□ जेल में फारसी कक्षा प्रगति
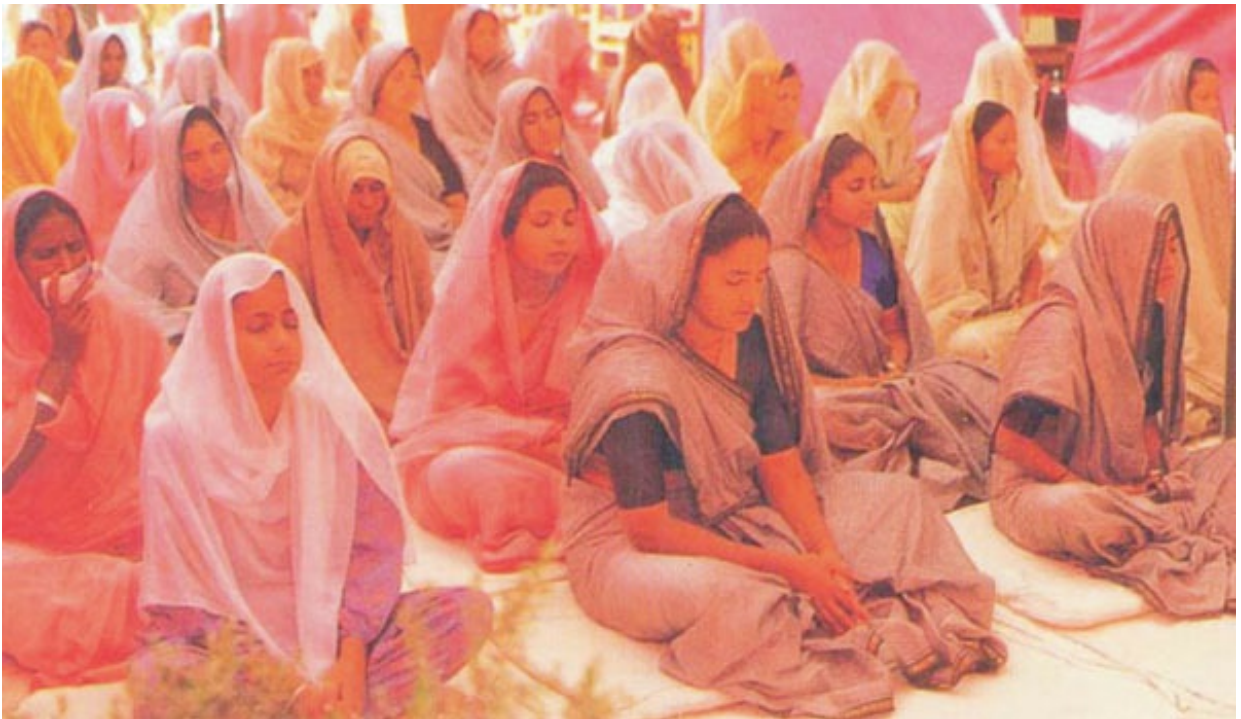
तिहाड□ जेल में विपश्यना शिविर
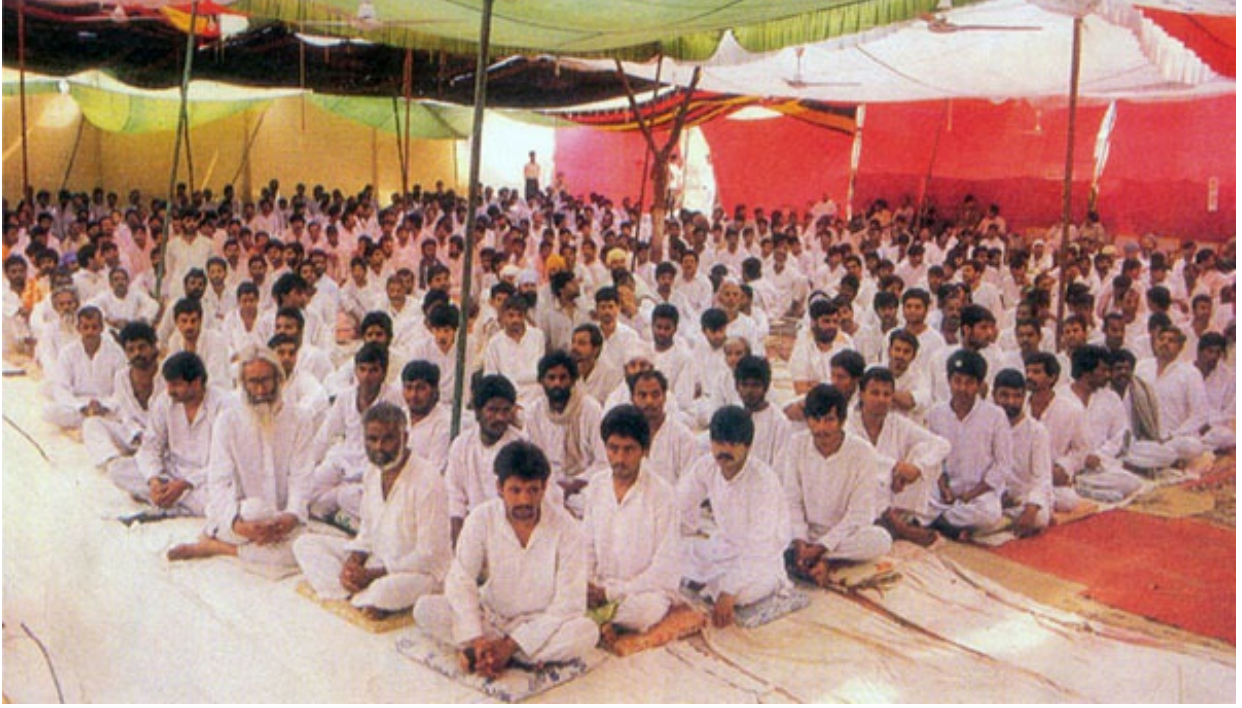
एक साथ हजार से अधिक संख्या में कैदी विपश्यना करते हुए

जेल में चल रहे समारोह को कैदियों के समूह के बीच बैठकर देखते हुए

विदेशी कैदियों को एक बेहतर जीवन देने हेतु धन्यवाद स्वीकार करते हुए

अगले दिन वे मुझे कचहरी ले गए और वहां मौजूद मजिस्ट्रेट के आगे उन्होंने मेरी तथाकथित स्वीकारोक्ति पेश कर दी। वहां उन्होंने बयान दिया कि हुकुम सिंह को सूचना मिली थी कि मैं हेरोइन ला रहा हूं और मेरा गुप्त कोड होगा 'ब्लैक रोज'। इस तरह मुझे थाने के निकट ही गिरफ्तार कर लिया गया था। यह कहा गया कि मेरे पास दस करोड़ रुपयों की हेरोइन थी तो पुलिस को क्या यह मालूम करने की जरूरत तक महसूस नहीं हुई कि मेरा संपर्क-सूत्र कौन है? जेल भेज देने के बाद पुलिस ने मुझसे कोई सवाल नहीं पूछा कि मैं इतनी सारी हेरोइन कहां से लाया और किसे देने ले जा रहा था। क्या उन्होंने यह सोच लिया था कि पूरे बाज़ार में बस यही दस करोड़ रुपयों की हेरोइन थी और मुझे पकड़कर उन्होंने पूरे-के-पूरे अवैध व्यवसाय को खत्म कर दिया है? मुझे सबसे अधिक तकलीफ़ इस बात की है कि साढ़े-छः साल के बाद भी किसी मजिस्ट्रेट ने तहकीकात करने वाले अधिकारी इंस्पेक्टर हुकुम सिंह से पूछने की जहमत ही नहीं उठाई कि मुझसे बाकायदा पूछताछ क्यों नहीं की गई जिससे मेरे तथाकथित गिरोह का पता चल सकता है और उसे पकड़ा जा सकता। ज़ाहिर है कि हुकुम सिंह को मध्यपूर्व के उस गिरोह से पैसा मिलता है।

पुलिस का एक सब-इंस्पेक्टर भी कुछ समय हमारे साथ तिहाड़ में बंद रहा था। उसी ने मुझे

बताया था कि मेरा मामला कभी नहीं निपटेगा क्योंकि हुकुम सिंह की पुलिस और न्यायपालिका, दोनों में बहुत जबरदस्त पहुंच है। उसके पास शायद ग्रीन कार्ड भी है और अमरीका में उसकी करोड़ों की संपत्ति है। यह बात सही लगती है। मैंने अपने मामले को लेकर बहुत-से अधिकारियों को पत्र लिखे हैं जिनमें इस सब-इंस्पेक्टर वाली बात भी कही गई है, लेकिन आज तक किसी ने मेरी शिकायत नहीं सुनी है।

दिसंबर 1993 में भारत के राष्ट्रपति ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत रुके मामलों को शीघ्र निबटाने के लिए दस विशेष अदालतों के गठन की मंजूरी दे दी थी। उस आदेश के अनुसार 12 दिसंबर, 1994 तक सब मामलों को निबट जाना चाहिए था। आज तक मुकदमों को जल्दी निबटाने की बात को लेकर तर्क-वितर्क और बहसें ही चल रही हैं।

साढ़े-चार साल से हवालात में बंद एक ऐंग्लो-इंडियन महिला बताती है, ''चिकित्सा सुविधाएं बहुत ही ख़राब थीं। कैदी तड़पते थे और डॉक्टर को आने में घंटों लग जाते थे।'' वह आगे बताती हैं :

> मुझे याद है हमें पढ़ने को किताबें तक नहीं मिलती थीं। हममें से कुछ के पास किताबें थीं जिनमें से कुछ तो काफ़ी महंगी थीं। कुछ पत्रिकाएं भी थीं। इनके सहारे हमारा कुछ वक्त कट जाता था लेकिन एक दिन अधीक्षक ने तलाशी का आदेश दिया और सारी किताबें और पत्रिकाएं हमसे छीन ली गईं। जब हमने अपनी किताबों को बाहर वर्षा में भीगते-सड़ते देखा तो हमें रुलाई आ गई थी।
>
> वहां छोटी-छोटी बेकार-सी बातों पर लड़ाइयां-झगड़े होते रहते थे - तूने मेरी चप्पल चुरा ली, तूने मेरे धुले कपड़े खराब कर दिए, तूने मेरे कंबल पर पांव रख दिया। मेट्रन को हमसे बात करने की इजाज़त नहीं थी और हमारे साथ जानवरों से भी बदतर सलूक होता था। दंडित कैदी नए हवालातियों के विरुद्ध दल बनाकर उनसे अपना सारा काम करवातीं और उनसे मारपीट तथा यौन-दुर्व्यवहार करतीं। जेल के कर्मचारी इसमें कभी हस्तक्षेप नहीं करते थे और ये कैदी औरतें मालिक बनकर हवालातियों को मानो अपना गुलाम बना लेती थीं।

जोज़फ ओबी नाइजीरियन है। भारत में शिक्षित और पेशे से इंजीनियर ओबी एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत गिरफ़्तार हुआ था। हवालाती कैदी के रूप में बिताए गए वर्षों को वह इस प्रकार याद करता है :

> मैंने यहां बहुत बुरा वक्त देखा है। कैदियों को बड़ी निर्ममता से पीटा जाता था। एक युवक को पासपोर्ट से संबद्ध मामले में सात दिन की कैद हुई थीं उसे इतना पीटा गया था कि वह मर गया। लोग प्यास से तड़पते थे और उन्हें पीने को साफ़ पानी तक नहीं मिलता था। यहां के लोग मर रहे होते थे और कोई मदद करने नहीं आता था।
>
> मैंने अपने पिछले अधीक्षक का चेहरा तक नहीं देखा था। जब वह जेल का चक्कर लगाने आते तो हमें हमारी बैरकों में बंद कर दिया जाता था और आई जी तो शायद पूरे

साल में एक या दो ही बार जेल का चक्कर लगाते थे।

स्पष्ट ही जोज़फ ओबी 1991 की गर्मियों की बात कर रहा है। उस वर्ष तिहाड़ में पानी की भारी कमी थी और पीने लायक साफ़ पानी का तो सवाल ही नहीं उठता था। आंत्रशोथ तथा पानी के माध्सम से फैलने वाले अन्य रोग तो सामान्य-सी बात थी। कैदियों की दुर्दशा पर ध्यान देने वाला कोई न था। प्रशासन की नींद तो तब खुली जब कैदी मरने लगे।

जेल नंबर 4 के अधीक्षक कहते, ''तिहाड़ में बंद कोई 8,500 कैदियों में से लगभग 90 प्रतिशत हवालाती हैं। कभी-कभी तो हवालाती के रूप में ही जेल में उनका इतना समय बीत जाता है जितना कि शायद दंडित होने पर सजा के तौर पर काटना पड़ता। बल्कि आज के वक्त तो उससे भी ज्यादा। एक हवालाती (अजय) का ही मामला लीजिए। उसे 1983 में हत्या के आरोप में गिरफ़्तार किया गया था और उसका मुकदमा आज तक चल रहा है।''

जोज़फ ओबी गुस्से से फट पड़ता है, ''अदालत मुझ पर मुकदमा चलाना चाहती है। ठीक है, चलाओ मुकदमा। लेकिन ऐसा कब तक चलेगा? 1991, 1992, 1993, 1994? मेरे जीवन के कीमती वर्ष! बेशक न्यायाधीश या पुलिस के लिए ये कुछ भी मायने नहीं रखते लेकिन मेरे लिए ये कीमती हैं। मैं न्यायालय से कहता हूं मुझ पर मुकदमा चलाओ। अगर मेरे विरुद्ध मामला बनता है तो प्रमाण सामने रखो और मुझे सजा दो और नहीं तो मुझे रिहा कर दो, छोड़ दो। मुझे इतने वर्षों तक हवालाती बनाए रखने से किसी को क्या लाभ होगा?''

एक 28-वर्षीय भारतीय महिला सरोज चाय की दुकान चलाती थी। वह एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत पकड़ी गई थी और तीन वर्षों से हवालात में है। वह भी बेहद नाराज़ है लेकिन उसका क्रोध आंसुओं में व्यक्त होता है। सुबकती हुई वह कहती है, ''मैं यहां तीन साल से हूं। मैं कचहरी जाती हूं तो मुझे छः महीने बाद की तारीख़ दे दी जाती है, बस। मैं उन्हें कहती हूं, अगर मैंने जुर्म किया है तो सज़ा दो और अगर नहीं किया तो मुझे छोड़ दो। लेकिन यह क्या तरीका है? मैंने अपना मुकदमा लड़ने के लिए वकील को 4,000 रुपए दिए थे। उसने आज तक पलटकर अपनी सूरत नहीं दिखाई है। सरकारी वकील तक पैसे मांगता है। आज मेरे पास तन के कपड़ों के सिवा कुछ नहीं बचा है।''

हॉलैंड की मार्गो नीटा की उम्र चौवालीस वर्ष है जब वह साढ़े-चार साल पहले पहली बार भारत आई थी तो दिल्ली हवाई अड्डे पर उसे एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत गिरफ़्तार कर लिया गया था। तभी से वह हवालात में है वह हैरान-परेशान होकर टूटी-फूटी भाषा में कहती है, ''मैं पहली बार भारत आई थी और यहां मैं किसी को नहीं जानती। मैंने एक वकील किया था लेकिन उसने मुझे धोखा दिया। वह मुझसे 45,000 रुपए ले चुका है और अब सूरत भी नहीं दिखाता। मुझे लगता है कि न्यायधीश भी कोई चाल चल रहे हैं-मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आता। हॉलैंड में मेरा मुकदमा चलता तो तीन महीने में फैसला हो जाता। अगर मेरा अपराध प्रमाणित हो जाता तो मुझे दो साल की सजा हो जाती, नहीं तो मुझे रिहा कर दिया जाता। मैं बहुत पहले रिहा होकर अपने बच्चों के पास पहुंच जाती।''

ऐंग्लो-इंडियन शकीरा ने भी तिहाड़ में साढ़े-चार साल बिताए हैं। यह युवती बालविहार में शिक्षिका थी। वह कहती हैं, '' अभी तक मेरे मामले की सुनवाई शुरू भी नहीं हुई। न्याय व्यवस्था के साथ यही बुराई है। मामले घिसटते जाते हैं और अगर आप रिहा हो भी गए तो पता चलता है कि दोषी होने पर जितनी सज़ा मिलती, निर्दोष होने पर भी आप उसका आधे से अधिक हिस्सा तो काट ही चुके हैं। मेरी सहेली मारिया का ही मामला ले लीजिए। स्पेन से भारत घूमने आई वह लड़की यहां करीब-करीब छ: साल बंद रही। पिछले हफ़्ते ही वह रिहा हुई है।''

एक भूतपूर्व अंग्रेज़ सैनिक माइकल पर भांग की तस्करी का आरोप है। वह सात वर्ष से अधिक हवालात में बिता चुका है। वह क्या महसूस करता है? ''कुंठा। हां, और क्रोध। मैं दैहिक स्तर पर जीने वाला आदमी हूं, और नास्तिक भी। मुझे सिद्धांतों में भी विश्वास नहीं है। खुद देखे बिना मुझे किसी बात पर यकीन नहीं आता। इस हवालात ने मेरी ज़िंदगी बर्बाद कर दी है, मेरे अस्तित्व को तबाह कर दिया है। इसने मेरे और मेरी सह-अभियुक्त मित्र के बीच के रिश्तों को तबाह कर दिया है। वह यहीं महिला-विभाग में है। जज तो, लगता है, जान-बूझकर फ़ैसला टाल रहे हैं। छ: अलग-अलग न्यायाधीशों ने मेरा मुकदमा सुना है, पर सब मानो इसे टालते ही जा रहे हैं।''

ये लोग, और इन जैसे ही और भी अनेक लोग देश की बुरी तरह अवरुद्ध न्याय-व्यवस्था के 'शिकार' हैं। न्यायपालिका पर इतना अधिक बोझ है कि विचाराधीन कैदियों को जरूरत से बहुत-बहुत अधिक समय जेल की हवालात में बिताना पड़ता है।

किरण को विरासत में यही कुछ मिला था। 1 मई, 1993 को वह जेल की नई इंस्पेक्टर-जनरल के रूप में नियुक्त हुई। तिहाड़ जेल के संचालन का जो काम उन्हें सौंपा गया था उसे कोई भी खुशी से संभालने को शायद ही राज़ी होता।

17

तूफानों से निकली राहें

छोटे कद की लेकिन निर्भीक आई.जी. (जेल) तुरंत ही तिहाड़ में अपना काम संभालने में जुट गईं। जेल कर्मचारी और कैदी, दोनों ही यह देखकर हैरान थे कि सब चीज़ों की निगरानी के लिए वह किस प्रकार दिन और रात को बार-बार चारों जेलों के दौरे करती थीं। उन्होंने खुद वहां के हालात देखे, कैदियों की दुखभरी गाथाएं सुनीं, कर्मचारियों से बातचीत की, जेल की भारी-भरकम कार्यप्रणाली की तफ़सील देखी, और सब देखकर दंग रह गईं।

सब कुछ देखने के दौरान वह जो टिप्पणियां करती चलती थीं उन्हें विभिन्न जेलों के सूचना-पट्टों पर प्रदर्शित किया जाता था। कुछ चुनी हुई टिप्पणियां देखें :

दूसरा दौरा, जेल नंबर-4, 7 मई, 1993, वार्ड नंबर 2 :

4. जो बंदी जेल नंबर-2 से इस वार्ड में इलाज के लिए आए हैं, उन्होंने शिकायत की है कि जेल नंबर 2 के वार्डर मादक पदार्थ और स्मैक मुहैया कराते हैं। इनकी सप्लाई उन कैदियों के माध्यम से होती है जिन्हें नशे की लत है और जो नशीली दवाएं बेचते हैं। व्यसनियों को विकल्प के रूप में जेल नंबर-2 के दवाखाने में सिर्फ डाइज़ेपैम मिलती है।

7. एक कैदी ने रिपोर्ट दी है कि जेल नंबर-1 और 3 के बीच वाली दीवार के एक छोटे-से छेद से नशीली दवाइयां अंदर आती हैं।

8. एक कैदी ने रिपोर्ट दी है कि रात की ड्यूटीवाले कुछ वार्डर भी कैदियों को मादक पदार्थ मुहैया कराते हैं।

9. अपने लोगों के साथ मुलाकात के बाद कुछ व्यसनी कैदी अपने मुंह में, डबलरोटी, केले, टूथपेस्ट, साबुन या फिर अपने जूतों की एड़ी में छिपाकर नशीली दवाएं भीतर ले आते हैं।

पांचवां दौरा, 13 मई, 1993 :

3. आईजी (जेल) ने सभी जेल-अधीक्षकों को निर्देश दिया है कि हर जेल में कैदियों को बैरक में बंद करने के पहले और बाद में प्रार्थना और पुरस्कार का चलन आरंभ करें। प्रार्थना होगी- ''ऐ मालिक तेरे बंदे हम''।

छठा दौरा, 14 मई, 1993 :

6. 'मुंडा ख़ाना' (बाल अपराधियों का वार्ड) के सारे किशोरों के लिए तुरंत व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। इस काम के लिए हर जेल के कैदी कल्याण कोष में से 50-50 हज़ार रुपए जेल नंबर-2 में तुरंत जमा करवाए जाएं।

सातवां दौरा (रात्रि), 16 मई, 1993 :

4. सह-अधीक्षक रणजीत सिंह के विरुद्ध दुर्व्यवहार की बहुत-सी शिकायतें मिली हैं। संबद्ध अधीक्षक मामले की जांच करें। उनके सहायक का कैदियों के प्रति बुरा बर्ताव बर्दाश्त नहीं किया जाएगा।

दसवां दौरा, 20 मई 1993 :

4. अख़बार और पत्रिकाएं जमा करने से जेल को कोई लाभ नहीं है। इन्हें पढ़ने के लिए कैदियों में बांटा जाए।

जेल के कर्मचारियों को एक बैठक में बुलाया गया। उस बैठक में पूरी स्थिति का विश्लेषण किया गया। किरण बताती है, ''यह बात साफ़ हो गई थी कि जेलतंत्र का केवल एक बहुत ही छोटा अंश सक्रिय था। ऐसा लगा कि जेल में न कोई निश्चित नीति थी, न ही किसी प्रकार का दिशाबोध। न सामने कोई लक्ष्य था, न कोई कार्यनीति। चारों तरफ़ केवल समस्याएं-ही-समस्याएं दिखाई दे रही थीं।'' और तिहाड़ के पिछले रिकॉर्ड को देखते हुए हर समस्या पिछली समस्या से अधिक दुर्लंघ्य नज़र आती थी। किरण ने सबसे पहले मादक द्रव्यों की समस्या से निबटने का निश्चय किया।

वह स्वयं बताती हैं, ''दिन और रात के दौरों में जेल में मैंने जो कुछ देखा उससे स्पष्ट हुआ कि जेल नंबर-4 पर जेलकर्मियों, मादक द्रव्य बेचने वालों ओर बंदी व्यसनियों के गठबंधन का आधिपत्य था। दवाख़ाने में व्यसनियों के लिए वैकल्पिक दवाओं का ज़बरदस्त अकाल था। फलस्वरूप उनके सामने अपने व्यसन से उबरने का कोई उपाय न था। इससे वे जेल के अंदर सक्रिय नशीली दवाओं के माफिया पर पूरी तरह निर्भर होकर उसके गुलाम बन गए थे। जब तक इस व्यापक बुराई को उखाड़कर फेंका न जाता, इन कैदियों के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता था। कुछ करना संभव ही नहीं था।''

किरण ने जब इस चुनौती को स्वीकारा, उसके ठीक छ: महीने बाद अश्वेत अमरीकी कैदी विल्फ्रेड ने हैरान होकर कहा, ''ये महिला आती हैं और हमें बताती हैं कि जेल में नशीली दवाएं बड़ी भारी समस्या बनी हुई हैं। हम सोचते हैं, इसमें भला नई बात क्या है। फिर ये कहती हैं कि ये इस समस्या को समाप्त कर डालेंगी। हम सोचते हैं, ये मजाक कर रही हैं। यह काम इनसे भला होगा कैसे? और अब (ताली बजाकर) फुर्र... कर दिखाया है इन्होंने यह काम।''

जेल नंबर 4 में एक वार्ड को नशा मुक्ति केंद्र बना दिया गया। जेल के उप-अधीक्षक गुप्ता बताते हैं, ''हमारी जेल के चिकित्सक व्यसनियों को हमारे नशा मुक्ति केंद्र 'आशियाना' में भेज देते हैं। 'आशियाना' एक स्वयंसेवी संस्था है जिसने इस बैरक को एक नियमित अस्पताल में बदल दिया है। डॉक्टरों, नर्सों और मदद के लिए वार्ड ब्वायों का इंतज़ाम इसी संस्था की ओर से होता है। मरीज का इलाज 15 से 30 दिन तक चलता है और फिर उसे पुनर्वास पर ध्यान दिया जाता है। पहले इस केंद्र की कोई जरूरत न थी क्योंकि जेल के कर्मचारियों की मिलीभगत से व्यसनियों को स्मैक बड़ी आसानी से मिल जाती थी।''

लेकिन इससे पहले क्या उन्हें इस बुराई की जानकारी न थी और अगर थी तो क्या उन्होंने इसको रोकने के प्रयास किए थे ?

''मुझे मालूम तो सबकुछ था लेकिन हम इसको रोकने के लिए विशेष कुछ कर नहीं पाते थे। हम सिर्फ़ इतना कर सकते थे कि मामले की जानकारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों तक पहुंचा दें, पर अंत में आई.जी. (जेल) के कार्यालय में फाइल दबा दी जाती थी। बहुत-कुछ तो संस्था के नेता पर निर्भर करता है अब सब कुछ बदल गया है। जो कर्मचारी इस धंधे में लगे हुए थे उन्हें अब डपट दिया गया है। कुछ को तो कैद की सज़ा भी दी गई है। आज जेल में मादक पदार्थों के संदर्भ में एक स्पष्ट नीति बन गई है। जेल के लोगों में एक नई जागरूकता आई है। अब मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि हमारी जेलें स्मैक से पूरी तरह मुक्त हो गई हैं।''

किरण ने यह सब कैसे किया ? स्वयं उन्हीं के शब्दों में :

''पहले तिहाड़ के हालात तो बिलकुल दहला देनेवाले थे। मिज़ोरम की ही तरह यहां भी जेल की सीमाएं अभेद्य नहीं थीं। जो लोग जेल में आने के पहले मादक द्रव्य नहीं लेते थे, वे भी यहां सज़ा काटने के दौरान वह लत पाल लेते थे। जिन लोगों का व्यसन-मुक्ति के लिए तथाकथित इलाज चल रहा था, उन्हें भी नशीली दवाएं बड़ी आसानी से उपलब्ध थीं। दिल्ली में अपनी पिछली नियुक्ति के दौरान मैं बराबर इस बात पर बल देती रही थी कि जेल में मौजूद स्थितियां हमारे 'नवज्योति' संस्थान के किए-कराए पर पानी फेर देती हैं। पर अब स्थिति की कमान मेरे हाथ में थी और मैंने पूरी ताकत से इस समस्या से जूझने का फ़ैसला कर लिया। 1988 में मैं औरों से जो कदम उठाने का अनुरोध करती रही थी अब खुद मुझे उन्हें कार्यान्वित करने का मौका मिला था।''

''मैंने महसूस किया कि मुझे सबसे पहले तो जेल के घेरे को इतना मज़बूत बनाना है कि बाहर से कोई भी अवांछित तत्त्व अंदर न आ पाए। मेरे वार्डर जेल में नशीली दवाएं बेच-बेचकर पैसा बनाने में जुटे हुए थे और उनमें से कुछ तो खुद भी नशे के लती थे। सुरक्षा व्यवस्था बेहद शिथिल थी। नशीले पदार्थ आसानी से मिल जाने के कारण कैदियों में आपस में काफ़ी झगड़े-झंझट चलते रहते थे और जेल-कर्मचारियों तथा कैदियों के गठबंधन से एक गिरोह-सा बन गया था। एक गैर-सरकारी संगठन द्वारा संचालित केवल एक नशा मुक्ति केंद्र वहां था पर वह भी बेअसर साबित हो रहा था क्योंकि नशीली दवाएं जेल में आसानी से मिल जाती थीं। पूरी व्यवस्था एक मजाक बनकर रह गई थी। मैंने अपना काम कर्मचारियों के स्तर पर शुरू किया। सबसे पहले हमने जेल के भीतर नशीली दवाओं की तस्करी की जांच-पड़ताल की, कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया और उनमें से अनेक को 'नवज्योति' नशा मुक्ति केंद्र में इलाज के लिए भेजा। मैंने उनके सामने साफ़-साफ़ दो विकल्प रख दिए थे-या तो वे इलाज करवाएं या मैं उन्हें पुलिस-सेवा से निकलवाती हूं। कुछ लोग स्वेच्छा से तैयार हो गए, कुछ को मुझे निकाल बाहर करना पड़ा।''

''इसके बाद हमने जेल के भीतर प्रयास शुरू किए। भीतरी प्रबंध व्यवस्था को पारदर्शी बना दिया गया। इलाज के लिए और केंद्र खोले गए। अब हर जेल का अपना अलग

चिकित्सा केंद्र है जहां हर नए कैदी को आते ही ले जाया जाता है। इन केंद्रों में हमारा होम्योपैथिक चिकित्सा पर रहता है क्योंकि 'नवज्योति' के अनुभव से मुझे पता चला था कि ये दवाएं काफ़ी असरकारी तो होती ही है, इन पर खर्च भी कम आता है। इसके अलावा ये प्रॉक्सीवॉन-जैसी एलोपैथिक दवाओं पर रोगियों की निर्भरता को भी घटा देती हैं। इन एलोपैथिक दवाओं से एक ओर रोगी की लत छूटती है तो दूसरी ओर वह इन दवाओं की ही लत पालने लगता है। अनेक गैर-सरकारी संगठनों ने इलाज और परामर्श में मदद की। इस तरह जेल नंबर-1 में 'नवज्योति', नंबर-2 में आंतरिक व्यवस्था, नंबर-3 में एक गैर-सरकारी संगठन 'सहारा' और नंबर-4 में 'आशियाना' कार्यरत हैं। एक और संगठन 'आसरा' जेल नंबर-4 के केंद्र की मदद करता है।''

''अब इन प्रयासों के परिणाम नज़र आ रहे हैं। अनेक कैदियों ने एक नया जीवन आरंभ किया है क्योंकि अब उन्हें उस आदत से छुटकारा मिल गया है जो उनको अपराध-व्यसनी बनाती थी। अब एक नई प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। वह यह कि कैदी इलाज के लिए जेल में आ रहे हैं। नशामुक्त रोगियों के अनुभवों को सुनकर नए रोगी आते जा रहे हैं। वे जान गए हैं कि अब वे भी व्यसनमुक्त हो सकेंगे क्योंकि जेल में अब मादक द्रव्य मिलते ही नहीं। हां, नए कैदी अब भी चोरी-छिपे वे चीज़ें लाने की कोशिश करते हैं पर आम तौर पर निरीक्षण और निगरानी के द्वारा उन्हें रोकने में काफ़ी सफलता मिली है।''

''हर रोज़ तिहाड़ में आने वाले औसतन 300 कैदियों में से 50 मादक पदार्थों के व्यसनी होते हैं। इस व्यसन से जुड़े अपराधों की संख्या बहुत अधिक है इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि इस समस्या को जेलों में ही प्रभावी रूप से हल किया जाए। हमारे चिकित्सा केंद्रों में जगह की बहुत कमी है, इसलिए हम इन्हें संस्थागत रूप देने का प्रयास कर रहे हैं। इसके लिए हमने भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय को एक प्रस्ताव भेजा है। हमारा सुझाव है कि जेलों में 'नवज्योति'-जैसे चिकित्सा केंद्र खोले जाएं जिनका संचालन जेल के अधीक्षक करें। हमने सरकार से अनुदान मांगा है ताकि अधीक्षक होम्योपैथी चिकित्सक, व्यवसाय-प्रशिक्षक, योग-शिक्षक, मनोचिकित्सक और समाज-सेवकों का एक दल गठित कर सके। इस काम के लिए प्रतिमाह प्रति अधीक्षक 10,000 से 12,000 रुपयों की जरूरत है। यह राशि कैदी कल्याण कोष में जमा करवाई जा सकती है और संबद्ध अधीक्षक जेल में मादक पदार्थों की समस्या से निबटने के लिए जरूरत के मुताबिक इसका उपयोग कर सकता है। इस प्रस्ताव पर सरकार और संयुक्त राष्ट्र का मादक पदार्थ नियंत्रण कार्यक्रम मिलकर विचार कर रहे हैं। गैर-सरकारी संगठनों की अपनी सीमाएं होती हैं इसलिए कार्यक्रम को संस्थागत रूप प्रदान करने से काम अधिक प्रभावशाली ढंग से हो पाएगा। एक ग़ैर-सरकारी संगठन 'आसरा' के संचालक डॉ. हरिन्दर सेठी के संचालन में यह बड़ा-सा कारागार एक परियोजना का नमूना बनने जा रहा है।''

''कैदियों के स्वास्थ्य से संबंधित एक और गंभीर समस्या जो मेरे देखने में आई, वह थी धूम्रपान की समस्या। जेल में जगह तंग और बंद होती है। इस वजह से श्वास और फेफड़े

के रोग धूम्रपान न करने वालों में भी फैल रहे थे क्योंकि औरों के बीड़ी-सिगरेट का धुआं उनके फेफड़ों में भी चला जाता था। इसका असर चूंकि बहुत बड़ी संख्या में लोगों पर पड़ रहा था इसलिए मैं बराबर ऐसे मौकों की तलाश में थी कि इस पर रोक लगा सकूं। एक दिन किशोरों के वार्ड का चक्कर लगाते हुए मैं एक कैदी के पीछे खड़ी थी कि वह खांसा और खंखार को कुछ दूर पर थूक दिया। खंखार उसकी कक्षा में पढ़ रहे एक लड़के के सामने जाकर गिरा। मैंने तुरंत इस मौके का लाभ उठाया और वहां बैठे लोगों के आगे घोषणा की कि वे देख लें, उन्हें दी हुई सुविधाओं का किस प्रकार गलत उपयोग हो रहा है। थूकने से शिक्षा का स्थान अपवित्र होता है और अगर यह पाप धूम्रपान की छूट मिलने के कारण हो रहा है तो मेरे सामने यह छूट तुरंत वापस लेने के सिवा कोई चारा नहीं है। किशोरों के धूम्रपान पर तुरंत प्रतिबंध लगा दिया गया और सख़्त हिदायत जारी कर दी गई कि कोई भी मुलाकाती कैदियों के लिए बीड़ियां लेकर न आए। जिस तरह शराब की बिक्री से सरकारी ख़जाने को बहुत-सा रुपया मिलता है उसी प्रकार बीड़ी-सिगरेटों के माध्यम से जेल के कैदी कल्याण कोष में बहुत धन आ रहा था। पर मेरे अधीक्षक भी मुझसे सहमत थे कि आर्थिक हानि सहकर भी हमें जेल में तंबाकू के प्रयोग को बंद कर देना चाहिए। हमने बात को मनोवैज्ञानिक स्तर पर उठाया था इसलिए वे बच्चे समझ गए कि उनके द्वारा सुविधा के दुरुपयोग के कारण ही यह प्रतिबंध लगा है। फलस्वरूप उन्होंने इस मामले में चूं तक न की।''

''उन सबकी उम्र कच्ची और दिमाग़ लचीले तथा ग्रहणशील थे और उन्होंने इस आदेश का पालन करना ही तय किया। इससे उनका अपने पर नियंत्रण भी बढ़ा और जल्दी ही उन्होंने महसूस किया कि इस प्रतिबंध से उनका फायदा ही हुआ है। उन्होंने बताया कि बैरकों में इधर-उधर थूकना बंद हो गया है। अब वे अधिक स्वच्छ माहौल में रह रहे हैं और उनकी गले और छाती संबंधी बहुत-सी बीमारियां गायब हो गई हैं। यह सब सुनकर हमें बड़ी खुशी हुई।''

''अब समस्या थी उन कैदियों की जिनकी आदतें लंबे समय से धूम्रपान करने के कारण पक चुकी थीं। उन पर प्रतिबंध कैसे लगाया जाए? एक दिन मौका खुद-ब-खुद आ हाज़िर हुआ। एक दिन हम जेल नं. 3 का दौरा कर रहे थे। कक्षा में पढ़ने वाले एक कैदी ने हमें बताया कि एक और कैदी बीड़ियां ब्लैक में बेच रहा है। मैंने उससे पूछा कि ऐसा कैसे हो सकता है क्योंकि जेल की कैंटीन में बीड़ियां आराम से मिल जाती हैं। उसने बताया कि कैंटीन कभी-कभी दो-दो दिन तक बंद रहती है, या फिर कभी बीड़ियों की सप्लाई ही कम होती है। पूछताछ करने पर उस दूसरे कैदी ने आरोपों से साफ़ इनकार कर दिया। उसका कहना था कि पहला कैदी निजी दुश्मनी के कारण उसे झूठमूठ फंसा रहा है। इस पर मैंने उसके सामान की तलाशी का आदेश दिया तो उसमें सचमुच ही बीड़ियों से भरा एक डिब्बा मिला। मैंने यह मौका हाथ से न जाने दिया और कैदियों से कहा कि हमारी दी हुई सुविधा का दुरुपयोग ही नहीं हो रहा है, इसके बहाने अपराध भी हो रहे हैं। जेल में कालाबाज़ारी नहीं चलने दी जाएगी और इसलिए मैं सभी जेलों में तंबाकू पीने पर प्रतिबंध लगाने जा रही

हूं। बात को आगे बढ़ाते हुए मैं उन पर खुलकर बरसी। मैंने कहा कि मैं उनका स्वास्थ्य सुधारने के लिए डेढ़ करोड़ रुपयों से भी ज्यादा रकम ख़र्च कर रही हूं और उन्हें किसी भी कीमत पर अपने किए-कराए पर पानी नहीं फेरने दूंगी। मैं तो उनकी तपेदिक, दमा आदि बीमारियों के इलाज के लिए इतना पैसा ख़र्च कर रही हूं और वे हैं कि मुझसे टॉनिक ले लेते हैं और दूसरे कैदियों से ज़हर। मैं अब ये सब और नहीं चलने दे सकती। मैंने साफ़-साफ़ कह दिया, अगर उन्हें यह ज़हर ही लेना है तो फिर इलाज के पैसे भी वे ही दें। मैं तो हरगिज़ नहीं दूंगी।

''प्रतिबंध लगाते ही जेल की बस्तियों में बाज़ारवाली हलचल शुरू हो गई। लोगों ने तमाम उपलब्ध माल दबाना शुरू कर दिया और कालाबाज़ारी फूलने-फलने लगी। हमें पता था कि ऐसा होगा और यह भी पता था कि ऐसा तभी तक होगा जब तक माल घटने न लगे। बड़े पैमाने पर तलाशियां ली गईं और नियम का उल्लंघन करने वालों को सज़ा दी गई। माल जल्दी ही ख़त्म होने लगा तो हमारी वह चिंता तो दूर हुई। मगर सबसे बड़ी चिंता थी, अभ्यस्त नशे के अभाव में लोगों की बिगड़ती हालत की। इस तकलीफ़ के लक्षण स्पष्ट होने लगे थे। इसके अलावा सज़ायाफ़्ता मुजरिमों को पता था कि हवालाती कैदी जब मुकदमे के सिलसिले में अदालत जाते हैं तो वहां उन्हें तंबाकू पीने का मौका मिल जाता है। पर उनके लिए ऐसा कोई अवसर नहीं था। इसके कारण वे अवसाद से ग्रस्त रहने लगे थे। मेरे इस कदम पर कैदियों की प्रतिक्रिया मिली-जुली थी जो मुझ तक याचिका-पेटी व्यवस्था के माध्यम से पहुंचती थी। कुछ का कहना था कि मैंने बहुत अच्छा काम किया है, पर कुछ प्रतिक्रिया ज़ाहिर नहीं की। मुझ पर आरोप था कि मैंने बेहद मूर्खतापूर्ण हरकत की है और कैदियों को बेहतर जीवन तथा अधिक मुक्त वातावरण देने के मेरे तमाम प्रयत्न इससे निष्फल हो गए हैं।''

''चौबीस घंटे बाद ही पता चल गया कि बीड़ियां उनके लिए किस कदर ज़रूरी हो गई थीं। रसोइयों ने कहा कि वे बीड़ी पिए बिन लंगर का काम नहीं कर सकते। बहुत सारे कैदियों ने खाना खाने से इनकार कर दिया क्योंकि उनके पेट में दर्द शुरू हो गया था। मैं सोचने लगी थी-क्या मेरे अधीक्षक स्थिति को संभाल पाएंगे? और, मैंने कहीं ऐसा कदम तो नहीं उठा लिया है जिसे मैं अंत तक निभा न पाऊँ? पर तभी मैंने ध्यान दिया कि अफ़ीम की ही भांति तंबाकू की लत का उन पर कितना बुरा असर पड़ा है इस हानि को जानते हुए भी अगर मैं उन्हें धूम्रपान की अनुमति दे दूं तो यह घोर अनैतिक कार्य होगा। इसलिए मैंने प्रतिबंध जारी रहने दिया। अधीक्षकों ने मुझे पूरा सहयोग दिया। उन्होंने कैदियों को मनाया, समझाया-बुझाया और पूरे संकल्प सहित मेरे साथ डटे रहे। इससे मेरा हौसला बढ़ा। अधीक्षकों को बहुत सारा अतिरिक्त कार्य करना पड़ता था और बहुत सारी परेशानियां भी उठानी पड़ती थीं लेकिन उन्होंने बराबर मेरा साथ दिया। उनके कट्टर समर्थन के बिना यह काम संभव ही नहीं होता। हम अपने प्रयत्नों में जुटे रहे। कैदियों को हमने अतिरिक्त दूध, फल और दवाइयां दीं, साथ ही कोई भी ऐसी चीज़ जो धूम्रपान से उनका ध्यान हटा सके। इसके लिए ज़बरदस्त प्रयास की जरूरत थी और फिर धीरे-धीरे इसके परिणाम सामने आने

लगे। उनकी आदतें सुधरने लगीं और उन्हें समझ में आ गया कि मैं बहुत सख्त हूं इसलिए उन्हें धूम्रपान के बिना काम चलाने की आदत डालनी पड़ेगी।''

''मैंने फिर से जेल में दौरा करना शुरू कर दिया। लोगों के दल बनने लगे थे। कोई दल आकर मुझसे कहता कि मैंने सही काम किया है तो कोई दूसरा दल इस बात पर ध्यान दिलाने लगता कि जेल-नियमावली के अनुसार भी जेल प्रभारी को हर रोज प्रत्येक कैदी को दो बीड़ियां बांटने का प्राधिकार है। मैंने कहा कि यह करना असंभव है क्योंकि इसका हिसाब-किताब रखना बड़ा ही मुश्किल है। साथ ही, यह पता लगाना भी संभव नहीं है कि कौन तंबाकू पीता है और कौन नहीं। इससे फिर वह स्थिति आ जाएगी कि लोग हिसाब से ज़्यादा बीड़ियां पी लेंगे या फिर उनकी कालाबाज़ारी होने लगेगी। कुछ कर्मचारी भी बहुत धूम्रपान करते थे। इसलिए खुद उन्होंने इस प्रतिबंध का समर्थन नहीं किया। तब हमने उन्हें बाहर की ड्यूटी पर लगा दिया जहां कैदियों से उनका संपर्क न हो सके। हम इस समय बात के बनने और बिगड़ने की सीमा-रेखा पर खड़े थे। अगर हम कुछ समय और अपनी बात पर दृढ़ रहते तो हमारी फ़तह थी, अगर अभी घुटने टेक देते तो फिर कभी भी ऐसे कदम उठाना संभव नहीं होता।''

फिर अचानक ही अप्रत्याशित रूप से मेरी सबसे कठिन परीक्षा की घड़ी आ गई। हम जेल की स्थिति और कार्यों का जायज़ा लेने के लिए नियमित रूप से मीटिंग किया करते थे। एक दिन ऐसी ही मीटिंग के लिए मैं जेल में आई। आमतौर पर मेरे आने पर कैदी तालियां बजाकर मेरा स्वागत करते थे। इससे यह भी ज़ाहिर होता था कि मेरी कार्यपद्धति और इंतज़ाम उन्हें पसंद आ रहे हैं। उस दिन एक भी ताली नहीं बजी। मैंने सोचा कि शायद उन्होंने इसे बचकानी बात मानकर छोड़ दिया हो या फिर उन्हें लगता हो कि इसे पाखंड माना जा सकता है। वहां के अधीक्षक तरसेम कुमार मुझसे कहते रहते थे कि वहां कई समस्याएं सिर उठा रही हैं मगर वे काम चलाए जा रहे हैं। वे समस्याएं आज सामने आ गईं। मैंने कैदियों के सामने एक भाषण दिया। उन्हें समझाया कि धूम्रपान पर प्रतिबंध क्यों लगाया गया है। पर वे समझने-मानने को बिलकुल तैयार नहीं थे। तब मैंने कहा कि अब देर होती जा रही है इसलिए बात ख़त्म करके हम लोग हमेशा की तरह खड़े होकर प्रार्थना करेंगे। कोई खड़ा नहीं हुआ। तब मैंने कहा, वे खड़े न होना चाहें तो कोई ख़ास बात नहीं, हम बैठे-बैठे ही प्रार्थना कर लेंगे। वहां लगभग 1,200 कैदी थे जिनमें सज़ायाफ़्ता कैदी मेरे दाहिनी ओर और हवालाती कैदी मेरे सामने थे। मैंने किसी तरह कुछ हवालाती कैदियों को अपने साथ प्रार्थना-गीत गाने के लिए तैयार कर लिया। फिर मैंने कैदियों को बैरक में लौट जाने का आदेश दिया। थोड़ा-बहुत समझाने-बुझाने पर हवालाती कैदी तो चले गए मगर सज़ायाफ़्ता कैदी टस-से-मस न हुए। वे वहीं मुंह फुलाए बैठे रहे। मैंने उनसे कहा कि उनकी शिकायतें मैं बाद में सुन लूंगी। फिलहाल वे बैरकों में जाएं। अब उनमें से कुछ के मुंह खुले और वे बोले कि वे तभी जाएंगे जब उन्हें बीड़ियां दी जाएंगी। उनका कहना था कि मैं उनके साथ अन्याय कर रही हूं। उन्हें न अंडे चाहिए थे न दूध, न फल। उन्हें तो बस बीड़ियां चाहिए थीं जो उनके लिए प्रेमिकाओं की तरह थीं। उनके बिना वह जिंदा नहीं रह सकते।

'अगर आप हमें बीड़ियां नहीं देंगी तो हम आत्महत्या कर लेंगे।' पहली बार मेरे पसीने छूट गए। अन्य तीन जेलों ने प्रतिबंध को स्वीकार कर लिया था। अगर मैं यहां कोई छूट देती हूं तो सब किए-कराए पर पानी फिर जाएगा। स्थिति मुझे सुलझानी ही थी और मैं इसमें जुट गई। कैदियों को मैंने समझाया कि नशा छोड़ते समय इस प्रकार की दिक्कत होती ही है। इसे 'टूटन' कहते हैं। इस पर वे लोग हंस पड़े और कहने लगे, 'मैडम को टूटन का पता है।' मैंने हामी भरते हुए कहा कि इस कठिन समय में उनकी सहायता के लिए मैं छ: और डॉक्टरों का इंतजाम कर दूंगी। उन्हें होमियोपैथिक दवा 'टोबाकम' दी जाएगी जिससे तंबाकू के लिए उनकी हुड़क कम हो जाएगी। उन्होंने मुझे बताया कि इस हुड़क को दूर करने के लिए वे यहां तक उतर आए हैं कि छिपकलियों को मारकर, सुखा-सुखाकर खा रहे हैं। उस दिन इस बात पर बहुत बहस हुई कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। आखिरकार मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं डॉक्टरों और मनोचिकित्सकों से सलाह करके आखिरी फ़ैसला करूंगी और उन्हें बता दूंगी। तब तक तो प्रतिबंध जारी रहेगा ही। मुझे दरअसल हाथ में कुछ समय चाहिए था। मुझे चिंता थी और डर भी कि स्थिति हाथ से न निकल जाए। उस हालत में दूसरे क्षेत्रों में किए गए सुधार भी बेकाम हो जाएंगे। मेरे सहयोगियों ने सुझाव दिया कि ज्यादा शोर मचाने वाले कैदियों को औरों से अलग कर दिया जाए। इससे बाकी लोग कुछ ठंडे पड़ जाएंगे। मैं इस सुझाव से सहमत नहीं हुई क्योंकि ऐसा होने पर लोग खुलकर बोलना बंद कर देते। हम जेल-व्यवस्था में परिदर्शिता लाने की कोशिश कर रहे थे। वह कोशिश इस बात से निष्फल हो जाती। अंतत: मैंने उन्हें दो दिन का समय देने को राज़ी कर लिया जिसमें मैं डॉक्टरों से सलाह कर सकूं। बाद में उन्हें अपना फ़ैसला बता दूंगी। इस प्रकार हमने किसी तरह स्थिति को संभाल लिया और कैदी बैरकों में लौट गए।

उस रात मैं सो न सकी। मैं बराबर यही सोचती रही कि जेल में इस समय न जाने क्या हो रहा होगा। मनोचिकित्सक डॉ. हरिन्दर सेठी हमें स्वेच्छा से अवैतनिक सहयोग देते थे। अगली सुबह ही मैंने उनसे सलाह ली और यहां की स्थिति उनके सामने रखी। मैंने उनसे पूछा कि कैदी अगर धूम्रपान पर लगे प्रतिबंध के ख़िलाफ़ अदालत में याचिका दायर करें तो क्या वह मेरे पक्ष में खड़े होकर बयान देंगे कि स्वास्थ्य की दृष्टि से यह प्रतिबंध ज़रूरी है? उन्होंने आश्वासन देते हुए हामी भरी तो मैंने उनसे अपनी सलाह लिखित रूप में देने का अनुरोध किया। डॉ. सेठी 'आसरा' चिकित्सा केंद्र से जुड़े थे और उन्होंने कैदियों की तंबाकू पीने की आदत की शिकायत मुझसे कई बार की थी। अब वे मेरी मदद करने के लिए तत्पर थे। तरसेम कुमार हर रोज़ इस उम्मीद में मुझसे फ़ैसले के बारे में पूछते रहते थे कि मैं शायद कुछ नरम पड़ जाऊँ। मैं जानती थी कि मैं उन्हें जो भी जानकारी दूंगी वह कैदियों तक पहुंच जाएगी। इसलिए मैंने उनसे कह दिया कि मैं अभी डॉक्टरों और मनोचिकित्सकों से सलाह कर रही हूं। इस तरह मुझे पांच दिनों की छूट मिल गई। छठे दिन मैंने उनसे कह दिया कि फ़ैसले में कोई परिवर्तन नहीं किया जा रहा है। तब तक स्थिति काफ़ी शांत हो गई थी। सातवें दिन मैं जेल तो गई लेकिन सज़ायाफ़्ता कैदियों की बैरक में मैं जान-बूझकर नहीं गई। तुरंत मुझे याचिका-पेटी के ज़रिए एक पत्र मिला जिस पर अनेक सज़ायाफ़्ता कैदियों

के हस्ताक्षर थे। पत्र में उन्होंने मुझसे पूछा था कि क्या मैं अब तक उनसे नाराज हूं कि जेल में आकर भी उनके खंड में नहीं आई? उन्होंने अपने व्यवहार पर खेद प्रकट करते हुए मुझसे माफ़ी मांगी थी और जेल में अपने खंड में आने का अनुरोध किया था। मैंने जवाब में पत्र लिखकर उन्हें बताया कि मैं अगले दिन आऊंगी। मैं समझ गई कि हमें सफलता मिल गई है।

''जेल नियमावली के अनुसार जेल के आई.जी. को बहुत-से विवेकाधिकार होते हैं। उनके ही अनुसार मैं कैदियों को वे सुविधाएं प्रदान कर रही थी जो मेरी समझ में उनके लिए हितकर थीं। जो सुविधाएं हानिकारक थीं, उन्हें मैं इन अधिकारों के ही तहत वापस ले रही थी। आज दिल्ली की विधानसभा में धूम्रपान निषेध अधिनियम विचाराधीन है जिसके लागू होते ही सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान पर प्रतिबंध लग जाएगा। अगर मैं जेल-नियमावली से धूम्रपान संबंधी धारा निकलवाना चाहती हूं तो इसमें गलत क्या है? इससे भविष्य में भी वहां धूम्रपान बंद रहेगा।''

वार्डन ने बताया, ''यहां बहुत-से गुंडे हैं जो भांग, स्मैक और अन्य मादक पदार्थों का व्यापार करते हैं। हमारी योजना इन्हें अन्य कैदियों से अलग रखने की है। वहां इन्हें कारावास संबंधी कोई सुविधा नहीं दी जाएगी, इनके लिए मुलाकातों की मनाही होगी और बाहर से कोई खाने-पीने की वस्तु भी इन तक नहीं आने दी जाएगी। जेल की कैंटीन से भी ये कुछ नहीं ख़रीद सकेंगे। बिस्कुट, सिगरेट, नेल पॉलिश, कुछ भी नहीं। इनके कमरों में छत के पंखे नहीं होंगे और सबसे बड़ी बात यह है कि इन पर निरंतर निगरानी रखी जाएगी।''

इन कदमों का नियम भंग करने वालों पर वांछित प्रभाव पड़ा। व्यसनी लोग समझ गए थे कि नया प्रशासन इस विषय में पूरी तरह गंभीर है। इसलिए बहुत-से व्यसनियों ने तो आगे आकर आई. जी. से अपना इलाज करवाने का निवेदन किया।

वार्डर राजसिंह स्वयं नशे की लती था और अपने व्यसन के लिए रुपया जुटाने की ख़ातिर वह जेल में नशीली दवाएं बेचा करता था। उसे कठोर सज़ा दी गई ताकि उसे देखकर और लोग इस प्रकार के जुर्मों से दूर रहें। उसे नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया और आज वह जेल में कैद की सज़ा काट रहा है।

जेल नंबर-2 के अधीक्षक बताते हैं, ''कैदियों को अपनी नेकनीयती का भरोसा दिलाने के लिए पहले उनका विश्वास जीतना ज़रूरी था। 2 अगस्त को रक्षाबंधन के त्यौहार पर हमें इसका मौका मिल गया। यह भाई-बहनों के लिए बड़ा ही भावनापूर्ण अवसर होता है। बहनें भाइयों के हाथों में परस्पर प्रेम-बंधन की प्रतीक राखी बांधती हैं और भाई इसके साथ ही बहनों से प्रेम तथा आदर के साथ-साथ उनकी रक्षा करने के वचन में बंध जाते हैं। कैदियों की भावनाओं को छूने का यह अच्छा मौका था। हमने तय किया कि रक्षाबंधन के दिन कैदियों की बहनों को जेल में आकर अपने भाइयों को राखी बांधने दी जाएगी। ज़ाहिर है हमने इस मौके पर सुरक्षा की भी व्यापक और मज़बूत योजना बनाई थीं। यह निश्चय हमने कैदियों तक पहुंचाया तो उनकी आंखों में आंसू भर आए। भरे दिल से उन्होंने हमें आश्वासन दिया कि वे कोई भी ऐसा काम नहीं करेंगे

जिससे हमें नीचा देखना पड़े। जब हमारी ख़ातिर आप लोग इतना-कुछ कर रहे हैं तो हम कोई भी गलत काम कैसे कर सकते हैं?' 2 अगस्त को भाइयों ने भावविभोर होकर अपनी बहनों से वादा किया कि वे अपने तौर-तरीके बदल लेंगे। इस मिलन-समारोह से जो सफलता हमें मिली वह अन्य किसी भी प्रयास से संभव न थी। बहुत-से बंदी बार-बार उस दिन की वीडियो टेप और एलबम देखने के लिए आवेदन करते रहते हैं। इससे उनकी भावनाएं जाग उठती हैं।''

इसी तरह भारत की सामाजिक संस्कृति के अनुरूप हर समुदाय के त्यौहार पूरे रीति-रिवाज के साथ मनाए जाने लगे। गुरुपूर्व, दीवाली, क्रिसमस और नववर्ष के उत्सव सभी बंदियों ने बड़े आनंद और उत्साह से मनाए।

18

सुधार

बंदियों के साथ तुरंत संवाद स्थापित करने की आवश्यकता थी, क्योंकि जो भी योजनाएं लागू की जानी थीं, उनका सीधा लाभ उन्हीं को पहुंचता था। याचिका-पेटी की परिकल्पना बड़ी अनूठी थी। सुझाव-पेटी का प्रचलन पहले से था पर इस व्यवस्था की अंदरूनी खामी के कारण यह विशेष सफल नहीं हुई थी। बस पेटी की चाबी किसी जेल-कर्मचारी के ही पास रहती थी और वह कर्मचारियों के ख़िलाफ़ शिकायती पत्रों को निकालकर नष्ट कर देता था। नई प्रणाली में याचिका-पेटी घूमती रहती थी। मुख्यालय द्वारा नियुक्त एक कांस्टेबल साइकिल पर सवार होकर याचिका-पेटी सहित बंदियों के खाली समय में जेल का चक्कर लगाता है। पेटी की चाबी मुख्यालय में एक राजपत्रित अधिकारी के पास रहती है जो याचिकाओं की प्रकृति के अनुसार उनको छांट देता है। याचिकाओं की मुख्य-मुख्य बातों की सूची बनाकर आई.जी. (जेल) को देखने के लिए भेजी जाती है जिसके बाद आवेदक को गुलाबी रंग का एक प्राप्ति-सूचना कार्ड भेज दिया जाता है जहां आवश्यक हो वहां अविलंब जांच-पड़ताल की जाती है, और एक सप्ताह की भीतर आवेदक को एक हरे रंग का कार्ड मिलता है, जिसमें उसे यह सूचना दी जाती है कि उसके आवेदन पर कौन-सी कार्रवाई की गई है अथवा निष्कर्ष निकाला गया है। यदि ऐसे किसी मामले में अधिक समय की आवश्यकता हो तो इस बात की सूचना भी प्रार्थी को एक सप्ताह के भीतर भेज दी जाती है।

किरण कहती हैं, ''याचिकाओं से मुझे पता चलता है कि वास्तव में जेल के अंदर क्या होता है। शिकायतें कई तरह की होती हैं, जैसे, सुविधाओं की कमी, खराब खाना, चिकित्सा सुविधाओं की आवश्यकता, जेल-कर्मचारियों द्वारा कैदियों को परेशान किया जाना तथा भ्रष्टाचार आदि। दरअसल ऐसी ही एक शिकायत के कारण एक हेडवार्डर को स्थानांतरित भी किया गया है। शिकायतों से ही पता चला कि वह वार्डर कैदियों को कैसे जानवरों की तरह पीटता था। यदि आवेदक स्वयं चाहे अथवा सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अधिकारी आवश्यक समझें तो आवेदक का नाम गुप्त रखा जाता है। इस प्रणाली के परिणामस्वरूप याचिकाएं हाईकोर्ट में जाने के स्थान पर जेल प्रशासन के पास आने लगीं। इससे अदालत का कार्यभार कम हुआ, कानूनी पैरवी का समय बचा, साथ ही जेल के निरीक्षण कार्य में भी बहुत सुधार हुआ है।''

तिहाड़ में इस प्रणाली की पूरक एक और प्रणाली लागू की गई है और वह है पंचायत अथवा मंच।

उप-अधीक्षक सुनील गुप्ता ने विस्तार से बताया, ''इस 'पंचायत' में प्रत्येक बैरक के प्रतिनिधि होते हैं जिनके साथ हमारी रोज़ बैठक होती है। यह हमारी मुख्य कड़ी है जिसके माध्यम से हम नए विचारों और कार्यक्रमों को लागू कर सकते हैं। 'पंचायत' के सदस्य परिवर्तनों और योजनाओं के लिए सुझाव देते हैं, जिन्हें हम ग़ौर से सुनते हैं और यदि सुझाव व्यावहारिक हों तो, हम उन्हें अपने कार्यक्रम में सम्मिलित करने का प्रयास करते हैं। चूंकि वे सुझाव स्वयं सदस्यों की ओर से आते हैं, इसलिए उनकी बैरकों में इन्हें लागू करना बहुत आसान हो जाता है। जुलाई 1993 में दो किशोर अपराधी वार्डों या मुंडाख़ानों का उद्घाटन किया गया जिनके नाम प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी विनोद कांबली और सचिन तेंदुलकर के नाम पर 'कांबली वार्ड' और 'सचिन वार्ड' रखे गए हैं।''

जेल के उप-अधीक्षक ने आगे बताया कि ''इन वार्डों में एक हज़ार किशोर बंदी हैं। इनके अपराधी बन जाने की बड़ी संभावना है। यदि हम इन्हें अच्छे और बुरे के बीच का अंतर समझा सकें और इनकी शक्ति को रचनात्मकता की ओर मोड़ सकें तो सही दिशा की ओर यह बहुत बड़ा कदम होगा।''

बारहवीं कक्षा का 18-वर्षीय विद्यार्थी केसर कुमार बताता है, ''मैं अपने साथी बंदियों के लिए यह पुस्तकालय चला रहा हूं और मुझे खुशी है कि बहुत-से लोग यहां अक्सर आते हैं और पढ़ने में काफ़ी समय बिताते हैं। यहां तक कि जेल-अधीक्षक जब भी इस तरफ़ आते हैं तो वे भी कोई-न-कोई पुस्तक पढ़ने के लिए ले जाते हैं। यह सच है कि इस प्रकार का पुस्तकालय मैं इससे पहले इस तरह नहीं चला सकता था क्योंकि मुझे किसी से भी सहारा या प्रोत्साहन मिलने का सवाल ही नहीं था। हम याचिकाओं अथवा पंचायत के माध्यम से बतला देते हैं कि हमें कौन-सी किताबें चाहिए।''

अट्ठारह-वर्षीय भूपिंदर सिंह जून 1993 में तिहाड़ में आया था। उस पर हत्या का मुकदमा चल रहा है। उसका कहना है कि जेल के नाम से ही वह बुरी तरह डरा हुआ था। ''यहां आने से पहले मेरा ख़याल था कि जेल एक भयानक जगह होगी जैसा कि मैंने फ़िल्मों में देखा था। यहां सभी को एक-जैसे कपड़े पहनने होंगे, हमारी पिटाई हुआ करेगी और खाना बहुत ही ख़राब होगा। किंतु यहां तो ऐसा कुछ भी नहीं है। सच पूछें तो यह जगह स्कूल के हॉस्टल-जैसी लगती है, जहां हम सब लगभग एक ही उमर के हैं-हम लोगों में अच्छी दोस्ती है।''

बंदियों की पढ़ाई के लिए प्रशासन के प्रयासों के विषय में विस्तार से बतलाते हुए उप-अधीक्षक श्री गुप्ता कहते हैं, ''शिक्षा के विषय में आज हमारी नीति बिलकुल स्पष्ट है। हम चाहते हैं कि जो भी बंदी बनकर यहां आता है वह पढ़-लिखकर अथवा पहले से अधिक शिक्षित होकर बाहर जाए। यहां आने पर कैदी का वर्गीकरण उसकी साक्षरता के स्तर के आधार पर होता है। निरक्षर बंदियों को दो सप्ताह के अंदर ही अक्षर-ज्ञान करवाकर लिखना-पढ़ना सिखा दिया जाता है। बाकी बंदियों को समूह में विभाजित कर उनके स्तर के वर्गों में भेज दिया जाता है। शिक्षकों का चुनाव भी बंदियों में से ही होता है। काम के प्रति उनकी लगन और मेहनत की कल्पना उनका काम देखकर ही की जा सकती है। प्रोत्साहन राशि के रूप में उन्हें प्रतिमाह दो

सौ रुपए तक दिए जाते हैं। आधे दिन के लिए जेल किसी विद्यालय-सी लगती है जहां कक्षाओं के साथ ही भाषाओं के पाठ्यक्रम भी चलते हैं।''

पचास-वर्षीय सरदार सिंह एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत पिछले कुछ वर्षों से हवालात में हैं और अपनी स्थिति से निर्लिप्त हो चले हैं। उन्होंने इस तथ्य को मानो स्वीकार ही कर लिया है कि इस समय देश में जो व्यवस्था लागू है उसमें ऐसे अधिनियमों का दुरुपयोग ही होगा। फिर भी आशा उन्होंने छोड़ी नहीं है। ''लेकिन अब हम कम-से-कम मैं - तो यहां की गतिविधियों से इतने जुड़ गए हैं कि पता ही नहीं चलता कि कब सुबह हो जाती है।'' सरदार सिंह को और लोग ही नहीं, आई जी (जेल) तक 'गुरुजी' कहकर संबोधित करती हैं। वह बाल-अपराधी वार्डों के शिक्षा सेल के समग्र प्रभारी हैं। उनके ही शब्दों में :

प्रौढ़ शिक्षा का काम मैंने 1989 में जेल नंबर 3 से शुरू किया था मगर अब मुझे इन वार्डों का काम ही सौंप दिया गया है। आरंभ में यहां अनुशासनहीनता का बोलबाला था। बीस या तीस लड़कों के अतिरिक्त किसी की भी पढ़ने में रुचि नहीं थी। बाकी लड़के वार्ड के अहाते में बेकार इधर-उधर घूमते और अक्सर एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते थे। लेकिन वे ही लड़के अब सुव्यवस्थित समूहों में बैठने लगे हैं और कक्षाएं नियमित रूप से लगने लगी हैं। जिनकी कक्षा उस समय नहीं चल रही होती वे पुस्तकालय में चले जाते हैं और काफ़ी समय वहां खुशी-खुशी बिताते हैं।

मेरा ख़्याल है कि यह सब इसलिए संभव हो सका है कि जेल के सभी कर्मचारी अब मदद करने को तत्पर रहते हैं। जो सुझाव हम देते हैं उन्हें ध्यान से सुना जाता है और हमें ज़रूरी मदद दी जाती है। इन सबका परिणाम यह है कि यह वार्ड लगभग किसी रिहायशी विद्यालय-सा लगने लगा है।

आज मैं कह सकता हूं कि विद्यालय-जैसे इस अनुशासन से जुड़ने के पहले यहां अपनी स्थिति, अपने घर और अन्य संबंधित समस्याओं के विषय में ही हर समय सोचते रहते थे। इससे वे या तो बेहद उदास हो उठते थे या अतिरिक्त रूप से उत्तेजित। इसका प्रभाव उनके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता था। मैं अपने इन विद्यार्थियों से कहता हूं कि आज भले ही तुम कैसी भी परिस्थितियों से गुज़र रहे हो, भविष्य में तुम्हारे भीतर छिपी भावना मानवता उभरकर बाहर आनी चाहिए। जो कुछ हो चुका है वह अतीत की बात है, और उस पर अब तुम्हारा कोई बस नहीं, किंतु अपने भविष्य को सुधारने की तैयारी तुम स्वयं कर सकते हो। इसी बात का प्रयास हम यहां कर रहे हैं।

भारत की एक बहुचर्चित बंदिनी फूलन देवी की प्रतिक्रिया के संबंध में जेल की सह अधीक्षक मीना लुकरे ने बताया :

ग्वालियर में 11 वर्ष व्यतीत करने के बाद फूलन देवी हमारी जेल में आई। हमने उसे एक अलग कोठरी में रखा और अपनी कुछ अधिक सहानुभूतिशील महिला अभियुक्तों को उसके साथ रहने को कहा। उनका काम इस बात का ध्यान रखना था कि फूलन समय पर

दवा खा ले (उस समय फूलन को कैंसर होने का संदेह था जो यहां आने पर निर्मूल सिद्ध हुआ)। इस मानवीय वातावरण के प्रति फूलन की प्रतिक्रिया अच्छी रही। मैंने उसे सिलाई या बुनाई-जैसे किसी काम में लगने को कहा पर इनमें उसका ज्यादा समय मन नहीं लगा। किंतु पढ़ाई में उसकी रुचि थी। आज वह श्रुतिलेखन कर सकती है और हल्की-फुल्की पुस्तकें रुचि से पढ़ती है। अब वह मानती है कि यदि ऐसा अवसर उसे पहले ही मिल जाता तो वह अपने ग्यारह वर्ष व्यर्थ न गंवाती।

जिन्हें पुराने शासन और उन स्थितियों का अनुभव है, उनके मन में शंका है कि यह बदला वातावरण अधिक समय तक नहीं बना रहेगा। उन्हें सबसे अधिक तो यह प्रश्न सताता है कि ''वर्तमान आई-जी- का तबादला हो गया तो क्या होगा? किसी एक गलत नियुक्ति से सब किया-धरा बेकार हो जाएगा।'' बहुत-से लोगों की ज़बान पर यही घबराहट भरा प्रश्न है। लेकिन अपने पति की हत्या के आरोप में कैद सरिता (जिसके केस की सुनवाई अभी आरंभ होनी है) अपने हैरत भरे उद्‌गार दबा नहीं पाती। उसके शब्दों में :

मैंने सोचा था जेल भयावनी होगी। मेरी कल्पना थी कि कैदियों को छड़ी से पीटा जाता है। उनके हर प्रकार के गंदे काम करवाए जाते हैं। हमें इधर-उधर घूमने की इजाज़त नहीं होगी, डर से मैं लगभग बौखला गई थी। किंतु जब मैं यहां आई तो हैरान रह गई। यह तो जेल-जैसी लगती ही नहीं थी। यहां कक्षाएं चल रही थीं, लोग तरह-तरह के कामों में व्यस्त थे और हर किसी के पास करने को कुछ-न-कुछ था। यहां का वातावरण तो महिला छात्रावास-जैसा है।

''अब क्या परिवर्तन हुआ है?'' इस विषय में विस्तार से बताया, महिला वार्ड की मैट्रन उर्मिला ने। वह कहती है : "बदलाव यह आया है कि अब औरतों को ख़ाली नहीं बैठना पड़ता। पहले उनके पास करने को कुछ था ही नहीं। या तो वे कोठरियों में बंद बैठी रहतीं या कुछ देर बाहर निकलने की छूट मिलने पर थोड़ा समय आंगन में बिता लेती थीं। उनमें ज्यादातर तो हर वक्त अपने मुकदमे की बात कर-करके रोती ही रहती थी। उनके मिज़ाज चिड़चिड़े और गुस्सैल हो गए थे और छोटी-से-छोटी बात पर वे आपस में लड़ मरती थीं। इसलिए उन्हें अक्सर सज़ाएं भी मिलती रहती थीं क्योंकि उन्हें काबू में रखने का यही एक उपाय था। कुछ पर इसका उल्टा ही असर पड़ता और वे अपना गुस्सा औरों पर उतारने लगती थीं। अब उनके पास काम-ही-काम है। उनका दिन पढ़ाई की कक्षाओं, योग कक्षाओं, सिलाई या बुनाई में बीत जाता है। इससे उनका तनाव बहुत कम हो गया है। फलस्वरूप लड़ाई-झगड़ों में भी स्वाभाविक रूप से भारी कमी आई है।"

चार वर्ष तक के बालक अपनी माताओं के साथ जेल में ही रहते हैं, हाल ही में की गई गिनती से पता चला कि महिला वार्ड में ऐसे 40 बालक हैं। मीना लुकरे स्वयं दो बच्चों की मां हैं। वह कहती हैं, ''जब कोई नन्हा बच्चा कहता, 'अच्छा आंटी, अब मेरे जाने और बंद होने का समय हो गया है, ' तो कलेजा मुंह को आता था। जेल की कोठरी ही उनका घर था और उनके लिए घर जाने का मतलब था, ताले में बंद होना।'' मीना आगे कहती हैं, ''इससे पहले माताएं

अपने बच्चों की देखभाल तक नहीं करती थीं-न नहलाना, न खिलाना-पिलाना। वे बस चिथड़ों में घूमते रहते थे। जब किरण बेदी ने यह सब देखा तो वह पसीज उठीं।''

वह सिर्फ़ पसीजकर ही नहीं रह गईं, उन्होंने तुरंत इस सिलसिले में कार्रवाई भी शुरू कर दी। दिल्ली प्रशासन के सामाजिक कल्याण विभाग के अधिकारियों से संपर्क स्थापित करके बालकों के लिए घूमने जाने की व्यवस्था की गई। उन्हें राजघाट और चिड़ियाघर की सैर करवाई गई। उन बच्चों ने इन्सान के नाम पर अब तक केवल औरतें ही देखी थीं'' इसलिए हर व्यक्ति उनके लिए 'आंटी' था। आज तक इन बालकों ने जानवरों के नाम पर बैरकों में घूमने वाली शेरू और चिन-चिन नामक बिल्लियों को ही देखा था और कुछ पक्षियों को भी जो आसपास उड़ते रहते थे। इसलिए मोर उनके लिए 'बड़ी भारी चिड़िया' और भैंस बहुत बड़ी बिल्ली' थी।

अधीक्षक के.आर. किशोर बताते हैं, '' इस सैर का माताओं पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने बच्चों को अपना करके उनकी देखभाल आरंभ कर दी। तनाव वास्तव में कम हो गया था।''

जेल अधीक्षक ने इस विषय में विस्तार से आगे बताया, ''अधिकतर भारतीय बंदी महिलाएं बहुत ही ग़रीब हैं, इसलिए इस ओर विशेष ध्यान दिया गया। अनेक स्वयंसेवी संगठनों से संपर्क करके इन महिलाओं का काम दिलाया गया। परिणामस्वरूप लगभग चालीस महिलाओं ने अपने लिए बैंक खाता तक खोल लिया है। प्रति सप्ताह एक बैंक कर्मचारी आकर उन्हें दिए गए ब्याज और उनकी जमा पूंजी की स्थिति के विषय में बतलाता है। यह इसलिए किया जाता है कि उनके मन में हमारे प्रति विश्वास बना रहे और यह संदेह उनके मन में न रहे कि हम उनके पैसों का दुरुपयोग कर लेंगे।''

किरण ने समाज से अपील की, ''मुझे अध्यापक चाहिए, मुझे धर्मोपदेशक चाहिए, मुझे पुस्तकें चाहिए और साथ में चाहिए नौकरियां।'' इस अपील की प्रतिक्रिया अभिभूत करनेवाली थी। तिहाड़ मुख्यालय में प्रस्तावों की योजनाओं तथा व्यक्तिगत एवं संस्थागत स्वयंसेवकों के आवेदनपत्रों की बाढ़-सी आ गई।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने तिहाड़ के निवासियों और कर्मचारियों की उच्च शिक्षा के लिए तिहाड़ में शिक्षा केंद्र खोलने की घोषणा की। इस विश्वविद्यालय ने अपने नियमों में कुछ परिवर्तन करके जेल परिसर में ही परीक्षाएं नियोजित करने के लिए भी सहमति दे दी। इसने कैदियों को निःशुल्क शिक्षा, पाठ्य-सामग्री और सहायक दृश्य-श्रव्य शैक्षिक सामग्री देने का प्रस्ताव तो रखा ही, जेल में बिना किसी लागत के एक शैक्षिक वीडियो लाइब्रेरी स्थापित करने की पेशकश भी की।

प्रबंधन, कंप्यूटर, ग्रामीण विकास, पोषण, स्वास्थ्य सेवा और सृजनात्मक लेखक में डिप्लोमा के साथ ही स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी पढ़ाए जाने लगे। जेल-कर्मचारियों और बंदियों सहित पच्चीस व्यक्ति इस योजना का लाभ उठा चुके हैं।

जेल नंबर 4 में किशोरों का वार्ड भी है। इस जेल की देखरेख की ज़िम्मेदारी भारत विकास

परिषद ने अपने हाथ में ले ली है। जेल में खेल संबंधी गतिविधियों के लिए धन का प्रबंध भी परिषद करती है। कई अंतर-बैरक तथा अतंर्जेल खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया गया है। खेल की भावना से भरे स्वस्थ वातावरण का प्रभाव आज स्पष्ट देखा जा सकता है। किशोर वार्डों में खेलों को बढ़ावा देने की दृष्टि से क्रिकेट जगत के सितारों-सचिन तेंदुलकर तथा विनोद कांबली के नाम पर दो किशोर वार्डों का नाम 'सचिन' और 'कांबली' वार्ड रखा गया है।

कुछ कैदियों ने व्यवस्था को 'झांसा' देने के लिए बड़ी होशियारी से एक योजना बनाई थी जिसका पर्दाफ़ाश चौंकाने वाला है। इसे विस्तार से बताना होगा। जून 1993 में तीन डॉक्टर कुछ हेराफेरी करते हुए पकड़े गए और उनका तुरंत तबादला कर दिया गया। उनके काम करने का तरीका जल्दी ही सामने आ गया। हवालाती कैदियों की जब अदालत में पेशी होनी होती है तो पुलिस उन्हें अपनी हिरासत में दिए जाने की प्रार्थना करती है ताकि उनके मामले से संबद्ध सबूतों की खोज की जा सके। कुछ हवालाती कुछ डॉक्टरों को घूस देकर जाली चिकित्सा प्रमाण पत्र बनवा लेते हैं ताकि पुलिस हिरासत में जाने से बच सकें। कानून पुलिस किसी अभियुक्त को गिरफ़्तारी के बाद 15 दिन तक ही हिरासत में रख सकती है। डॉक्टरी प्रमाण पत्र के आधार पर वे अभियुक्त 15 दिनों का समय आराम से निकाल देते हैं।

डॉक्टरों के साथ इस प्रकार की साठगांठ से अनेक बंदियों को जेल में रहते हुए भी लगातार अपराध करने का अवसर मिलता रहता था। अप्रैल 1993 में बाड़ा हिंदूराव की पुलिस को फिरौती के लिए अपहरण करने वाले एक गिरोह का पता चला। इस गिरोह का सरगना अनिल और अमित त्यागी थे। ये दोनों ही उस समय तिहाड़ जेल में बंद थे।

महाराष्ट्र पॉलिटैक्निक के एक विद्यार्थी का अपहरण कर लिया गया था और उसके माता-पिता से एक ख़ास तारीख़ को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में अमित त्यागी से मिलने को कहा गया। उस दिन वह तिहाड़ के एक डॉक्टर के 'परामर्श' पर वहां स्वास्थ्य परीक्षण के लिए भेजा जा रहा था। इस बात का पता तभी चला कि वह वही अमित त्यागी है जो पहले के एक अपहरण केस में भी इस डॉक्टरी 'परामर्श' के ज़रिए एक लाख अस्सी हज़ार रुपए वसूल कर चुका है।

इस रहस्योद्घाटन से डॉक्टरों और कैदियों का वह गठबंधन प्रभावी ढंग से निर्मूल हो गया जो जेल की अनेक गंभीर समस्याओं की जड़ था।

लेकिन जेल का वातावरण अभी भी भयमुक्त नहीं था। चालीस के लगभग मुंडे और शातिर अपराधी सारी जेल में फैले हुए थे। उनके बीच बहुत पुरानी दुश्मनी और घृणा पनप रही थी। तनिक-सा अवसर पाते ही वे एक-दूसरे की जान ले लेने को तैयार रहते थे। बहुत-से हवालाती बंदियों के मन में वे अभी भी आतंक का पर्याय थे और अभी भी वे अपनी मनमानी चला लेते थे। अन्य अपराधियों को दिए जानेवाले अवसर उन्हें भी दिए जाते थे लेकिन सब बेकार। वे लगातार अपनी तबाही के रास्ते पर चल रहे थे। उन्हें चेताया भी जाता था पर इसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

यही वह दल था जो बंदियों पर जेल-सुधारों का विरोध करने के लिए दबाव डालता था। इन सुधार-प्रयासों के फलस्वरूप जेल में उनके रौबदाब और रुतबे पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था। अब तक बंदी होने के बावजूद वे धड़ल्ले से अपना काम चलाए जा रहे थे। इनकी भलाई तो इसी में थी कि जेल में वह पुरानी व्यवस्था ही चलती रहे।

इन पुराने अपराधियों में से किसी ने मुश्किल से ही कभी जेल का खाना खाया होगा। प्रत्येक कैदी को सप्ताह में दो दिन मुलाकात की इजाज़त मिलती है। इन मुलाकातों का प्रबंध इन्होंने कुछ इस प्रकार कर रखा था कि रोज़ इनमें से किसी-न-किसी के मुलाकाती घर का बना खाना लेकर आ जाते थे। मिलने आए लोग मुलाकात रजिस्टर में झूठे नाम और पते भरते और इन दलों के किसी ख़ास सदस्य से मिलने की मंजूरी ले लेते थे। जैसा कि बताया जा चुका है, पहले ये मुलाकातें निश्चित मुलाकात कक्ष में न होकर प्रशासनिक ब्लॉक के कमरों में होती थीं। नए प्रशासन में पुरानी प्रथा समाप्त कर दी गई थी किंतु इससे कोई विशेष अंतर नहीं आया क्योंकि आनेवालों की पहचान अभी भी गुप्त रखी जाती थी।

इसलिए इन दलों के सदस्यों को पहचान लिया गया और यह बता दिया गया कि इनसे मिलने के इच्छुक लोगों को मुलाकात से 24 घंटे पहले जेल-अधिकारियों से आज्ञा लेनी होगी। इस प्रबंध के जेल-अधिकारी आनेवालों के नाम और पतों की निश्चित जानकारी प्राप्त कर सकते थे। तब पता चला कि लगभग सभी के नाम और पते झूठे थे। यह स्पष्ट हो गया कि कोई भी इन गिरोहों के सदस्यों के साथ अपने संबंधों को खुलेआम जताना नहीं चाहता था। इसलिए ये मुलाकातें बंद हो गईं।

स्वाभाविक ही था कि इस बात से चिढ़कर इन बंदियों ने अपनी विघटनकारी गतिविधियां बढ़ा दीं और कल्याणकारी कार्यक्रमों का प्रतिकार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

नवंबर 1993 में इन सभी का तबादला जेल नंबर-1 की एक ही बैरक में कर दिया गया। अन्य बंदियों को जो सुविधाएं प्राप्त थीं वे इनसे तब तक के लिए छीन ली गई जब तक कि ये स्वयं को बदलने के लिए तैयार नहीं होते।

जोज़फ ओबी ने इन अपराधियों के एक ही वार्ड में लाए जाने के दृश्य को स्मरण करते हुए कहा, ''ये लगभग चालीस बंदे एक कतार में खड़े थे। इनके पास जो सामान था उसका क्या कहना। सबके पास अपने स्लीपिंग बैग, पोर्टेबल टी. वी. सेट तथा वीडियो प्लेयर थे। साफ़ लगता था कि यहां वे लोग बड़े ऐशो-आराम से रह रहे हैं। इसके बाद आई.जी. ने उनके नाम के साथ उनके सामान की सूची बनाई और उसे जेल की हिफ़ाज़त में रखने का आदेश दिया। प्रत्येक बंदी को उसके कोटे के अनुसार जेल से कंबल देकर उनके वार्ड में भेज दिया गया।''

छत पर लगे पंखों की सुविधा वापस ले ली गई। न कैंटीन की सुविधा, न विशेष मुलाकातें, न कोई खेल और न ही कोई पठन-सामग्री। यह कहिए कि उन्हें पूरी तरह से एकदम तनहा कर दिया गया। अधीक्षक ने बताया कि ''ये कुछ सुविधाएं हैं जो हम जेल में बंदियों को दे देते हैं। जेल-नियमावली के अनुसार यह सब करने को हम बाध्य नहीं हैं। इन्हें देने-न देने का निर्णय हम

पर छोड़ा गया है और जहां तक इन कैदियों का सवाल है, इनका व्यवहार और चालचलन इन सुविधाओं के योग्य नहीं था।''

जिस दिन उन्हें न्यायालय जाना होता पुलिस की गाड़ी उनके वार्ड तक जाती और उन्हें बैरक से सीधे ही गाड़ी में बैठाकर वहां ले जाया जाता।

वे भी इस प्रकार के व्यवहार को चुपचाप सहने वाले नहीं थे। प्रतिरोधस्वरूप उन्होंने न्यायालय में याचिकाएं दायर कर दीं।

न्यायालय ने उनका केस सुनकर एक अधिकारी को उनके रहन-सहन की स्थिति देखने के लिए भेजा। जेल के अधीक्षक के. आर. किशोर ने अपना हलफ़नामा दाखिल करके प्रभावशाली तरीके से प्रतिवाद किया।

न्यायालय ने अपने निर्णय में जेल प्रशासन द्वारा उठाए गए कदमों पर सहमति प्रकट करते हुए आई.जी. की प्रशंसा की और कहा कि ऐसे कदम बहुत पहले ही उठा लिए जाने चाहिए थे।

किंतु कैदे-तनहाई पर तो पाबंदी है?

किशोर तुरंत स्पष्ट करते हैं, ''हमारी जेल में कोई बंदी एकांतवासी नहीं है। अधिक सुरक्षावाले वार्डों के इन बंदियों को अपनी कोठरियां दी गई हैं। वे औरों से बातचीत कर सकते हैं और इनके सामने ही वार्ड का सहन है। खुद अपने सहन में ये एक-दूसरे से मिल भी सकते हैं। यह कैदे-तनहाई नहीं है जिसमें कैदी किसी और की सूरत भी नहीं देख सकता, न किसी और की आवाज़ ही सुन सकता है। इसकी इजाज़त नहीं है क्योंकि इससे कभी-कभी भयंकर स्नायु-रोग भी हो जाते हैं। यहां हम इन कैदियों को सिर्फ़ आम कैदियों से अलग कर देते हैं।''

तिहाड़ में शिक्षक के रूप में कार्यरत हवालाती कैदी 'गुरुजी' कहते हैं, ''ये बड़े-बड़े तस्कर और गुंडे दूसरे कैदियों को आतंकित करते रहते थे। इन सबको पहचानकर दूसरे कैदियों से अलग करके एक ही वार्ड की कोठरियों में पहुंचा दिया गया। इन्हें अपने वार्ड में भी घूमने की इजाज़त नहीं थी। पर अब खाने के समय इन्हें इकट्ठा होने की अनुमति मिल गई है। ताज्जुब की बात यह है कि अब वे आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं। इससे बाकी जेल को भी काफ़ी फ़ायदा हुआ है और मुझे विश्वास है कि पहली बार ये लोग भी कुछ सीख रहे हैं।''

जेल के बाकी कैदी इन नए परिवर्तनों में उत्साह से सक्रिय भाग ले रहे हैं- इस तथ्य से ही पता चल जाता है कि यह नीति प्रभावी हुई है और भीड़ को भड़काने या झंझट खड़ा करने वालों की इसके आगे एक न चलेगी।

जब भी किरण बेदी कैदियों के संपर्क में आई हैं उन्हें लगभग हमेशा ही उत्साहजनक और सकारात्मक प्रतिक्रिया मिली है। इससे स्पष्ट होता है कि कैदियों को उनमें आस्था है और कैदियों की स्थिति सुधारने के लिए वह जो कदम उठा रही हैं उनमें भी। ऐसी दशा में इन अलगाए हुए गुंडे कैदियों के अपने प्रति वैरभाव से उन्हें कुछ तकलीफ़ तो पहुंचती ही होगी?

''नहीं,'' किरण सोचते हुए उत्तर देती हैं, ''ऐसा कोई स्पष्ट वैरभाव नहीं है। मैं तो कहूंगी कि

उनका रुख़ काफ़ी-कुछ तटस्थ-सा है। देखिए, यह बात तो वे भी समझते हैं कि मैं जो कुछ भी कर रही हूं वह न तो उनके प्रति किसी विद्वेष से प्रेरित है और न मेरी अपनी व्यक्तिगत सहूलियत के लिए किया जा रहा है। उन्हें पता है मैंने अब तक कभी भी, किसी को भी बिना बात के गिरफ़्तार नहीं किया है। यह बात भी वे अच्छी तरह जानते हैं कि मैंने जब भी किसी को गिरफ़्तार किया है तो उसके केस को सिरे तक पहुंचाकर ही छोड़ा है। किसी बंदी से सहयोग न मिलने पर मैंने हथियार नहीं डाल दिए बल्कि उसके सुधार और पुनर्वास के लिए लगातार प्रयत्नशील रही हूं। इसके लिए मैं ऐसे लोगों के परिवारों से भी मिली हूं और जहां भी जरूरत पड़ी है मैंने पूरी क्षमता से उनकी मदद करने की कोशिश की है।''

वह एक विशिष्ट उदाहरण देती है : ''मुझे याद है कि जब मैंने एक गिरोह के कुख्यात सरगना विनोद त्यागी को गिरफ़्तार किया था, उसने कभी भी मेरे सामने अपने को निर्दोष साबित करने की कोशिश नहीं की। मुझसे उसने सिर्फ़ इतना ही कहा कि उसकी पत्नी की तबीयत कुछ ठीक नहीं है, तो हमने उसके उपयुक्त इलाज का इंतजाम कर दिया। उसे अस्पताल में भर्ती करवाया गया और उसकी प्रसूति निर्विघ्न संपन्न हुई। बाद में भी हम बराबर उसकी तबीयत की जानकारी लेते रहे। मुझे हमेशा लगा है कि किसी व्यक्ति को उसकी ग़लतियों की सज़ा तो मिलनी चाहिए लेकिन साथ ही हमें उसे सुधारकर एक बेहतर इन्सान बनाने की कोशिशों में भी कमी नहीं करनी चाहिए। अभी उच्च सुरक्षा वाले वार्डों में एक कैदी है जिसने उन दिनों विनोद त्यागी के साथ भी कुछ समय जेल में बिताया था। वह भी मानता है कि मैंने उसके साथ कोई गलत व्यवहार नहीं किया है।''

अंत में किरण का आशावाद मुखर हो उठता है, ''मैं जानती हूं, ये लोग अंत में मेरी बात जरूर सुनेंगे। तब मैं धीरे-धीरे इन्हें भी सारी सुविधाएं दिलवाने लगूंगी।''

अपनी नेकनीयती का प्रमाण देते हुए किरण ने इन अलगाए हुए ख़तरनाक अपराधियों के लिए उनकी बैरकों में ही 1994 के विंबल्डन टेनिस मैंचों तथा विश्व-कप फुटबाल मैंचों के टी. वी. प्रसारण दिखलाने की व्यवस्था कर दी थी।

बाहर की स्वयंसेवी संस्थाओं से मदद मांगी गई और केंद्रीय स्वास्थ्य सेवा योजना के तत्त्वावधान में जेल के अंदर आयुर्वेद और होम्योपैथी का मिला-जुला दवाख़ाना खोला गया। दवाओं की नियमित खरीद भी होती थी और वे दान में भी स्वीकार की जाती थीं इस प्रकार उनकी मौजूदगी सुनिश्चित रखी जाती थी ताकि जेल की स्वास्थ्य सेवा का स्तर सुधर सके।

साल के अंत में तमाम सूचना-पट्टों पर याचिकाओं और सुझावों का जो ब्यौरा लगाया जाता था उससे इस कार्य के प्रभाव का पता चलता है। जून 1993 में चिकित्सा सुविधा संबंधी शिकायतों की संख्या 231 थी। दिसंबर 1994 में यह संख्या घटते-घटते सिर्फ़ 27 रह गई थी। साथ ही रोगियों को अस्पताल ले जाने के परामर्शों की संख्या भी बहुत कम हो गई थी।

26 जनवरी, 1994 का दिन इस स्वास्थ्य रक्षा कार्यक्रम के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण था। तिहाड़ में इसे स्वास्थ्य रक्षा दिवस के रूप में मनाया गया। पांच सौ से अधिक चिकित्साकर्मी तथा

उपचिकत्साकर्मी अत्याधुनिक चिकित्सा उपकरण लेकर जेल में आए। विभिन्न क्षेत्रों तथा विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों के प्रतिष्ठित विशेषज्ञों ने तिहाड़ में पूरा दिन बिताया। 8,500 बंदियों में लगभग हर एक का, और बच्चों का भी पूरा डॉक्टरी मुआयना हुआ। कैदियों को अलग-अलग रंग के कार्ड दिए गए जिनसे आसानी से पता चल सके कि किसी रोगी को विशेष चिकित्सा की जरूरत है या नहीं इस वर्गीकरण से जेल के नियमित चिकित्साकर्मियों को हर कैदी के स्वास्थ्य की स्थिति का ब्यौरा रखने में सुविधा हो गई।

दिल्ली सरकार के स्वास्थ्य मंत्री डॉ. हर्षवर्धन स्वयं नाक-कान-गला विशेषज्ञ हैं। उन्होंने भी उस दिन बहुत सारे कैदियों का परीक्षण किया। स्वयं किरण बेदी भी इस अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकीं।

इस कार्यक्रम को आगे चलाते हुए आंखों की देखभाल से जुड़ी एक स्वयंसेवी संस्था 'वेणु' के जेल में नियमित रूप से आने की व्यवस्था की गई। इसी प्रकार 'होप फाउंडेशन' जेल में दंत सुरक्षा संबंधी कार्यक्रम चलाता है। एड्स संबंधी शिक्षा का कार्यक्रम भी चलता रहता है। नई दिल्ली स्थित एक गैर-सरकारी संगठन इस विश्वास के आधार पर जेल में काम कर रहा है कि आधुनिक जीवन के तनावों के फलस्वरूप युवा पीढ़ी का आचार-व्यवहार बदलता जा रहा है। इस संगठन के अनुसार होम्योपैथिक दवाओं और समुचित परामर्श के माध्यम से इन तनावों के नकारात्मक प्रभावों को सुधारा जा सकता है।

चिकित्सक समुदाय के साथ और अधिक संबंध बनाने की योजना है और फ़िलहाल विभिन्न विशेषज्ञों के नियमित रूप से जेल में आकर रोगियों को देखने की योजना का ख़ाका बन रहा है।

चिकित्सा के साथ-ही-साथ आहार तथा स्वच्छता संबंधी समस्याओं पर भी ध्यान दिया जा रहा है। बंदियों को दो समय खाना दिया जाता था जिसमें रोज़-रोज़ वही रोटी और दाल या सब्जी मिलती थी। सुबह के नाश्ते में दो टुकड़े डबलरोटी के साथ चाय और साथ में सप्ताह में निश्चित संख्या में अंडे। अब सप्ताह में एक बार खीर मिलने लगी। खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता पर ध्यान दिया गया और यह सुनिश्चित किया गया कि वे सिर्फ़ सरकार सुपर बाज़ार से ख़रीदें जाएंगे।

दयाल सिंह अपनी 14 वर्ष की सज़ा में से 13 वर्ष से अधिक जेल में व्यतीत कर चुका है। वह बहुत ही विश्वास के साथ कहता है, ''जी हां, जेल से छूटने के बाद मैं शादी के बड़े-बड़े भोजों का भी प्रबंध कर सकूंगा। मुझे लगता है कि अब तक मुझे काफ़ी तजुर्बा हो चुका है।''

और क्यों नहीं? वह उस दल का एक सदस्य है जो जेल के साढ़े-आठ हज़ार से भी अधिक निवासियों में से ढाई हज़ार से अधिक लोगों के लिए प्रतिदिन दोपहर और रात का खाना तैयार करता है।

पिछले वर्षों में अनेक बंदी हैज़ा के शिकार हो चुके हैं। इस बीमारी का मुख्य कारण जेल परिसर में प्रतिदिन जमा होने वाला ढेर-का-ढेर कूड़ा-करकट था। जब 8,500 से भी अधिक व्यक्ति एक बंद वातावरण में रहते हों तो यह कूड़ा-करकट किसी भी महामारी का कारण बन

सकता है। अव्यवस्था के कारण यह गंदगी सड़ने के लिए छोड़ दी जाती थी जो अब एक दुर्गंध भरा बजबजाता घिनौना ढेर बन गया था। वर्तमान जेल प्रशासन ने नगरपालिका अधिकारियों से निवेदन किया था कि वे अपने ट्रकों में भरकर इस गंदगी को दूर करें। वे अधिकारी पहले तो टालमटोल करते रहे और बाद में इस कार्य से पड़नेवाले आर्थिक बोझ का हवाला देकर कन्नी काट गए। तब राज्य के संबद्ध विभाग से निवेदन किया गया कि वे एक ट्रिपर ट्रक खरीदने के लिए रकम की मंजूरी दें। पर यह निवेदन इस आधार पर ठुकरा दिया गया कि बाद में जेल-अधिकारियों को ट्रक के रखरखाव में दिक्कत होगी। इस विषय में उनका परामर्श था कि निजी ट्रक को किराए पर मंगवाकर किराए की रकम की अदायगी जेल-बजट में से कर दी जाए। तत्काल कोई अन्य विकल्प न होने के कारण यही सलाह अपनाई गई। किंतु फिर देखा गया कि इससे जेल-बजट में से प्रतिवर्ष अनुमानत: इक्कीस लाख रुपए खर्च करने होंगे। उसी समय जब एस-सी-वत्स ने बंबई के एक्सेल उद्योग के प्रबंध निदेशक के.सी.श्रॉफ़ को सारी स्थिति बताई तो तिहाड़ की सहायता के लिए उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया। तिहाड़ में चल रहे क्रांतिकारी सुधारों के विषय में उन्होंने समाचार पत्रों में पढ़ा था। अब उन्होंने तमाम जैविक गंदगी को गंधहीन, गुणकारी खाद में बदलने का प्रस्ताव रखा और इसके लिए अपनी कंपनी की ओर से विशेषज्ञ सहायता देने को तैयार हो गए। इस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार कर लिया गया और कुछ ही दिनों में इस परियोजना का शुभारंभ हो गया। एक्सेल कंपनी ने रासायनिक पदार्थ और जानकारी प्रदान की तथा जेल-निवासियों ने परियोजना चलाने के लिए अपनी सेवाएं अर्पित कीं। यह दुर्गंधरहित, बेहद उपजाऊ जैविक खाद सब्जी के खेतों में इस्तेमाल के लिए जेल द्वारा स्थानीय नर्सरियों को बेची जाती है। जेल में प्रतिदिन तीन हजार किलो जैविक गंदगी से तैयार होनेवाली उन्नत किस्म की खाद से बंदियों के कल्याण कोष को प्रतिवर्ष 21 लाख रुपए की राशि प्राप्त होने की आशा है। परिणामस्वरूप एक ओर ग्यारह लाख रुपए प्रतिवर्ष का ख़र्च बचेगा और दूसरी तरफ़ उस पर दस लाख रुपए का शुद्ध लाभ होगा। तात्पर्य यह कि वर्ष के अंत में 21 लाख रुपए हाथ में होंगे।

19

नए मानदण्डों की स्थापना

सुरक्षा और निरीक्षण के लिए तिहाड़ में 1,500 अधिकारी और जवान हैं। उनके कल्याण का ध्यान रखना भी जेल प्रशासन की ही जिम्मेदारी है।

उप-अधीक्षक जरियाल कहते हैं, ''कैदियों के रहन-सहन की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए जेल-कर्मचारियों से भी बहुत-कुछ करने की अपेक्षा की गई है। उन्होंने सचमुच बहुत मेहनत की है और उनके रुख़ में भी काफ़ी बदलाव आया है। इसलिए अब उनके कल्याण पर ध्यान देना भी उतना ही जरूरी है। यह पेशा व्यक्ति से पूरी निष्ठा की मांग करता है और इसमें काम के समय की कोई सीमा नहीं है। कभी-कभी तो किसी को घंटों अतिरिक्त समय देना पड़ता है। उसकी सामाजिक और पारिवारिक ज़िम्मेदारियों पर इस बात का असर निश्चित रूप से पड़ता है।''

कर्मचारियों के कल्याण के लिए बहुत-से काम किए जा रहे हैं। कर्मचारियों के परिवारों की महिलाओं, जैसे पत्नी, पुत्री आदि के लिए एक संस्थान खोला गया है जहां उन्हें सिलाई, कढ़ाई आदि अनेक शिल्प सिखाए जाते हैं। यह कदम इसलिए उठाया गया है कि परिवार की आय में वृद्धि हो सके। फिल्ट्रेक्स इंडिया के मालिक गुलशन सीकरी ने कर्मचारियों के परिवारों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया है जिसमें उन्हें मोटरकार उद्योग के लिए फिल्टर बनाने की तालीम दी जाती है। प्रशिक्षण के दौरान प्रत्येक सदस्य को 30 रु- प्रतिदिन प्राप्त होंगे। प्रशिक्षण के पश्चात् एक से दो हज़ार रुपए प्रतिमाह आय सुनिश्चित है। जेल में कर्मचारियों के काम करने के घंटों को कुछ इस प्रकार वितरित किया गया है कि वे अब अपने परिवारों के साथ अधिक समय व्यतीत कर सकते हैं।

उप-अधीक्षक ने कर्मचारियों के वेतन के विषय में बात स्पष्ट करते हुए कहा, ''तीसरे वेतन आयोग ने जेल-कर्मचारियों, विशेष रूप से छोटे पदोंवाले कर्मचारियों के वेतन को दिल्ली पुलिस के बराबर कर दिया था। किंतु चौथे वेतन आयोग में हमें पीछे छोड़ दिया क्योंकि हमारा प्रतिनिधि उसमें मौजूद नहीं था। यह मामला अदालत में ले जाया गया, जहां हमारी मांगों को उचित ठहराया गया। सच तो यह है कि दिल्ली के मुख्यमंत्री ने घोषणा भी कर दी है कि यह काम तुरंत हो जाएगा तथा बकाया राशि देने के काम को भी शीघ्र पूरा किया जाएगा (हालांकि आज तक यह वादा केवल वादा ही है)।''

तिहाड़ में सुखद और हितकर परिवर्तन हो रहे थे और कैदी उन्हें उत्साह से गले भी लगा रहे थे। इसी का नतीजा है कि उन्होंने मौखिक और लिखित दोनों प्रकार से व्यायाम तथा योग की कक्षाओं के लिए अनुरोध करना आरंभ कर दिया। अनुरोध उचित था और इसे तुरंत स्वीकृति भी मिल गई।

दूरदर्शन के प्रसिद्ध योग-प्रशिक्षक सरदारीलाल सहगल से संपर्क किया गया। जेल में योग की कक्षाएं चलाने को वे तुरंत तैयार हो गए। जेल-निवासी अपनी बैरकों के टी.वी.सेटों पर पहले ही उन्हें योग-प्रशिक्षण देते हुए देख चुके थे, इसलिए किसी प्रकार के परिचय की आवश्यकता नहीं थी।

सरदारीलाल बताते हैं, ''जून 1993 में जब योग की कक्षा आरंभ हुई तो उसमें सिर्फ छः लोग थे किंतु एक महीने के अंदर ही लगभग 90 लोग नियमित रूप से आने लगे। छोटी आयु वालों में अधिक उत्साह दिखाई दे रहा है।''

शीघ्र ही बाहर से दो और प्रशिक्षकों को नियुक्त कर लिया गया। जेल नंबर 4 के अधीक्षक के अनुसार, ''1993 के अंत तक ढाई सौ बंदी प्रतिदिन इन कक्षाओं में आने लगे थे। यह संख्या तो केवल जेल नंबर 4 की है।''

18 दिसंबर, 1993 को दिल्ली के मुख्यमंत्री ने तिहाड़ जेल का दौरा किया। वह आई.जी. (जेल) के प्रयासों से तथा इन प्रयासों के फलस्वरूप जेल प्रशासन में , पूरे जेल के हालात और कैदियों की दशा में आए परिवर्तनों से बहुत प्रभावित हुए। इन परिवर्तनों को वह बखूबी पहचान सकते थे क्योंकि वह स्वयं आपातकाल के दौरान 13 महीने इसी जेल में बंदी रहे थे। वह इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि वह जेल की ड्यूटी के अतिरिक्त और कामों में भी किरण की सहायता लेना चाहेंगे।

29 दिसंबर, 1993 में द हिंदू में एक समाचार छपा जो इस प्रकार था :

दिल्ली के मुख्यमंत्री को किरण बेदी की सहायता की आवश्यकता

आज मुख्यमंत्री मदनलाल खुराना ने कहा, ''दिल्ली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए मुझे श्रीमती किरण बेदी की सहायता की आवश्यकता है।''

तिहाड़ जेल के परिसर में आयोजित एक समारोह में बोलते हुए श्री खुराना ने कहा, दिल्ली की आई. जी. (जेल) श्रीमती किरण बेदी ने जेल में अनेक सुधार आरंभ किए हैं। ''हम भी दिल्ली में क्रांतिकारी परिवर्तनों की योजना बना रहे हैं। इसके लिए मुझे श्रीमती किरण बेदी की सहायता की आवश्यकता है।''

श्री खुराना ने आगे कहा, ''पिछले वर्षों में मैं अनेक बार श्रीमती बेदी के साथ झगड़ चुका हूं, किंतु उन झगड़ों में कुछ भी व्यक्तिगत नहीं था। मुझे इन पर गर्व है।''

श्री खुराना के वापस लौटते समय अनेक जेल-अधिकारियों ने उनसे अनुरोध किया कि तिहाड़ से श्रीमती बेदी का स्थानांतरण न करें। यदि ऐसा हुआ तो जेल-कर्मचारी बंदियों सहित उनके निवास पर धरना देंगे। श्रीमती बेदी सारी बातें सुन रही थीं। वह बीच में ही

टोककर बोलीं, ''मैं तो गिरफ़्तार हो गई।''

20

ध्यान के माध्यम से सुधार

4 नवंबर, 1993 को विपश्यना साधना संस्थान ने तिहाड़ की आई.जी. से संपर्क किया और ध्यान संबंधी एक विशेष पद्धति से संबद्ध अपनी विशेषज्ञ सेवाएं अर्पित करने का प्रस्ताव भेजा। इस संस्थान की स्थापना भारतीय मूल के बर्मी नागरिक एस एन गोयनका ने की थी। उन्होंने इस विज्ञान की शिक्षा बर्मा के ध्यान विशेषज्ञ अपने गुरु सायाग्यी यम बा खिन से प्राप्त की थी। यह सदियों पुराना विज्ञान है। कहते हैं, ढाई हज़ार वर्ष पहले भगवान बुद्ध ने इसका पुनरुद्धार किया था। राजस्थान के घरेलू मामलात विभाग के सेवानिवृत्त सचिव रामसिंह ने इस तकनीक के विषय में जानकारी देते हुए बताया, ''यह ऐसी ध्यान-पद्धति है जिसमें विपस्वी अपने-आपको सत्य के यथार्थ स्वरूप का प्रेक्षण करते हुए देखता है। इससे उसमें आत्मान्वेषण की क्षमता आती है।'' वह आगे बताते हैं :

> व्यक्ति स्वयं अपने अनुभव के माध्यम से देखता है- मस्तिष्क तथा भौतिक तत्त्व परस्पर इतने जुड़े हुए हैं कि मन में सुखद, दु:खद या तटस्थ, किसी भी प्रकार विचार आते ही वह शारीरिक प्रतिक्रिया के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। तब हम मस्तिष्क में स्थित विचार का मूल्यांकन कर सकते हैं और उसकी वास्तविक प्रकृति को समझ सकते हैं। केवल उस समझ के ज़रिए ही हम अपने विचारों का वर्तन कर सकते हैं। प्रतिक्रिया समाप्त होकर क्रिया आरंभ होती है। इससे व्यक्ति में अपने मस्तिष्क को नियंत्रण में रखने की क्षमता आती है। अब वह बाहरी विश्व के साथ और अच्छी तरह संवाद कर सकता है। इस तकनीक के माध्यम से एक ओर तो मनुष्य में क्रमश: आत्मनिरीक्षण की सामर्थ्य आती जाती है और दूसरी ओर उसका चित्त निर्मल हो जाता है। यह निर्मल, शांत और आनंदमय जीवन का मार्ग है।

तिहाड़वासियों को यह तकनीक समझाई गई और उनमें से लगभग 70 लोग दस दिन के प्रशिक्षण के लिए आगे आए। एक बैरक सिर्फ़ उनके और रामसिंह के लिए दे दी गई। इस अवधि के लिए विपस्वियों ने मौन व्रत ले लिया क्योंकि उनके बीच किसी भी प्रकार के संवाद का निषेध था। उनकी दिनचर्या प्रात: चार बजे आरंभ होती। पूरे दिन में समय-समय पर कुल मिलाकर आठ घंटे का ध्यान होता था। पहले तीन दिन के ध्यान में केवल अपनी सांस तथा इसे लेने-छोड़ने की क्रिया के प्रति सचेतनता जगाने की चेष्टा की गई। इस बीच यदि खुजली आदि जैसी कोई शारीरिक परेशानी होती भी तो उसकी अनदेखी कर देना था। अगले सात दिनों में उन्होंने शरीर की विभिन्न संवेदनाओं के प्रति सचेत होने का प्रयास किया। अवलोकन तथा

नियंत्रण की इस क्रिया से निर्मलता की प्रक्रिया आरंभ होती है जिससे कष्टों से संपूर्ण मुक्ति पाने का मार्ग प्रशस्त होता है। इससे व्यक्ति का संपूर्ण व्यक्तित्व ही बदल जाता है।

जब किरण से पूछा गया कि क्या वह पाठ्यक्रम प्रभावशाली रहा, तो उन्होंने उत्साहपूर्वक हामी भरी :

> लगभग सौ बंदियों और जेल-कर्मचारियों में इस पाठ्यक्रम से 95 प्रतिशत तक परिवर्तन स्पष्ट दिखाई दे रहा है- अधिकांश लोगों ने शराब और धूम्रपान त्याग दिया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके दृष्टिकोण में बड़ा भारी परिवर्तन आया है। उनमें से अनेक ने जुर्मों का इकबाल भी कर लिया है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। अब वे कहते हैं कि वे अपने गुनाहों का प्रायश्चित करना चाहते हैं। इसके अलावा ऐसा लगता है कि उन्हें कुंठाओं और तनावों से भी छुटकारा मिल गया है और निश्चित रूप से अब वे अधिक शांत और सहज हैं। संभवत: उनके विचार अब अच्छाई की ओर ही उन्मुख रहते हैं।

ध्यान के प्रशिक्षण से होने वाले लाभों पर किरण को इतना विश्वास हो गया कि इसके लिए एक स्थायी वार्ड बनाया जा रहा है ताकि बंदी वर्ष-भर विपश्यना पाठ्यक्रम में भाग ले सकें। यह सुविधा महिला बंदियों को भी दी जाएगी (वास्तव में यह सुविधा उन्हें अब मिल भी चुकी है)।

जेलवासियों से बात की गई तो उन पर ध्यान के चमत्कारिक प्रभाव को देखकर बहुत ही हैरानी हुई। टी. पी. सिंह अपने जीजा की हत्या के आरोप में साढ़े-नौ वर्ष से अधिक समय इस जेल में व्यतीत कर चुका है। उसका कहना है कि उसका अपने माता-पिता से बहुत मतभेद भी और उन्होंने ही उसे फंसाया है। ''नौ साल तक मैंने अपने अंदर बदले की आग को ठंडा नहीं होने दिया। इस पूरे समय में मेरे माता-पिता एक दिन भी मुझसे मिलने नहीं आए-एक बार भी नहीं। पर अब मैंने चिट्ठी लिखकर उनसे सिर्फ़ एक बार आकर मिल जाने का अनुरोध किया है। मैं सचमुच उनके पैर छूकर यहां भेजने के लिए उनका शुक्रिया अदा करना चाहता हूं क्योंकि भाग्य को इसी रास्ते से मुझे अपने गुरु से मिलाना था। अब मेरे मन में उनके लिए केवल कृतज्ञता है और कुछ नहीं।''

कश्मीरी युवक बशीर एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत सज़ा काट रहा है। उसका दावा है कि उसे एक प्रभावशाली कश्मीरी व्यापारी ने फंसाया था, जिससे उसने अपनी बकाया रकम की मांग की थी। उसकी सज़ा के दिनों में ही उसकी बच्ची का देहांत हो गया और उसे बेटी के अंतिम संस्कार में भाग लेने की अनुमति भी नहीं दी गई। वह कहता है कि इसी कारण उसके मन में कड़वाहट भर गई और यही कारण है कि वह सदा चिड़चिड़ा और तनावयुक्त रहता और कभी भी रात के एक या दो बजे से पहले सो नहीं पाता था। इस ध्यान-प्रशिक्षण के दौरान चौथे दिन उसे अचानक ख़याल आया कि पिछले दो दिन से वह रात को नौ बजे ही गहरी नींद में सो जाता है। इस बात पर वह बहुत ही हैरान था। उसने स्वयं बताया कि नींद पूरी हो जाने के कारण वह प्रात: चार बजे तरोताज़ा उठता है। उसने स्वयं बताया:

'' मेरी परेशानी यह थी कि मुझे कभी भी दिल और दिमाग़ का सकून नहीं मिला। मैंने अपनी मां को यहां तक लिख दिया था कि वह भूल जाए कि मैं कभी था भी। अगर मैं जेल से बाहर आ जाता तो भी कोई फ़ायदा नहीं होता। मेरा अपना घर ही मेरे लिए जेल बन जाता। एक दिन मैंने कुछ कैदियों को इस विपश्यना के बारे में बातें करते हुए सुना। पहले-पहल तो मेरे दिमाग़ में ही बात आई कि यह हिंदू धर्म की कोई शिक्षा है। हालांकि मैं मुसलमान हूं, फिर भी मैंने एक बार इसे आज़माकर देखना चाहा। इस कोर्स के दौरान ही मेरी समझ में आ गया कि इसका ताल्लुक मज़हब से नहीं है, न किसी मज़हब इसके आड़े आता है। यह तो इन्सान के बर्ताव और सोच को सुधारने का एक तरीका-भर है। आज मैं समझता हूं कि मैंने अपने-आपको पा लिया है। मेरे दिलो-दिमाग में सकून है। मैं अपने-आपसे पूछता हूं, क्या मैं जेल में हूं? मैं चारों तरफ देखता हूं। मेरी आंखें कहती हैं-हां। पर मेरा दिल कहता है- नहीं। आज मैं आज़ाद हूं।''

जेल नंबर 4 का वासी सुभाष बड़े दार्शनिक भाव से अपने में आए परिवर्तनों का उल्लेख करता है :

मैंने यह सीख लिया है कि चीज़ें हमारे जीवन में कठिनाइयां खड़ी करती हैं, वे कहीं बाहर नहीं, हमारे भीतर ही हैं- चाहे वह क्रोध हो, ईर्ष्या हो, कामुकता हो, लालच हो अथवा बदले की भावना या कुछ और। इन सब दोषों को भली भांति पहचानकर हमें उन्हें दूर करना होगा। यहां बिताए पिछले चार सालों में मैं बराबर उन लोगों से बदला लेने की योजनाएं बनाता रहता था जिनकी वजह से मुझे जेल आना पड़ा। पर अब मैं समझ रहा हूं कि यह किसी और का दोष नहीं था। मेरी अपनी भावनाएं ही इसका कारण थीं। मैं जैसा था वैसा न होता तो मैं वह न करता जो मैंने किया। अब मैं अपने-आपको समझ रहा हूं और लगता है कि मेरे मन में कड़वाहट और क्रोध विलीन हो गए हैं। मैंने अब संकल्प कर लिया है कि अपने अंदर की तमाम बुराइयों को धो डालूंगा। आज मैं जो कुछ महसूस कर रहा हूं, उससे लगता है भविष्य में मैं कभी कोई अपराध नहीं करूंगा।

टाडा के अंतर्गत बंदी अमरीक सिंह ने अपनी प्रतिक्रिया एक उदाहरण के माध्यम से दी, ''यह तो गूंगे का गुड़ है। गूंगा गुड़ का स्वाद बताए तो कैसे? कोशिश करेगा तो परेशान ही होगा। विपश्यना का असर भी ऐसा ही है। इसे समझाया नहीं जा सकता, सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है। इसके अनुभव से ही इसके फ़ायदों का पता चलता है और यह पता चलता है कि यह आदमी के व्यक्तित्व को किस तरह सांगोपांग बदल देती है।''

प्रशासनिक कर्मचारियों में से भी कइयों ने इस ध्यान-प्रशिक्षण में भाग लिया था। परिणामस्वरूप बंदियों के प्रति उनके दृष्टिकोण में स्पष्ट परिवर्तन आया है। जेल परिसर में मानवीय वातावरण व्याप्त हो गया है और भय का दौर मानो समाप्त हो गया है। कर्मचारियों के परिवारों के सदस्यों ने भी कहा कि इस प्रशिक्षण के बाद उनका घरेलू जीवन कहीं बेहतर हो गया है।

ऐसे ही एक कोर्स की समाप्ति के अवसर पर अपने भाषण में किरण ने कहा, ''हमारे स्टाफ़

के सदस्यों ने भी इस कोर्स में प्रशिक्षण लिया है। चार जेलों में से एक जेल के अधीक्षक तरसेम कुमार, उप-अधीक्षक वी.पी. गर्ग, एम.एस. रित्तू और सुनील गुप्ता और कुछ वार्डन तथा सह अधीक्षकों ने भी यह कोर्स किया है। इसलिए यह अवसर सिर्फ़ आपके लिए या सिर्फ़ हमारे लिए नहीं है। यह ऐसा अवसर है जिसका लाभ हम सब मिलकर सामूहिक रूप से उठा सकते हैं। यह ऐसा सुअवसर है जिससे हम सब मिलकर एक बड़ा परिवार बना सकते हैं और साथ मिलकर अपने को पहचानना सीख सकते हैं।''

4 अप्रैल, 1994 को तिहाड़ की जेल नंबर 4 में एक अनोखी घटना घटी जब एक हज़ार से अधिक पुरुष बंदियों और साठ महिला बंदियों ने अलग-अलग विपश्यना कोर्स में भाग लिया। इसके पहले कभी भी इतने बड़े पैमाने पर कैदियों ने स्वेच्छा से कोई भी ऐसा कोर्स नहीं किया था और वह भी ऐसा कोर्स जिसमें ग्यारह दिन के लिए परस्पर संवाद-संपर्क अथवा बोलचाल पर प्रतिबंध हो, जिसके लिए मौन व्रत आवश्यक हो। जेल में इस प्रकार की बात पहले कभी देखने में नहीं आई। मठों-विहारों, आश्रमों में ऐसा होता आया है, किंतु जेलों में कभी नहीं।

विपश्यना मिशन के अध्यक्ष गुरु एस.एन. गोयनका ने कार्यक्रम की बागडोर स्वयं अपने हाथ में ली। कोर्स के तीसरे दिन उन्होंने बहुत ही शांत, नम्र और स्नेह भरे स्वर में महिला विपस्वियों को स्वयं संबोधित किया :

आप लोग श्वास ले रही हैं, आप लोग श्वास की प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित कर रही हैं। जैसे ही यह आपके ऊपरी होंठ और नथुनों के स्थान के बीच आए, इसे महसूस कीजिए-अनुभव कीजिए। आपके नथुनों के ऊपर नासिका के अंदर आसपास श्वास बाहर आता है, महसूस कीजिए... महसूस कीजिए...निरंतर सचेतन रहिए, महसूस कीजिए-अब। आज आपने श्वास के विषय में जानकारी प्राप्त की, कैसे यह त्वचा को छूता है-जैसे ही यह छूता है...छूता है...क्या आपने महसूस किया? क्या आपको तनिक-सी सुरसुराहट महसूस हुई?...इस पर ध्यान लगाइए...ध्यान दीजिए...यह चली जाएगी...नहीं?...दो सेकंड के लिए श्वास रोकिए...अब पुनः श्वास लीजिए...फिर वहीं लौट आइए...यह चली जाएगी। ऐसा हर श्वास के साथ होता है। रगड़ से सुरसुराहट पैदा होती है... किंतु आज आपको इसका बोध हुआ है। जागरूक रहिए...धीरे-धीरे क्रमशः आप अपने ध्यान और चेतना को शरीर के अन्य प्रकार्यों की ओर मोड़ना भी सीखेंगे...। ये प्रकार्य हमेशा चलते रहते हैं, बिना रुके...अनवरत...पर आपको इनका पता नहीं चलता। अब आपको इनका बोध होगा।

यही विपश्यना है। यह कोई धर्म नहीं है, यह स्वयं को, अपने मस्तिष्क को पहचानने की प्रणाली है, और इससे आचार-विचार, समझ-बूझ और बर्ताव अच्छे, और अच्छे होते जाते हैं।

विपश्यना को शल्यचिकित्सा के रूप में भी देखा जा सकता है। यह मस्तिष्क की शल्यचिकित्सा है। यह अच्छे आचरण, सही आचरण तथा नैतिक आचरण की नियमावली का धर्म है।

महिला विपस्वियों ने एकाग्र तन्मयता से इसे लगभग मंत्रमुग्ध कर देने वाले प्रवचन को सुना। गुरु गोयनका ने उनसे कहा, ''मन में कोई प्रश्न हो, समस्या हो तो निस्संकोच पूछो।''

अनेक आवाज़ें सुनाई दीं। एक आवाज़ एक सिख बंदिनी की थी। उसे प्रतिदिन पाठ करने की आदत थी। इस कोर्स में चूंकि पूर्ण तल्लीनता की आवश्यकता थी, वह पाठ नहीं कर पा रही थी। यह बात उसे अत्यंत कष्ट दे रही थी। गुरुजी ने उत्तर दिया, ''बेटी, तुम अपना पाठ वर्षों से प्रतिदिन नियमपूर्वक करती आ रही हो। इस कोर्स से तुम्हें सही नैतिक आचरण पर ध्यान लगाने में सहायता मिलती है। यह एक प्रकार का ध्यान है। अपने धर्म या विश्वास से हटे बिना ही तुम एक तरीका सीख रही हो। इसके लिए तुम्हें पूर्ण एकाग्रता की जरूरत है। इन दिनों तुम ध्यान भटका नहीं सकतीं। ग्यारह दिन के बाद तुम अपना पाठ फिर से आरंभ कर देना। देखना, तुम्हारी लगन और बढ़ जाएगी। जो कुछ तुम करोगी उसे और अच्छी तरह समझ सकोगी। तुम्हें तो दोहरा लाभ होगा-पहला, तुम्हारे धर्म से और दूसरा, तुम्हारे आचरण से।''

एक ब्रितानी लड़की एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अंतर्गत सज़ा भुगत रही है और तिहाड़ में चार वर्षों से भी अधिक समय से है। उसे एक शारीरिक समस्या का सामना करना पड़ रहा है। उसके मन में दुविधा थी कि वह इस कोर्स को पूरा कर पाएगी या नहीं, क्योंकि उसे कभी-कभी उबकाई-सी आती थी और उसे लगता था कि इस शारीरिक असुविधा के चलते उससे कोर्स नहीं हो पाएगा।

गुरुजी ने उसे उत्तर दिया, ''पर तुम डरती क्यों हो? तुम्हारा तो आपरेशन हो रहा है। यदि डॉक्टर तुम्हारे शरीर पर हुए किसी फोड़े को काटे तो क्या उसमें से मवाद नहीं निकलेगा? तुम्हारे मस्तिष्क की सर्जरी हो रही है। तुम्हारे भीतर जो कुछ गलत है, वह बहकर बाहर आ रहा है। यह तुम्हारे अंदर मवाद की तरह था। इसे बाहर बहने दो। तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि यह बाहर बह रहा है।'' लड़की आंसू भरी आंखें लेकर साधना-स्थल पर लौट आई-और उसकी मुद्रा से शांति झलक रही थी।

जेल नंबर 2 के अधीक्षक तरसेम कुमार ने इस कोर्स के आरंभ होने के तीन सप्ताह बाद विपश्यना पर सर्वेक्षण दिया। दो भागों में परिचर्चाओं का प्रबंध हुआ। पहली बातचीत उन बंदियों के साथ थी जिन्होंने इस कोर्स को किया और दूसरी उनके कमरों में रहनेवाले साथियों के साथ, ताकि पता चल सके कि पहले वाले जो दावे करते हैं वे कहां तक ठीक हैं। इस कार्य का प्रतिभागियों पर कितना गुणकारी प्रभाव पड़ा था इसका पता इस बातचीत के निष्कर्षों से लगता है :

1. 96 प्रतिशत लोग अब अपने क्रोध को काबू में रख सकते हैं। 4 प्रतिशत पूरा नियंत्रण तो नहीं रख सकते किंतु वे पहले जितना क्रोधित नहीं होते।
2. 90 प्रतिशत लोगों का तनाव कम हुआ है और काफी हद तक दिमागी शांति मिली है।
3. 96 प्रतिशत अब अपनी पसंद के विषय पर एकाग्र हो सकते हैं।
4. सारे-के-सारे बंदियों का रवैया अपने साथियों और कर्मचारियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण तथा

करुणापूर्ण हो गया है।
5. 98 प्रतिशत का स्वास्थ्य अब पहले से बहुत अच्छा है। अब उन्हें बार-बार पेट-दर्द, सिर-दर्द और अन्य छोटी-मोटी बीमारियां नहीं सतातीं।
6. लगभग सभी अधिक सत्यवादी बन गए हैं।
7. 66 प्रतिशत ने अपने अतीत के विषय में सोचना छोड़ दिया है और वर्तमान पर ध्यान दे रहे हैं।
8. 86 प्रतिशत में सहन-शक्ति बढ़ गई है और इसलिए स्वार्थ-भावना कम हो गई है।
9. सभी को लगता है कि उनका आत्मानुशासन बेहतर हो गया है।
10. 88 प्रतिशत दिन में दो बार नियमित रूप से ध्यान करते हैं, 6 प्रतिशत दिन में एक बार और 6 प्रतिशत अनियमित रूप से।

कर्मचारियों के बीच हुए सर्वेक्षण से निम्नलिखित तथ्य उजागर हुए :

1. अपनी ड्यूटी के प्रति लगाव और निष्ठा में वृद्धि।
2. व्यवहार के तरीके में सकारात्मक परिवर्तन।
3. बंदियों के साथ रिश्तों में सुधार।

एक गोरा अमरीकी हवालाती नौजवान अपना नाम नहीं देना चाहता पर तिहाड़ में हुए परिवर्तनों से वह विशेष प्रभावित नहीं है, ''देखिए, यहां कुछ विशेष नहीं हो रहा। हमारे अपने मानवाधिकार हैं। उनकी इज्जत होनी ही चाहिए। हम जानवर नहीं हैं भाई, इसलिए हमारे साथ मानवीय व्यवहार होना चाहिए। सच तो यह है कि हमें अभी बहुत-कुछ मिलना बाकी है। इसलिए आई. जी. साहिबा जो कुछ भी कर रही हैं वह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।''

विल्फ्रेड एक पुराना बंदी है। उसने टोकते हुए कहा, ''इस आदमी को यहां सिर्फ़ 6 महीने ही हुए हैं, जुम्मा-जुम्मा आठ दिन। मैं यहां पिछले वर्षों से ऊपर से हूं। पहले हमारे अधिकारों के विषय में कौन सोचता था? हमें पीटा जाता था, गालियां मिलती थीं, और, खाना? वैसा खाना तो गली के कुत्तों को भी नहीं दिया जाता। अब जाकर हमारे साथ इन्सानों-जैसा व्यवहार होता है। अरे भाई, इतने कम समय में लोगों के रवैये में परिवर्तन लाने के लिए हिम्मत चाहिए। मेरे विचार से वह यहां बहुत बड़ा काम कर रही हैं। किंतु मुझे चिंता इस बात की है उनके तबादले के बाद यहां क्या होगा? क्या गुज़रे दिन और ज्यादा सख़्ती के साथ लौट आएंगे?''

21

तिहाड-घटनाओं का केन्द्रबिंदु

प्रसार माध्यमों का चहेता तथा तिहाड़ जेल का अत्यंत प्रसिद्धि-प्राप्त बंदी चार्ल्स शोभराज अनेक आरोपों के कारण अभियुक्त के रूप में दस वर्ष से अधिक समय यहां व्यतीत कर चुका है। इन आरोपों में वे आरोप भी शामिल हैं जो 1986 में तिहाड़ से फ़रार होने के बाद उस पर जड़ दिए गए थे। बाद में उसे गिरफ़्तार कर वापस ले आया गया। वह जेल में किरण बेदी के आने के बाद से घटने वाली घटनाओं से बहुत प्रभावित हुआ है। चार्ल्स का कहना है :

भारतीय प्रणाली के अंतर्गत परिवर्तन लाना बहुत ही कठिन कार्य है। यह काम कोई हिम्मतवाला ही कर सकता है। यहां जो कुछ हो रहा है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है, मेरा विचार है कि इसका लाभ दूसरों तक भी पहुंचना चाहिए, केवल भारत में ही नहीं, विदेशों में भी।

मैं महसूस करता हूं कि जो कुछ हो रहा है उससे बंदियों के आत्मसम्मान का कुछ भाग उन्हें वापिस मिल रहा है। जब मैं पहली बार यहां आया तो कैदियों के दब्बूपन को देखकर हैरान था, विशेषकर गरीब कैदी तो बेचारे बराबर डर से कांपते रहते थे। अब उनके साथ कुछ हद तक सम्मानजनक व्यवहार होता ही है। यही कारण है कि अब वे जेल प्रशासन पर विश्वास करने लगे हैं।

आईजी ने स्वयं आगे होकर बंदियों के साथ पारस्परिक विश्वास का संबंध स्थापित किया है। उनका बल सकारात्मक कार्यों पर है। उनका रवैया ''यह रोक दो!'', ''ऐसा मत करो'' वाला नहीं अपितु ''यह करो'', ''इसका प्रयास करो'' वाला है। लगता है, उन्हें विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर कुछ-न-कुछ अच्छाई होती है, इसलिए वह हर एक को सुधरने का अवसर देना चाहती हैं।

इस तरह एक व्यवहारवादी तरीका अपना रही हैं। किसी व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए पहले लोगों के दिमाग में परिवर्तन लाना पड़ता है। यहां तो हृदय, मनोवृति और व्यवस्था सब कुछ विलायती था। अंग्रेज़ों के लिए तो यह सब ठीक था क्योंकि भारत उनका उपनिवेश मात्र था। किंतु स्वतंत्रता के बाद भी यहां कोई परिवर्तन नहीं किया गया। मुल्ला आयोग द्वारा प्रस्तावित सुधार ठंडे बस्ते में पड़े हैं। कोई भी कुछ करना नहीं चाहता।

इससे पहले यहां शक्ति-संतुलन नहीं था। सब कुछ जेल-कर्मचारियों के हाथों में था। सौ रुपए में एक अतिरिक्त कंबल और पांच सौ में अपनी बैरक में टीवी मिल सकता था। अर्थात कीमत चुकाने पर आपको कुछ भी मिल सकता था। किंतु अब वे सब चीजें बंदियों को विशेषाधिकारों के रूप में दी जाती हैं। इन कारणों से छोटे कर्मचारियों में काफ़ी नाराज़गी थी। पहले उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन और सुधार की जरूरत थी-बंदियों की बारी तो बाद

में आती थी।

केवल मानवता के कारण ही ये परिवर्तन संभव हो सके हैं। बंदियों की मानवता भी धीरे-धीरे जागी है, और उनके दिल से भय दूर हो गया है।

देखिए, प्रत्येक जेल की ड्योढ़ी में अलार्म सायरन लगा हुआ है। पहले हर तीसरे-चौथे दिन सायरन बजना एक आम बात थी। इसका मुख्य कारण बंदियों में परस्पर लड़ाई-झगड़ा होता था। मई 1993 से एक बार भी यह सायरन नहीं बजा-एक बार भी नहीं। आप मेरा मतलब समझ गए न?

सायरन सबसे तेज़ बजा था, सितंबर 1990 में एक दिन। इस दिन सुरक्षा घेरे की दीवार में छेद करने के लिए कैदियों ने कंबल में लिपटे गैस सिलेंडरों को दीवार से सटाकर सुलगाने की कोशिश की थी। हज़ारों कैदी दीवार पर चढ़कर जनाने बैरक में जाने या बैरक के फाटक को तोड़ने का प्रयास कर रहे थे। यह दंगा तभी शांत हुआ जब तमिलनाडु विशेष पुलिस के जवानों ने गोलियां चलाईं और इससे दस कैदी मारे गए। दंगा क्यों हुआ, इसे लेकर कैदियों का कहना है कि उनके बार-बार गुहार करने पर भी उनके एक बीमार साथी को डॉक्टरी सहायता नहीं दी गई थी। आख़िर डॉक्टरी उपेक्षा के कारण उसकी मृत्यु हो गई और इन लोगों का विक्षोभ भड़क उठा।

मगर तब से अब तक स्थिति में ज़मीन-आसमान का अंतर आ गया है। अब ऐसा लगता है कि तिहाड़ के कैदियों को जेल-कर्मचारियों में पूर्ण आस्था है और विश्वास है कि ये कर्मचारी उनके जीवन को अधिक सुखद बनाने का और उसे एक नई दिशा देने का प्रयास करेंगे। किरण इस विषय में अत्यंत संवेदनशील थीं और अपने कर्मचारियों को भी बार-बार याद दिलाती रहती थीं :

हमें 9500 बंदियों के प्रति सदा आभारी रहना चाहिए। इन्होंने हमें अपना दिल दिया और यही वे लोग हैं जिनके माध्यम से हम अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हुए हैं। सहयोग, अनुशासन और नियम-पालन की भावना द्वारा जो योगदान उन्होंने हमारे कार्य में दिया है उसे हमें कभी भूलना नहीं चाहिए। हमने जो कुछ किया वह हमारा कर्तव्य था।

इस व्यवस्था में जो सबसे बड़ा परिवर्तन मुझे दिखाई दे रहा है, वह यह है कि तुम लोग सुरक्षा-गार्डों के स्थान पर समय-प्रबंधक बन गए हो। साढ़े-आठ हज़ार लोगों की दिनचर्या को रचनात्मक तथा संतोषजनक कार्यों में बांटने के प्रबंध की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर लेकर तुम लोगों ने बहुत बड़ा काम किया है। तुमसे बढ़कर ज़िम्मेदारी किसी और पर नहीं है।

कर्मचारी भी, स्पष्ट ही , नेतृत्व की इस शुभ चिंता को समझते हैं। उनके सहयोग तथा नवीन कर्तव्य बोध के कारण ही तिहाड़ में सुधार इतनी तेज़ी से कार्यान्वित हो सके। मई 1993 में किरण को विरासत के रूप में सतर्कता संबंधी 127 मामले मिले थे, जिनमें बहुत सारे मामले मुअत्तली तथा विभागीय जांच से संबद्ध थे। जब उन्होंने तिहाड़ को छोड़ा उस समय कर्मचारियों के विरुद्ध मामलों की कुल संख्या केवल 31 थी जिनमें मुअत्तली के मामले बहुत ही कम थे।

किरण ने हर मामले को गुण-दोष के आधार पर लिया। जिन कर्मचारियों को अपने स्वार्थ की ख़ातिर नियमों का उल्लंघन करने या उन्हें तोड़ने के कारण सज़ा के लायक पाया गया वे आज की तारीख़ तक जेल काट रहे हैं। बाकी सबको दोषमुक्त कर दिया गया।

स्टाफ़ को यह बात बिलकुल साफ़-साफ़ समझा दी गई कि ''नियमों के उल्लंघन के हर मामले की जांच उस मामले के गुण-दोष के अनुसार ही होगी। कोई इस जेल के साथ धोखाधड़ी करेगा तो उसे मुअत्तल नहीं किया जाएगा बल्कि सीधे जेल अधिनियम के तहत कैद कर लिया जाएगा। मजिस्ट्रेट-स्तर की छानबीन एक महीने के अंदर पूरी कर ली जाएगी। दोषी पाए जाने पर अभियुक्त को तुरंत नौकरी से निकाल दिया जाएगा। मुअत्तली बिलकुल नहीं होगी। हम ऐसे व्यक्तियों को यह अनुमति नहीं देंगे कि वे अपनी आय का 80 प्रतिशत अंश भी लेते रहें और साथ में कोई-न-कोई काम-धंधा भी करते रहें। यह तरीका पहले चलता था। हम इसे गलत समझते हैं और इसका अनुसरण नहीं करेंगे। जो अपनी ड्यूटी नहीं करते उन्हें देने के लिए हमारे पास पैसा नहीं है।''

बहुत ही उद्विग्न किरण कहती हैं, ''जरा सोचिए तो, हमें कैसी भयंकर परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। जेल में किसी भी प्रकार की प्रशिक्षण-व्यवस्था थी ही नहीं। 1958 में यह जेल बनी थी। क्या आप विश्वास करेंगे कि तब से यहां कोई प्रशिक्षण नियमावली बनी ही नहीं। न कोई स्कूल, न कोई प्रशिक्षण केंद्र, कुछ भी नहीं। ट्रेनिंग की कोई धारणा नहीं थी, न ट्रेनिंग के लिए कोई स्थान था। ट्रेनिंग का कोई साज़ो-सामान भी नहीं था। मैं हैरान हूं। यह तो अब जाकर हॉल में दो क्षेत्रीय संस्थान बने हैं- एक चंडीगढ़ में और दूसरा वेल्लोर में।''

फिर भी इस दिशा में प्रयास आवश्यक थे क्योंकि प्रशिक्षण ही जेल को सुधार-केंद्र के रूप में चलाने की पूरी अवधारणा का केंद्र था। इसलिए उप-अधीक्षकों के लिए प्रशिक्षण का एक सघन पाठ्यक्रम आरंभ किया गया।

''इस कोर्स की पहली प्रतिक्रिया ने मुझे पूरी तरह से हिला दिया, ''किरण ने स्वीकार किया। ''मेरे कर्मियों को उन मूल बातों का भी पता नहीं था जिनके आधार पर उन्हें अपना आचरण तय करना था। नियमों की जानकारी से वे कोसों दूर थे। किंतु और अपेक्षा भी क्या की जा सकती थी?''

इन लोगों को नौकरी मिली और तुरंत काम में लगा दिया गया। काम का दबाव तब भी इतना ही रहा होगा जितना अब है। मतलब स्टाफ़ की कमी रही होगी। किरण बेदी ने घटनाओं को परिप्रेक्ष्य में रखा:

> यहां कानून की कोई ट्रेनिंग नहीं थी, सुधारों के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं था। जेल-अधिनियम के विषय में किसी प्रकार का ज्ञान उन्हें नहीं था। जेल-नियमावली को कोई उसी समय पढ़ता था जब उसके विरुद्ध कोई जांच-आदेश जारी होता था।

मैं किसी भी तरह समझौता नहीं कर सकती थी। उनको थोड़ा-सा प्रशिक्षण तो अवश्य ही मिलना चाहिए था, नहीं तो हमारे प्रयास बिलकुल ही ठप हो जाते।

तो, दो सप्ताह का कोर्स आरंभ किया गया-एक घंटा प्रतिदिन। दोपहर को जब बंदियों को बैरकों में बंद कर दिया जाता है तब कर्मचारियों को दो या ढाई घंटे का ख़ाली समय मिलता है। यही वह समय है जब वे घर जाकर कुछ देर परिवार के साथ रह सकते हैं। इसी समय में से मैंने एक घंटा लिया। मैं जानती थी, यह उनके लिए कष्टकर होगा किंतु मैं और कर भी क्या सकती थी?

आरंभ में वे बेहद असंतुष्ट दिखाई देते थे क्योंकि योजना के विषय में उनके मन में संदेह था। वे यही सोचते थे कि जेल के बारे में हम उन्हें भला क्या प्रशिक्षण दे सकते हैं? हम इसके कोई विशेषज्ञ तो थे नहीं। पर शीघ्र ही उन्हें पता चल गया कि अपनी परिस्थितियों के विषय में वे कितना कम जानते हैं। उन्हें समझ में आ गया कि वे केवल चौकीदारी कर रहे हैं जबकि उनका वास्तविक कार्य है समय-प्रबंधन और सुधार।

इस कार्यक्रम की सफलता-असफलता के बारे में मुझ तक जो सूचना पहुंची उससे पता चला कि ये लोग और अधिक प्रशिक्षण के लिए उत्सुक हो उठे हैं। वे नहीं चाहते थे कि इसे संक्षिप्त करके केवल दो सप्ताह में सीमित कर दिया जाए। उनकी इच्छा थी कि प्रशिक्षण और व्यापक तथा अधिक ब्यौरेवार और विस्तृत हो। इसके बाद हमने लंबे कोर्स का आयोजन किया। दो सप्ताह वाला कोर्स अब बढ़कर चार महीने का हो गया है जिसमें प्रतिदिन एक घंटा लेक्चर होता है।

हमारे पास जेल-नियमावली तो है किंतु उसमें भी यह स्पष्ट नहीं है कि उप-अधीक्षक की ड्यूटी क्या होती है। आज वे तरह-तरह की ड्यूटी में उलझे रहते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि आख़िर किसी-न-किसी को तो यह काम करना ही है। नियमावली में कहीं उन पर कोई विशेष ज़िम्मेदारी नहीं सौंपी गई है और न ही यह निर्दिष्ट किया गया है कि वे क्या कर सकते हैं और उन्हें क्या करना चाहिए। वे आजकल मेडिकल ड्यूटी और कैंटीन ड्यूटी करते हैं तथा साथ ही सज़ायाफ़्ता कैदी विभाग की शिक्षा की निगरानी भी करते हैं। वे कानूनी विभाग, अस्पताल विभाग और जनसंपर्क विभाग चलाना आदि कल्याण कार्यों से भी जुड़े हुए हैं। दरअसल वे नौकरी में रहते हुए ही अपनी ड्यूटी की जानकारी हासिल कर रहे हैं। ज़ाहिर है कि यहां हमें फैले-बिखरे काम को समेटकर चुस्त बनाना था। हमें उनकी ड्यूटी की सूची बनानी थी, उसे नियमित करना था तथा उसे भविष्य के लिए एक दस्तावेज़ के तौर पर छोड़ना था।

जी हां, इसी उद्देश्य से हमने नई, अधिक सोद्देश्य और प्रभावी नियमावली बनाने का काम किया, जिससे हमारे बाद आनेवालों को जेल में मानवीय वातावरण बनाने के लिए वह सब न भुगतना पड़े जो हमने भुगता।

तिहाड़ में प्रबंध में भागीदारी की प्रणाली विकसित की गई और वहां के बंदी भी इसमें पूरा सहयोग देने को तैयार थे। जेल नंबर 2 के अधीक्षक तरसेम कुमार ने इस कार्यक्रम के विषय में विस्तार से बताया, ''हमने यहां पंचायत प्रणाली विकसित की है। कैदी यहां जो समय व्यतीत करते हैं उसे लाभकारी बनाने के हमारे प्रयासों में यह सहायक होगी। यहां सांस्कृतिक पंचायत, भोजनालय संबंधी पंचायत तथा शिक्षा पंचायत है। इस व्यवस्था के अनुसरण में बंदियों को कोई

परेशानी नहीं हो रही है क्योंकि वह बिलकुल देशी प्रणाली है। समस्याओं में अधिकतर तो छोटी-मोटी प्रशासनिक समस्याएं ही होती हैं। वे इन पंचायतों में स्वयं बंदियों द्वारा ही सुलझा ली जाती हैं। इससे हमारा बोझ काफ़ी कम हो गया है।''

जेल नंबर 3 की अपनी शिक्षा परिषद है जो विभिन्न शैक्षिक, व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों की देखभाल करती है। यह परिषद नियमित रूप से परियोजना रिपोर्ट बनाती है और सुझाव देती है जिनका प्रशासनिक अधिकारी सोच-समझकर अध्ययन करते हैं, और आमतौर पर इन्हें लागू भी कर दिया जाता है।

बहुत-सारी संगोष्ठियां आयोजित की गईं जिनमें कैदी ही मुख्य प्रतिभागी थे। ये संगोष्ठियां 'अपराध क्यों?' 'विपश्यना की आवश्यकता' आदि विषयों को लेकर होती थीं।

अधीक्षक ने बताया, ''इन्हीं संगोष्ठियों के माध्यम से हमारे पास अनेक सुझाव आते हैं। ये मानो कार्यशालाएं होती हैं जहां नए कार्यक्रम ढाले जाते हैं। संगोष्ठी के प्रतिभागी ही प्रस्तावित परिवर्तन के लक्ष्य होते हैं और चूंकि इन परिवर्तनों के सुझाव भी इन्हीं की ओर से आते हैं अत: उन्हें सभी लोग आसानी से अपना लेते हैं।''

जेल नंबर 2 की फैक्ट्री इसी भागीदारी और तालमेल के कारण आत्मनिर्भरता के स्तर पर पहुंच गई है। तरसेम कुमार आगे बताते हैं, ''हमारी फैक्ट्री में करघों की कमी थी। हमने सोचा था कि लुधियाना से कुछ करघे मंगवा लें लेकिन कैदियों ने कहा कि करघे वे स्वयं बनाएंगे। अब ऐसे पांच करघे तो बन चुके हैं और पांच और अभी बन रहे हैं। इससे हमारा उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया है। हमने इस फैक्ट्री में खेस, सूती शालें, सूती झाड़न, वर्दी का कपड़ा आदि बनाना शुरू कर दिया है। बढ़ईगीरी विभाग में हमने बड़ी-बड़ी चीज़ें बनाने का फैसला किया है जिनकी ग्राहकों में ज़्यादा मांग दिखाई देती है।''

उन्होंने अपनी अन्य गतिविधियों और योजनाओं के विषय में आगे बताया, ''सिलाई विभाग में हमने खादी ग्रामोद्योग से सिलाई का ठेका लिया जो बहुत ही लाभकारी रहा। रासायनिक विभाग में हमने खुद अपना गंधक का साबुन बनाना आरंभ कर दिया है जिसकी कैदियों को लंबे समय से आवश्यकता महसूस हो रही थी। अब हमारी योजना है कि जेल के बाहर हम अपनी फैक्ट्री का शो-रूम खोलें। इससे हमारे उत्पादों की बिक्री में बहुत सहायता मिलेगी। इससे प्राप्त सारा मुनाफ़ा बंदी कल्याण कोष में ही जाता है।''

एक अन्य बंदी सतेंद्र कुमार ने सेंट्रल जेल नंबर 4 से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका नवचेतना में लिखा है :

> जुलाई 1993 से सेंट्रल जेल नंबर 4 में कानूनी सहायता कार्यक्रम चला गया। इस कार्यक्रम का लक्ष्य उन कैदियों को कानूनी सहायता पहुंचाना है जो खुद कोई वकील करने में असमर्थ हैं। एक एडवोकेट जेल में आते हैं और विचाराधीन कैदियों-सतेंद्र कुमार तथा प्रीतपाल सिंह की मदद से कैदियों की अर्जियों तथा याचिकाओं का मसौदा बनाकर तथा टाइप करवाकर विभिन्न अदालतों में भेजा करते हैं। जो कैदी चाहे उनकी मदद ले सकता है।

दिल्ली कानून सहायता तथा परामर्श बोर्ड की मदद से स्थापित कानूनी सहायता सेल से अनेक बंदी लाभ उठा चुके हैं। इस सेल द्वारा तैयार की गई याचिकाओं के आधार पर अनेक बंदी जमानत पर रिहा हो चुके हैं। इस सेल के माध्यम से ही अनेक बंदी दिल्ली हाईकोर्ट में अपील भी दायर कर चुके हैं। मुकदमों की सुनवाई में देरी समाप्त करने के प्रयोजन से कानूनी सहायता सेल ने जो याचिकाएं दाख़िल की हैं उनके परिणामस्वरूप दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिल्ली प्रशासन को निर्देश दिए हैं कि एन.डी.पी.एस. से संबद्ध मामलों को शीघ्र निपटाने के लिए दस और विशेष अदालतें स्थापित की जाएं। इस प्रकार के अनेक मामलों को दिल्ली के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश श्री कुलदीप सिंह की अदालत से स्थानांतरित कर दिया गया है। अब अदालत की तारीखें पहले की अपेक्षा जल्दी-जल्दी मिलने लगी हैं। कानूनी सहायता सेल का एडवोकेट पहले सप्ताह में तीन दिन जेल में आता था। पर अब कैदियों को उनके मामलों से संबद्ध कानूनी मुद्दों की तालीम देने के लिए इन दिनों की संख्या बढ़ा दी गई है। जेल प्रशासन के सहयोग से कानूनी सेवा में सुधार के संकेत मिले हैं।

जेल नंबर 3 के अधीक्षक डी. पी. द्विवेदी ने अपने बंदियों को श्रमदान योजना के अंतर्गत सहयोग देने के लिए कहा। प्रसन्नमुख द्विवेदीजी बताते हैं कि ''बंदियों ने ज़रा भी आनाकानी नहीं की और एक ही सप्ताह में पूरी जेल की सूरत बदल गई-सारी इमारतें साफ़-सुथरी और दीवारों पर नई सफ़ेदी। हम पीडब्ल्यूडी को यह काम सौंपने की योजना बना रहे थे, किंतु हमारे बंदियों ने प्रस्ताव रखा कि यह काम वे स्वयं करेंगे। इससे बढ़िया काम की हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे।''

सभी अधीक्षकों ने मिलकर इस प्रकार के कार्यों को अपनी ड्यूटी का हिस्सा बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। उनका कहना था कि जेल-नियमावली में चाहे कितने ही नियम या निर्देश दिए जाएं, जब तक वे अपना काम पूरे मन से न करें वह संतोषजनक नहीं हो सकता। केवल इसी से व्यवस्था में जीवंतता आ सकती है और यह तिहाड़ की स्थायी उपलब्धि होगी।

तिहाड़ में हो रहे वर्तमान परिवर्तनों और सुधारों से यह तो तय है कि वहां रहने वालों की स्थिति में काफ़ी सुधार हो रहा है और आगे भी होगा। किंतु अंतिम लक्ष्य तो है जेल व्यवस्था को अपराध-निरोधक बनाना। इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

किरण बेदी ने कुछ सोचकर इस प्रश्न का उत्तर दिया :

सबसे बड़ी त्रासदी तो मुझे यह दिखाई देती है कि प्रशासनिक व्यवस्था में कोई तालमेल नहीं है। सैद्धांतिक रूप से हर विभाग दूसरे विभागों से जुड़ा है, लेकिन फिर भी वह बिलकुल अलग और अकेले करता है। एक विभाग को दूसरे विभागों के कार्यों की जानकारी तक नहीं होती। हमने दंड-न्याय को कभी भी समग्र दृष्टि से नहीं देखा है। पुलिस की समझ में यह नहीं आता कि हम जेल में क्या और क्यों कर रहे हैं। हम उन्हें बहुत-सारी बातें बता सकते हैं, पर उनके पास हमारे लिए समय ही नहीं है। आख़िर हम दोनों ही अपराध-दर को नीचे लाना चाहते हैं। तो, वे अगर जेल-प्राधिकारियों के साथ मिल-जुलकर काम करें और

पुलिस बल में संवेदनशीलता की भावना विकसित करें तो बहुत-कुछ हो सकता है। यदि हम अपने प्रयासों को बनाए रखना चाहते हैं तो हमें उनके प्रशिक्षण में अपनी जानकारी का भी कुछ निवेश करना चाहिए। इसके लिए अपराध-निरोधक कार्यक्रम का विकास करना भी बहुत आवश्यक है। एक समन्यवकारी व्यवस्था और समन्वयकारी कौशल का विकास भी ज़रूरी है। किंतु इस प्रकार का समन्वय केवल राजनीतिक नेतृत्व से ही आ सकता है- वह चाहे गृहमंत्री के स्तर पर हो अथवा गृहसचिव के स्तर पर। उन्हें मात्र स्पष्टीकरण मांगना छोड़कर सहयोग और समन्वय की शक्तियों को विकसित करना चिाहए। सिर्फ़ रपट मांगकर डांट-फटकार करने के स्थान पर कुछ बड़े मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करके उनसे जूझना चाहिए। मैं केवल आदर्श नहीं बघार रही हूं। यह प्रबंधन का कार्य है जिसे भली प्रकार समझा और सीखा जा सकता है। इस समन्वय से पुलिस, न्यायपालिका और जेल-जैसे परस्पर संबद्ध विभागों के बीच तालमेल स्थापित होगा।

अपराध-व्यसन को हम कैसे रोक सकते हैं? सबसे पहले हमें इसके कारण को जानने की आवश्यकता है। जेल से छूट चुके लोगों की गतिविधि की जानकारी जेल में पहुंचना ज़रूरी है। पुलिस यह जानकारी ले सकती है। रिहा किए गए अपराधियों की गतिविधियों की मासिक रिपोर्ट ली जा सकती है। केवल पुलिस ही हमें बता सकती है कि वह कौन-से अपराध-व्यसन निरोधक कदम उठा रही है और अपराध रोकने के लिए उसकी क्या योजना है।

आख़िरी चीज़ है-जनता। भूतपूर्व बंदियों के समाज में पुनर्वास की देखरेख का कार्य स्वयंसेवी संस्थाएं अपने हाथ में ले सकती हैं। ग़ैर-सरकारी संगठन भी इस क्षेत्र में बहुत-कुछ कर सकते हैं।

आज स्थिति यह है कि हमें कहा जाता है, ''मुझे कुछ मत कहो, मैं न्यायपालिका हूं'' या ''मैं पुलिस हूं।'' मगर वैसे प्रत्येक विभाग एक-दूसरे की जब चाहे आलोचना कर बैठता है। यही कारण है कि समन्वय राजनीतिक स्तर पर, अर्थात मंत्रालय के स्तर पर ही हो सकता है। तभी मंत्रालय व्यक्ति विशेष से कहेगा, ''आप इस कार्यक्रम में फिट नहीं बैठते हैं। क्यों न आपको कहीं और रखा जाए, जहां आपका विशिष्ट रवैया अधिक उपयुक्त रहेगा?''

पश्चिम में और कुछ एशिया-प्रशांत क्षेत्रों में भी इसी प्रकार काम हो रहा है। वहां बहुत-से ऐसे अधिकारी होते हैं जो काम पूरा होने के बाद की स्थिति पर नज़र रखते हैं। इस क्षेत्र में हम बहुत पीछे हैं। लेकिन कम-से-कम अब हम अपनी समस्याओं को जान गए हैं और यह जानना ही उनके हल की अच्छी शुरुआत है।

हमने जेल में बंदियों के धूम्रपान पर प्रतिबंध लगा दिया है क्योंकि व्यक्ति को इसकी उत्तेजना का व्यसन भी उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार किसी अन्य मादक पदार्थ की उत्तेजना का। सिगरेट पीनेवालों को धूम्रपान नुकसानदेह नहीं लगता किंतु उनकी स्वास्थ्य प्रबंधक होने के नाते मैं इससे भुलावे में नहीं आ सकती। जैसी नशीली दवाओं का कुप्रभाव

होता है, वैसे ही धूम्रपान का भी। इससे श्वास नली और फेफड़ों की असंख्य बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। यदि आपकी जिंदगी की ज़िम्मेदारी खुद आप पर है और इसकी देखभाल के लिए ख़र्च भी आप ही कर रहे हैं, तो मुझे इससे कोई लेना-देना नहीं है। पर जब कैदी को स्वस्थ रखने की ज़िम्मेदारी मेरी है, जब उसके शारीरिक रख-रखाव पर खर्च करने की जिम्मेदारी मेरी है और यह खर्च मुझे उन संसाधनों में से करना है जो वैसे ही अधिक वरीयता के योग्य हैं और जो अधिक लाभकर कार्यों के लिए कम पड़ते हैं।, तब मुझे स्वयं अपनी दृष्टि से ही चुनाव करना होगा। जेल में लोगों की भीड़ को तो ज़रा देखिए? जो जगह बीस के लिए है वहां अस्सी बंदी रखे जाते हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि जो धूम्रपान नहीं करते उनका क्या हाल होता है? अनचाहे ही तंबाकू का धुआँ उनके फेफड़ों में जाता है। जब तक मैं वहां थी अनेक बंदियों का श्वासनली की बीमारी और तपेदिक का इलाज हो रहा था। आख़िर उनके इलाज के लिए पैसा कहां से आता है? जेल-बजट से ही न। इसलिए आप भले ही हमें पसंद करें या न करें, आपकी आदत को बढ़ावा देने के लिए न हमारे पास पैसा है और न ही ऐसा करने की हमारी इच्छा है।

22

उत्तरदायी नेतृत्व : प्रेरक बल

तिहाड़ में जिस तेज़ी और पैनेपन से परिवर्तन लाए गए उसे देखकर सबके-सब, विशेषकर जेल का कर्मचारी वर्ग, स्तंभित-से रह गए थे। पिछले वर्षों में तिहाड़ में जिस भ्रष्टाचार और अध:पतन का बोलबाला था, चाहे या अनचाहे, वे सभी-के-सभी उसके हिस्सेदार थे। उन्हें तो मानो परिवर्तन का यह बवंडर उड़ा ही ले चला। इस अविश्वसनीय कायापलट का श्रेय किसी और को नहीं, सिर्फ़ एक व्यक्ति के चमत्कारी नेतृत्व को दिया जा सकता है। तिहाड़-जैसे स्थान के लिए ऐसा नेतृत्व अत्यंत आवश्यक था और बड़े ही सौभाग्य की बात है कि सही समय पर उसे यह मिल भी गया। इस स्थान पर ज़रा-से विषयांतर का प्रलोभन रोकना मुश्किल है मगर यह विषयांतर भी उन गुणों की चर्चा के लिए ज़रूरी है जो ऐसे नेतृत्व के लिए अपरिहार्य होते हैं।

स्वाभाविक रूप से ही किरण में सबसे प्रमुख गुण यह है कि वह उन्हीं कामों के लिए वचनबद्ध होती हैं जिनका यथार्थ में पालन संभव हो और उन कामों को दिए हुए समय के अंदर कर भी दिखाती है। इस तरह वचन देकर फिर काम कर दिखाने का दुर्दमनीय आवेग इनकी प्रकृति का ही हिस्सा है। इसके बाद आती है, बिना हिचक या सहमे, स्वेच्छा से ज़िम्मेदारी उठा लेने की प्रवृत्ति, और अपने विश्वास पर दृढ़ रहने का उनमें साहस है।

उनमें दूसरे भी अनेक गुण हैं, जैसे एक ऐसा खुला और ईमानदार माहौल रचने की क्षमता जिसमें हर व्यक्ति के शारीरिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक कल्याण का प्रावधान हो। साथ ही उनमें अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर भरोसा और विश्वास करने की क्षमता भी है जिससे उन्हें भी प्रेरणा मिलती है कि नए-से-नए विकास की जानकारी रखें और अपनी ग़लतियों को ईमानदारी से स्वीकार कर लें। इससे दल के उनकी मनोवृत्ति भी बदलती है और वे केवल दिए गए आदेशों का पालन करने के स्थान पर खुद भी कई कामों में पहल करने लगते हैं।

लोग क्या कहेंगे, इसकी परवाह किए बग़ैर सही बात के लिए खड़े होने का जो साहस किरण में है उसे देखकर उनके कर्मचारियों का आत्मविश्वास भी बढ़ता है। अपने कर्मचारियों और सत्ताधारियों के बीच दीवार बनकर उन्हें बचाते हुए सारे धक्के अपने ऊपर झेल लेने की किरण में क्षमता है, भले ही इसके कारण उन्हें कितने ही मानसिक तनाव और दबाव क्यों न सहने पड़े। इस वजह से कर्मचारियों के मन में उनके प्रति गहरी निष्ठा और प्रतिबद्धता आ जाती है।

ऐसे नेतृत्व के लिए ज़रूरी है कि नेता में तुरंत निर्णय लेने की क्षमता भी हो और प्रवृत्ति भी और साथ ही उन निर्णयों को कार्यान्वित करने की लगन भी।

अवधारणाओं, कार्यनीति तथा कार्यान्वयन की युक्तियों को सुसंगठित और सशक्त रूप से लागू करने का रुझान भी उसमें होना चाहिए।

दीर्घकालिक नेतृत्व की प्रेरक शक्ति होता है-हाथ में लिए गए कार्य को पूरा करने का उत्साह। यही वह विशेषता है जिसकी वजह से व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप दक्षता से काम कर पाता है और संपर्क में आने वालों को तत्काल प्रेरित भी कर देता है।

अगर कार्य में पहल करना नेता की निशानी है तो अपने अधीनस्थ लोगों में इस क्षमता का विकास करना भी उसकी विशेषता है। अच्छे नेतृत्व के साथ निकट संपर्क से अनुयायियों में भी ऐसे गुण अनिवार्यत: आ ही जाते हैं और इसी से नेता की ग़ैर-मौजूदगी में भी कार्य उसी प्रकार चलता रहता है।

एक मूलभूत विशेषता है- ईमानदारी, जिसे लेकर किसी समझौते की गुंजाइश नहीं होती। सच्चाई का स्थान बहुत ऊँचा होता है और इसकी राह पर चलने से व्यक्ति में निष्कपट और मुक्त संवाद की प्रवृत्ति बढ़ती है।

नेता में युक्तियुक्त निर्णय लेने की क्षमता आवश्यक है और यह क्षमता तकनीकी और कार्यनीतिगत कुशलता पर निर्भर करती है। इसी से टीम में लक्ष्य को सामने रखकर सहजता से काम करने की क्षमता आती है।

न्यायबुद्धि नेता का अपरिहार्य गुण है। इस गुण में उसमें हर तरह के मामलों से सावधानी से निपटने की प्रवृत्ति आती है समूचे परिवेश को सही परिप्रेक्ष्य में, देखने की भी। यही वह आधारभूत गुण है जिससे उसमें निष्पक्ष और सुसंगत नेतृत्व की क्षमता आती है।

अंत में चरम दर्जे की नि:स्वार्थता को नेतृत्व की सारभूत विशेषता माना जा सकता है। अपने पेशे के प्रति पूर्णत: अटल प्रतिबद्धता नेता के लिए हर बात से बढ़कर होती है। किसी भी स्थिति का फ़ायदा वह - अपने अधीनस्थ कर्मचारियों या अपनी संस्था की कीमत पर - अपने निजी सुख, लाभ या सुरक्षा के लिए नहीं उठता।

आमतौर पर जनता का ध्यान किसी अपराध पर तब केंद्रित होता है जब वह हो जाता है और अपराधी पर तभी केंद्रित रहता है जब तक मुकदमा चलता रहता है। (भारत में मुकदमे के निबटने में बहुत अधिक समय लगता है और मुकदमे के दौरान अपराधी को बहुत लंबे समय तक जेल में रहना पड़ता है। यही कारण है कि अधिकारियों की भूमिका प्राय: अपराधी को गिरफ़्तार कर जेल भेजने तक ही सीमित हो जाती है।) इस तरह अपराधी समाज से लंबे समय तक कट जाता है और समाज को उससे किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता। किंतु ऐसा नहीं होना चाहिए। यहीं पर नवीन दृष्टिकोण वाले रचनात्मक नेतृत्व को अपनी उपस्थिति का एहसास कराना चाहिए। कैद को केवल एक निवारक के रूप में एक मियादी प्रतिबंध के रूप में देखा जाना चाहिए। अंत में अपराधी को उसी समाज में लौट आना चाहिए जिसका वह भाग है। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि जेल में व्यतीत समय के दौरान अपराधी का समुचित सुधार हो ताकि बाद में वह समाज में लौटकर सफलता से उसमें घुलमिल सकें। इसे सुनिश्चित करना जेल के प्रभारी का काम है। जेल की सज़ा का अर्थ 'अपराधी' को बंद करके चाबी फेंक देना-भर नहीं है। विश्व-भर के जेल-प्रबंधकों में यह चेतना आई है जिसने उन्हें बाध्य किया है

कि वे प्रगतिशील बनें, परिवर्तनों को स्वीकार करने के प्रति आग्रही हों और जनता की नज़रों के सामने ही काम करें।

23

तिहाड□ से सबक

तिहाड़ की कहानी अपरिहार्य रूप से हमें कुछ निष्कर्षों की ओर ले जाती है। वहां जो कुछ हुआ उसका आधार था दिन-प्रतिदिन सामने आनेवाली समस्याओं को सुलझाते चलने की प्रवृत्ति। जेल के अंदर ही पहले उन विभिन्न कारणों की खोज हुई जिन्होंने अलग-अलग या फिर इकट्ठे होकर तिहाड़ के इस भारी-भरकम ढाँचे का संचालन कठिन ही नहीं, कभी-कभी तो असंभव तक बना दिया था। जब इन कारणों को पहचान लिया गया तो सुधार-कार्य शुरू हुआ। समय के साथ इस सुधार-कार्य ने ऐसा रूप ले लिया कि इसे व्यवस्थित करके लगभग एक नियमावली बनाई जा सकती थी जिसमें मानवाधिकार की संविधियों, कर्मचारियों के सुधार संबंधी कर्तव्यों, कैदियों के विशेषाधिकारों तथा कैद में व्यतीत होने वाले समय की गुणवत्ता आदि से संबद्ध कर्तव्यों का निर्धारण हो। यह कार्य कितना विराट था यह तब समझ में आता है जब हम देखते हैं कि प्रशासन को इतनी बड़ी तादाद में कैदियों तथा साथ ही कर्मचारियों से भी निबटने चलना था। इसमें इतना प्रयास तथा श्रम लगाया गया था कि उसकी प्रशंसा किए बग़ैर नहीं रहा जा सकता। स्पष्ट ही वह सारा प्रयास इस चिंता से जुड़ा है और जेल में हुए सारे सुधारात्मक कार्य भी इसी बात को ध्यान में रखकर किए गए हैं कि ये सुधार संपूर्ण समाज की आम आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से पूरी तरह घुल मिल जाएं। 'जेल' तो इस समाज का एक हिस्सा-भर है।

'तिहाड़ की कहानी' इसलिए विशिष्ट है कि जेल की समस्याओं के प्रति उसका नज़रिया विलक्षण है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जेलों में दंडात्मक सुधार एक ऐसी सच्चाई बन गए हैं, जिसने इन दिनों लगभग सभी देशों की सरकारों का ध्यान आकर्षित किया है। इस सिलसिले में नियमित रूप से अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन होते हैं तथा विभिन्न देशों में जेल प्रबंध की स्थिति पर विचार करने के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया है। तिहाड़ में भी ऐसी ही चिंता ने सुधार आंदोलन का रूप ले लिया है। अंतर सिर्फ यह है कि पहले समितियों और उपसमितियों के गठन और फिर उनके परामर्श लेने-जैसे समय बर्बाद करने वाले कार्यक्रमों के स्थान पर यहां सुधार की चुनौती को सीधे-सीधे स्वीकार कर लिया गया। हर एक सुधारात्मक कार्रवाई की प्रभावित प्रक्रिया का पहले पूर्ण परीक्षण करने के बाद ही उसे अभिलिखित किया गया, उसके दस्तावेज़ बनाए गए और वह भी केवल सिफ़ारिश के रूप में नहीं बल्कि स्टाफ़ के लिए निर्देश के रूप में।

पूर्वोक्त नज़रिए से दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण मुद्दे उभरकर सामने आते हैं। पहले मुद्दे का ताल्लुक कुछ ऐसे आम सिद्धांतों पर बल देने से है, जो अपने देश में ही नहीं, विदेशों में भी जेल की

स्थितियों के प्रति हमारी दृष्टि और समझ को दिशा दें। दूसरा मुद्दा इस तथ्य से जुड़ा है कि किसी भी प्रकार की सुधारपरक दंड-प्रक्रिया केवल तभी संभव है जब मानवीय स्थिति के प्रति संवेदनशीलता का विकास किया जाए। सुधार की तमाम कार्रवाइयों की जड़ में इस आधारभूत समझ का होना ज़रूरी है। कोई मनुष्य हमें कहीं भी या किसी भी स्थिति में मिले, इसी समझ के आधार पर हमें उसके अधिकारों को पहचानना और परखना चाहिए। यहां मनुष्य ही 'कच्चा माल' है और जिस व्यवस्था में मानवीयता व्याप्त न हो वह चल नहीं सकती, न उससे चलने की अपेक्षा ही की जा सकती है।

जेल की अवधारणा का मूल तत्त्व है- वहां बिताया हुआ समय, वह समय जो समाज का अंग मनुष्य समाज से कटकर वहां बिताता है। इसलिए किसी भी जेल के प्रशासक या सुधारक कार्मिक की चिंता यह होनी चाहिए कि इस समय को कैसे सही सारणी में डाला जाए और उपयोगी बनाया जाए। जेल में समय कितने उपयोगी रूप में बीता है, इसी पर यह निर्भर करेगा कि आगे कैदी को किस प्रकार के अवसर मिलेंगे और क्या उसे कम-से-कम यह विकल्प मिल सकेगा कि वह अपराधरहित जीवन और सोच का चुनाव कर सके? जेल में ऐसे असंख्य अपराधी समय काट रहे हैं जिनका दोष सिद्ध ही नहीं हुआ (और इनकी संख्या सिद्ध-दोषियों के मुकाबले में कहीं बहुत अधिक है)। उनके समय का ठीक से प्रबंध न हो तो वे पक्के अपराधी बन सकते हैं। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि ऐसी किसी भी बात की अनुमति न दी जाए जिससे जेल में रहने वाले अधिसंख्य लोग सीधे अथवा बहकाए जाकर भ्रष्ट और अपराधी बन जाएं।

देखा गया है कि ग़रीबी का शाप और नशीले पदार्थों का उपयोग किसी को भी निश्चित रूप से अपराध के रास्ते पर ले जाता है। ऐसा तब होता है जब इन कारणों से व्यक्ति का आत्मनियंत्रण समाप्त हो जाता है या उसकी विचार-प्रक्रिया और कार्यकुशलता में विकृति आ जाती है या व्यसन की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वह अपराध करने लगता है। जेल में नए सुधारों के क्रम में यदि इन दुष्प्रवृत्तियों पर नियंत्रण संभव न हुआ और इन्हें बना रहने दिया गया तो ये तो जेल प्रबंधन द्वारा किए गए तमाम सुधार-प्रयासों को आरंभ में ही बेकाम कर देंगी। जेल का वातावरण नियंत्रित होता है। अत: यदि संवेदनशीलता और ईमानदारी से प्रयास किया जाए तो नशा-विरोधी कार्यक्रम में यह वातावरण बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है। तिहाड़ में यह काम बड़े ही प्रभावी और कारगर तरीके से कर दिखाया गया है।

कम-से-कम भारत की जेलों में बहुसंख्य कैदी समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग में आते हैं। आमतौर पर इनमें कार्यदक्षता का अभाव होता है और इसलिए ये समाज में अपना स्थान नहीं बना पाते। ये लोग हैं जिनके द्वारा जेल में बिताए गए समय का यदि उचित विनियोग न किया गया तो ये बड़ी आसानी से नकारात्मक और अपराधी प्रवृत्तियों के शिकार हो जाते हैं। इसलिए इन्हें शिक्षा तथा अपनी अर्हताओं को बढ़ाने वाले कौशलों का प्रशिक्षण देना जेल प्रशासन की सबसे बड़ी प्राथमिकता होनी चाहिए। जब नियंत्रित वातावरण में इतनी अधिक संख्या में मानव संसाधन मौजूद हो तो उनकी शक्तियों को रचनात्मक और सृजनात्मक दिशा में

मोड़ने से निश्चय ही लाभ होगा।

केवल आराम की वस्तुएं उपलब्ध कराना तथा भौतिक कौशल प्राप्त करना ही काफ़ी नहीं है। बंदियों के नैतिक विकास के लिए प्रयास करना भी आवश्यक है। नैतिक व्यवहार धार्मिक विश्वासों और रीति-रिवाजों का आदर किया जाना चाहिए, केवल इसलिए नहीं कि यह प्रत्येक प्राणी का मौलिक अधिकार है, अपितु इसलिए भी कि यह व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऊपर उठाता है। अच्छा मानवीय आचरण विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में परस्पर सहिष्णुता तथा संवाद की भावना बढ़ाने में सहायक होता है।

जहां तक हो सके अधिक-से-अधिक सुधार कार्यक्रमों में सामूहिक भागीदारी को केवल प्रोत्साहन ही नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि इस पर बल भी दिया जाना चाहिए। नशीली दवाओं के निरोधक कार्यक्रम, कैदियों की शिक्षा, डॉक्टरी या कानूनी सहायता जैसे कार्यों में सबको सामूहिक रूप से भाग लेना चाहिए। इस संदर्भ में बहुत-सारी संभावनाओं का अन्वेषण किया जा सकता है। पहले से ही सामुदायिक समूहों, स्वयंसेवी संस्थाओं तथा ग़ैर-सरकारी संगठनों का एक सबल ढांचा मौजूद है। ये सभी पहले से ही ऐसे विभिन्न कार्यक्रमों को लेकर काम कर रहे हैं। ऐसे कामों के लिए इनसे संपर्क किया जा सकता है। किसी भी प्रकार के सुधारपरक कार्यक्रम के लिए इन संस्थाओं और संगठनों का सहयोग अमूल्य होगा। पुनर्वास संबंधी किसी भी कार्यक्रम की योजना के कार्यान्वियन में स्वयं समाज भी बहुत मददगार सिद्ध होगा।

जेल के अंदर जो संगठित गिरोह बन जाते हैं उनके दबाव से किसी भी सुधारपरक कार्यक्रम में अवरोध आ सकता है। इन गिरोहों के हित में तो यही होगा कि जेल में अस्थिरता का क्रम बना रहे। शातिर अपराधियों को बाकी बंदियों से अलग रखने का प्रयोग तिहाड़ में सफल राह है। इसके दीर्घकालिक प्रभाव अभी सामने आने बाकी हैं। इन अपराधियों को भी सुधार के कार्यक्रमों के अंतर्गत लाया जा सके तभी यह पद्धति पूरी तरह सफल मानी जा सकेगी। यह बात तो है ही कि इस प्रकार दबाव डालने वाले गुट हर जगह संख्या में तो हमेशा कम होते हैं फिर भी उनका विघटनकारी प्रभाव ज़बरदस्त होता है।

इस प्रकार के प्रभाव के पीछे जो मुख्य कारण हैं उनमें से एक है अत्यधिक जनसंकुलता, बेहद भीड़भाड़ और तिहाड़ में तो यह सबसे बड़ी समस्या है। यदि विभिन्न विभागों में परस्पर तालमेल और सहयोग रहे तो जेल में कैदियों की इस कदर बाढ़ को रोका जा सकता है। सीधा समाधान तो यह लगता है कि नई जेलें बनाकर रिहायश की गुंजाइश को बढ़ा लिया जाए। पर यह समाधान कुछ भ्रामक भी हो सकता है। यदि वर्तमान व्यवस्था बनी रही तो वह दिन दूर नहीं जब नई जेलें भी इसी प्रकार ठसाठस भर जाएंगी। आवश्यकता इस बात की है कि समूची व्यवस्था में ही कुछ परिवर्तन किए जाएं। अब देखना यह है कि समाज में जेल की भूमिका क्या हो। हमें बुद्धिमत्ता के साथ यह निर्णय लेना चाहिए कि जेल में केवल वही लोग भेजे जाएं जो हिंसा अथवा समाज के कल्याण के लिए अनिष्टकर गतिविधियों में लगे रहते हैं। समाज तथा इसके संस्थानों में पहले ही असंख्य अवरोधक तत्त्व मौजूद हैं। ऐसे नए तत्त्व भी गढ़े जा सकते हैं ताकि व्यक्ति को हर छोटे-मोटे, अपराध के लिए अनिवार्यत: जेल न जाना पड़े। जेल भेजने का

निश्चय तभी करना चाहिए जब इस प्रयास के अवरोधक संगठन असफल हो जाएं। जेल की सज़ा केवल ऐसे अपराधों के लिए होनी चाहिए जिनकी गंभीरता के आगे अन्य कोई भी सज़ा हल्की प्रतीत होती हो। उदाहरण के लिए, जहां कोई व्यक्ति जान-बूझकर अपनी आजीविका के लिए जुर्म का रास्ता चुनता है, या जहां रोकने तथा सुधारने के अन्य किसी भी रास्ते का उस पर कोई असर नहीं पड़ता, वहां उसे जेल भेजना ज़रूरी हो जाता है।

अब समाज को इन मुद्दों पर सोच-विचार करना है और एक ऐसी पद्धति खोज निकालनी है जिसमें जेल-प्रबंधन अलग-थलग न पड़ जाए, बल्कि समाज और इसके संस्थानों के साथ मिल-जुलकर काम कर सके, क्योंकि मूलतः इनका लक्ष्य तो एक ही है।

लेकिन जो व्यवस्था अभी प्रचलित है उसे देखते हुए तिहाड़ की कहानी इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि एक संवेदनशील, मानवीय और सद्भावपूर्ण नेतृत्व क्या-कुछ करके दिखा सकता है।

24

ऊँचे पद : हीन मानसिकता व असुरक्षा

मई की एक सुबह गृह मंत्रालय से आदेश आया, ''कलम कर दो उसका सिर'', और किरण ने तुरंत ही अपने को दिल्ली पुलिस मुख्यालय के सतर्कता विभाग में डिप्टी पुलिस कमिश्नर की कुर्सी पर पाया। बेशक यह नियुक्ति अस्थायी थी क्योंकि उनका तबादला दरअसल अतिरिक्त (एडीशनल) पुलिस कमिश्नर (ए.सी.पी), योजना और कार्यान्वयन, के पद पर किया गया था और यह पद अभी बनाया जाना था। आज तक यह कभी भी स्वतंत्र विभाग नहीं रहा था। जिस प्रभावशाली ढंग से किरण ने तिहाड़ जैसी निराशाजनक जगह में सुधार किए थे, उन्हीं को मद्देनज़र रखते हुए संभवत: दिल्ली के पुलिस कमिश्नर निखिल कुमार ने किरण को, दिल्ली पुलिस को 21 वीं सदी के लायक बनाने की योजना तैयार करने का काम सौंपा होगा। किरण का काम होगा एक मुख्य योजना बनाना जिसके द्वारा दिल्ली पुलिस के कर्तव्य-कर्म को सही परिप्रेक्ष्य में रखा जा सके और उसके प्रशासनिक तथा परिचालक ढांचे का परस्पर मेल बैठाया जा सके। सही है, देर आयद दुरुस्त आयद। हालांकि लगता है कि जेल-सुधारों के क्षेत्र में एक अकेली अफ़सर के एकनिष्ठ तथा दृढ़ संकल्प से युक्त प्रयासों से ही दिल्ली पुलिस को सुधारने की इस नई योजना के लिए भी प्रेरणा मिली होगी।

इसमें संदेह नहीं कि पुलिस को सुधारने की जरूरत है और इस काम के लिए किरण से बेहतर कोई दूसरा अधिकारी है ही नहीं। फिर भी जिस तरीके से किरण का तबादला किया गया है वह अन्यायपूर्ण तो लगता ही है, इससे कुछ ख़ास निष्कर्ष भी निकलते हैं।

शुरू में आई. जी. (जेल) के रूप में किरण की नियुक्ति ऐसी ही थी, मानो बला टालने को उन्हें जहां-तहां कहीं भी पटक दिया गया हो, क्योंकि सितंबर 1992 से अप्रैल 1993 तक गृह मंत्रालय इस समस्या से परेशान था कि दिल्ली काडर की एक पुलिस अफ़सर दिल्ली में बिना किसी काम के बैठी थीं। इस अफ़सर को पटककर परे करने के लिए तिहाड़ केंद्रीय जेल से बेहतर स्थान दूसरा न था। किरण के वरिष्ठ अधिकारियों को नीचा देखना पड़ा जब 'सज़ा' के तौर पर मिली इस नियुक्ति में भी किरण के काम ने उनका यश चारों ओर फैला दिया। इन सत्ताधारियों ने अपने आगे किरण के रोने-गिड़गिड़ाने की उम्मीद की थी पर वह इनके सामने हिम्मत से तनकर खड़ी रहीं और उन्होंने मैग्सेसे पुरस्कार और नेहरू फेलोशिप के रूप में मानो उनके मुंह पर तमाचे ही तो जड़ दिए। इतने से ही किरण को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने तिहाड़ में जारी गतिविधियों को इतना पारदर्शी बना दिया कि जेल में किए गए दंडात्मक सुधारों के ज्वार की जानकारी बाहरी दुनिया को भी हो गई। यह काम इतना प्रभावशाली था कि भारत में ही नहीं, विदेशों में भी इसने लोगों का ध्यान आकर्षित किया। अमरीकी सरकार किरण के काम से इतनी प्रभावित हुई कि अमरीकी सीनेट की कांग्रेसनल कमेटी ने इन्हें राष्ट्रपति बिल क्लिंटन

और उनकी पत्नी श्रीमती हिलेरी क्लिंटन के साथ 'प्रेयर ब्रेकफास्ट' पर निमंत्रित किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने किरण की उपलब्धियों से प्रभावित होकर उन्हें 6 से 12 मार्च, 1995 तक डेनमार्क स्थित कोपेनहेगन में राष्ट्रसंघ द्वारा आयोजित सामाजिक विकास के अंतर्राष्ट्रीय शिखर सम्मेलन में आमंत्रित किया। ब्रितानी विदेश विभाग इतना प्रभावित हुआ कि ब्रिटिश कमीशन के माध्यम से उसने किरण को अपनी जेलों के दौरे के लिए इंग्लैंड आने का निमंत्रण दिया।

लेकिन किरण के उच्च अधिकारी उनसे प्रभावित नहीं हुए। जब पूरा संसार यह देख रहा था कि तिहाड़ जेल-जैसा नरककुंड कैसे अद्भुत रूप से एक आश्रम में बदलता जा रहा है, उस समय उनके उच्च अधिकारी इस बात पर ख़फ़ा हो रहे थे कि सारे प्रचार और प्रशंसा का केंद्र किरण क्यों हैं। तिहाड़ की जंगखाई मशीनरी की मरम्मत के लिए और वहां के कार्य को नई दिशा देने के लिए जो प्रयत्न किए जा रहे थे उन सबको एक झटके में उठाकर आत्मप्रचार के प्रयत्नों का नाम दे दिया गया।

तिहाड़ में एक समय में औसतन डेढ़ सौ से दो सौ तक विदेशी बंदी रहते हैं। मई 1993 में किरण के जेल का कार्यभार संभालने से कुछ समय पहले किसी अख़बार में अमरीका से निकला एक समाचार छपा था जिसमें इन विदेशी कैदियों की दुर्दशा की चर्चा थी। मानवाधिकारों के क्षेत्र में कार्यरत भारतीय संगठनों- पी.यू.डी.आर. (पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स) और पी. यू. सी. एल. (पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़) ने इस मुद्दे को उठाया और इसे लेकर काफ़ी हंगामा खड़ा किया।

विभिन्न विदेशी दूतावासों और उच्चायोगों ने भी भारत सरकार के आगे अपने देश के उन नागरिकों का मामला उठाया जो यहां बंदी थे। तिहाड़ की नई आईजी को विरासत में जो चीज़ें मिली थीं उनमें से एक विदेशियों द्वारा चिंता का यह लगातार इज़हार भी था। लेकिन कुछ ही समय बाद जब जेल में कारगर परिवर्तन होने लगे तो इन्हीं विदेशी बंदियों ने इनका मौखिक प्रचार किया। इसके परिणामस्वरूप विदेशी प्रचार माध्यमों ने अपने दर्शकों के लिए इस बदल रहे परिदृश्य को रिकॉर्ड करने की अनुमति मांगी। संभवत: उन्हें लगता था कि बंदियों के बदकिस्मत परिवारों को ऐसे समाचारों से कुछ राहत मिलेगी।

किरण को हमेशा ऐसी कार्यशैली में विश्वास रहा है जो पारदर्शी हो और जिस तक लोगों की पहुंच आसान हो। अपने कार्यकाल में वह कर्मचारियों तथा आम जनता, दोनों के स्तर पर सहभागी प्रबंधन को प्रोत्साहित करती रही हैं। प्रचार-प्रसार माध्यम उसी आम जनता का अंग हैं। जेल के संदर्भ में ये माध्यम शंकालु समाज और जेल की ऊँची बंद दीवारों के बीच एक सेतु के रूप में विशिष्ट भूमिका निभा सकते थे। तिहाड़ जेल हमेशा अख़बारों की सुर्खियों में रही है। प्रश्न यह था-अब तिहाड़ से किस प्रकार के समाचार मिलेंगे? उन समाचारों के लिए उन्हें लुकाछिपी के तरीके अपनाने होंगे या वे स्वयं प्रत्यक्ष सब कुछ देख सकेंगे? किरण ने फैसला किया कि उन्हें भीतर आकर स्वयं सबकुछ देखना चाहिए। जेल-नियमों के अनुसार वे लोगों को भीतर आने की अनुमति दे सकती थीं, बशर्ते आगंतुक के साथ कोई जेल-कर्मचारी रहे। जिस किसी ने भी बंदियों के प्रति सच्चा सरोकार व्यक्त किया उसे निरी मौखिक सूचना देने

के स्थान पर किरण ने कैमरों सहित भीतर आने दिया। वे लोग भीतर आकर बंदियों से बातचीत कर सकते थे, हो रही प्रगति को खुद देख सकते थे, अधिकारियों से वहां की स्थिति पर चर्चा कर सकते थे और स्वेच्छा से जो चाहे लिख सकते थे। रिपोर्टिंग चूंकि वे स्वयं करते थे इसलिए उसमें वस्तुपरकता भी होती थी और विश्वास का भाव भी। इस प्रकार की रिपोर्टिंग बहुत-सी ऐसी बातों को परिप्रेक्ष्य में भी रख सकती थी, जैसे : 1. मुकदमों में देरी, 2. जेल में भीड़, 3- टाडा (टेररिस्ट एंड डिसरप्टिव ऐक्टिविटीज़) कानून का दुरुपयोग, 4. दहेज़-अपराधों के पीछे की यंत्रणा, 5. महिला कैदियों की स्थिति, और 6. जेल-कर्मचारियों की स्थिति, आदि। सकारात्मक पक्ष यह था कि प्रचार माध्यम इस बात को जनता के सामने ला सकते थे कि समाज की सहभागिता और सहारे से बल पाकर के एक कारागार आश्रम में बदल सकता है।

किरण के कार्यकाल के दौरान समाज के विभिन्न क्षेत्रों से अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति तिहाड़ जेल देखने आए जिनमें प्रमुख थे : खुशवंत सिंह, अमृता प्रीतम, राजमोहन गांधी, अमरीका में मादक पदार्थ नीति से संबद्ध एक अधिकारी डॉ. ली ब्राउन, भारत में अमरीकी राजदूत की पत्नी श्रीमती फ्रैंक विज़्नर, हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक वी-एन- नारायणन, संगीतकार-गायक अनूप जलोटा, अभिनेता नसीरुद्दीन शाह, क्रिकेट खिलाड़ी मनोज प्रभाकर और प्रिज़न फेलोशिप के डॉ. चार्ल्स डब्ल्यू-कॉलसन।

केंद्रीय सरकार से आए उच्चाधिकारियों में प्रमुख थे : विदेशी मामलों के राज्यमंत्री सलमान खुर्शीद, कल्याणमंत्री सीताराम केसरी, भूतपूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री अर्जुन सिंह और खेल उपमंत्री मुकुल वासनिक।

दिल्ली राज्य से पधारनेवाले अधिकारियों में थे : उपराज्यपाल पी. के. दवे. मुख्यमंत्री मदनलाल खुराना, स्वास्थ्यमंत्री डॉ. हर्षवर्धन और शिक्षामंत्री साहिब सिंह वर्मा।

मानवाधिकार आयोग के सदस्य भी तिहाड़ आए थे जिनमें फ़ातिमा बीबी का नाम लिया जा सकता है।

इस्कॉन, बह्मकुमारियों, ओशो, जैन समाज, गांधी भवन, रामकृष्ण मिशन, चिन्मय मिशन आदि से अनेक आध्यात्मिक नेताओं और बुद्धिजीवियों ने तिहाड़ का दौरा किया था। इन महान हस्तियों के अलावा बड़ी संख्या में विभिन्न क्षेत्रों से अन्य लोगों ने भी तिहाड़ को आश्रम में परिवर्तित करने में मदद की थी। उदाहरण के लिए, अनेक सलाहकारों, भाषाविदों, कथावाचकों, लेखकों, एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति आदि सभी पद्धतियों के विशेषज्ञ तथा सामान्य चिकित्सकों, मनोचिकित्सकों, गांधीवादियों, सुसमाचारकों, समाज-सेवकों, प्रिज़न फेलोशिप के समाजसेवी सदस्यों, कंप्यूटर विशेषज्ञों, समाजशास्त्रीय अनुसंधानकर्ताओं, शैक्षिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षकों, पादरियों, पंडितों, रंगकर्मियों, संगीतज्ञों, खिलाड़ियों, बालवाड़ी कर्मचारियों, कानूनी सहायता देने वाले वकीलों, पुस्तकाध्यक्षों, बैंकरों, व्यावसायिक प्रशिक्षण के विशेषज्ञों, उद्यानकर्मियों और दानियों ने अपना-अपना योगदान दिया था। परमपूज्य दलाई लामा ने तिहाड़ जेल आकर कैदियों को स्वयं आशीर्वाद देने की इच्छा व्यक्त की थी।

इन महानुभावों के जेल में आने का एक समाचार के रूप में बड़ा महत्त्व होता था। इनके आने के समाचारों के बहाने बाहर के लोगों को काफ़ी जानकारी मिलती थी। अगर प्रचार माध्यम स्वयं तिहाड़ में मौजूद न भी होते तो भी यह ख़बर तो बाकायदा बनती ही। कुछ-एक महानुभाव तो स्वयं अपने साथ पत्रकार दलों को लाए थे। सच तो यह है कि यहां प्रचार माध्यम समाचार ख़रीद नहीं रहे थे, बल्कि खुद देख-समझकर अपनी रिपोर्ट तैयार कर रहे थे। इस वजह से जेल का सूचना-आधार मज़बूत हुआ और इसे अपने सुधारों के लिए जनता से अधिकाधिक सहयोग मिला। यहां के बारे में कभी एक बार भी ऐसी सनसनीख़ेज ख़बर नहीं छिपी जिसका इसके सुधारों पर विध्वंसक प्रभाव पड़ा हो। दरअसल लोगों को समाचारों के माध्यम से तिहाड़ जेल वैसी ही दिखाई दी जैसी कि वह सचमुच थी।

इस तरह के समाचार स्वाभाविक रूप से देश की सीमाओं को भी पार कर जाते थे। विदेशी मीडिया को ये समाचार सिर्फ़ इसीलिए आकर्षित नहीं करते थे कि तिहाड़ में विदेशी भी बंद हैं, बल्कि इसीलिए कि इनमें इन्सानी महत्त्व की बातें भी थीं। आख़िर कारावास तो पूरे विश्व में है और कुछ समस्याएं सबमें एक-जैसी हैं। विदेशी प्रचार माध्यमों ने तिहाड़ में जारी संस्कृति-आधारित सुधार-कार्यक्रमों में रुचि दिखाई। इनमें से कुछ तो केवल तिहाड़ में ही नज़र आते हैं और भारतीय लोकाचार और भावना से जुड़े हैं, जैसे विपश्यना ध्यान, आध्यात्मिक उपदेश, योग, संपूर्ण साक्षरता के लिए जनता का सहयोग, याचिका पेटी प्रणाली, नशीली दवाओं के व्यसन की चिकित्सा, छोटे बच्चों को मां के साथ रखना और बंदियों द्वारा जेल में धूम्रपान निषेध का स्वीकार।

इन माध्यमों से जुड़े लोगों को यह सब देखने से वंचित रखने का एक भी कारण किरण को नज़र नहीं आया। इस निर्णय के फलस्वरूप भारतीय मानवाधिकार से संबद्ध स्थिति को संभालना बहुत आसान हो गया। इसके अलावा विदेशों में तिहाड़-जैसी समस्याओं को झेल रहे कारावासों से किरण को निमंत्रण भी आए ताकि दोनों में परस्पर संवाद हो सके।

लेकिन किरण के उच्चाधिकारियों की सोच भिन्न थी। किसी भी प्रचार-प्रसार माध्यम का तिहाड़ में प्रवेश सुरक्षा के लिए ख़तरा माना जाने लगा। किरण द्वारा विदेशों से मिले निमंत्रणों का स्वीकार विदेश यात्रा के लिए चली गई चाल बन गया। राजनेताओं के कृपापात्र कैदियों तक प्रतिबंधित सामान को न पहुंचाया जाना दिल्ली राज्य सरकार के प्रति पूर्वाग्रह मान लिया गया। साथ ही किरण एक बार मुख्यमंत्री से भेंट का समय मांगकर भी कुछ अपरिहार्य कारणों से समय पर वहां न पहुंच पाई थीं। इसका अर्थ यह निकाला गया कि किरण दिल्ली राज्य सरकार के लिए काम ही नहीं करना चाहतीं। यह तो एकदम ज़्यादती थी। ऐसा क्यों और कैसे हुआ? इस संदर्भ में बहुत-से तत्त्व सामने आते हैं। जिन पर ध्यान देना ज़रूरी है।

जैसा कि पहले ज़िक्र किया जा चुका है, किरण को अमरीकी सीनेट की कांग्रेसनल कमेटी से जनवरी 1994 के प्रथम सप्ताह में नेशनल प्रेयर ब्रेकफास्ट के लिए व्यक्तिगत निमंत्रण मिला था। उन्होंने गृह मंत्रालय से इस यात्रा के लिए अनुमति मांगी और अपनी यात्रा का प्रबंध कर लिया। लेकिन प्रस्थान की तिथि के एक दिन बाद उन्हें अस्वीकृति-पत्र मिला। यही निमंत्रण उन्हें

1995 के लिए भी मिला। प्रेस ने तुरंत किरण से पूछा कि क्या उनके खयाल से सरकार एक बार फिर उन्हें जाने की अनुमति देने से इनकार कर देगी? स्पष्ट वक्ता किरण का उत्तर था, ''संभवत: ऐसा ही होगा।'' पर इस बार उन्हें अनुमति मिल गई और वे प्रेयर ब्रेकफास्ट सम्मेलन में हिस्सा ले सकीं।

इस निमंत्रण के तुरंत बाद ही किरण को संयुक्त राष्ट्रसंघ का निमंत्रण मिला। मार्च 1995 में डेनमार्क के शहर कोपेनहेगन में सामाजिक विकास पर अंतर्राष्ट्रीय शिखर सम्मेलन होने वाला था। किरण से इस संदर्भ में कैदियों की स्थिति पर अपने विचार रखने का अनुरोध किया गया। किरण को जो नेहरू फेलोशिप मिली थी उसके अंतर्गत वह इसी विषय से जुड़ा काम करने वाली थी और इसकी सैद्धांतिक रूपरेखा पर उन्होंने काम शुरू भी कर दिया था। स्वाभाविक था कि वह इस अवसर का लाभ उठाने को बहुत उत्सुक थीं। मगर दिल्ली सरकार के गृह मंत्रालय की प्रवृत्ति को देखते हुए किरण जानती थीं कि स्वीकृति नहीं मिलेगी। उन्होंने भारत सरकार के गृह राज्यमंत्री राजेश पायलट से मिलने का समय मांगा। राजेश पालट ने संयोगवश किरण को वही समय दिया जो वह स्वयं पहले ही दिल्ली के मुख्यमंत्री मदनलाल खुराना से ले चुकी थीं। राजेश पायलट से बातचीत कुछ लंबी हो गई। परिणामस्वरूप मुख्यमंत्री से मुलाकात के लिए निश्चित समय पर उनका पहुंच पाना संभव न रहा और उन्हें मजबूरन अपने न आ पाने की सूचना खेद सहित मुख्यमंत्री कार्यालय को भेजनी पड़ी। किरण का कहना है कि वह राजेश पायलट का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के इरादे से गई थीं कि नौकरशाही की लापरवाही और उपेक्षा के कारण किस प्रकार दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण निमंत्रण भी व्यर्थ चले जाते हैं। राजेश पायलट ने इस मामले में हस्तक्षेप किया और अगले आदेश के लिए संबद्ध फाइल को केंद्रीय गृहमंत्री शंकरराव चह्वाण के पास भेजने का निर्देश दिया। तब तक वह फाइल उनके पास पहुंची ही नहीं थीं। श्री चह्वाण ने किरण की फाइल में संयुक्त राष्ट्रसंघ के शिखर सम्मेलन और ब्रितानी जेलोंवाले, दोनों ही निमंत्रणों पर सहमति दे दी। केंद्रीय सरकार द्वारा दी गई स्वीकृति से खुद किरण हैरान रह गई थीं लेकिन दिल्ली सरकार के नौकरशाहों ने इस स्वीकृति को किरण के विरुद्ध बदले की कार्रवाई करने का मुद्दा बना लिया। उन्होंने मुख्यमंत्री को विश्वास दिला दिया कि उनका अपमान स्पष्ट ही जान-बूझकर किया जा रहा है। मुख्यमंत्री को इस बात पर विश्वास भी हो गया और क्रोधित होकर उन्होंने सार्वजनिक स्तर पर बयान दिया कि ''अगर किरण को ऐसा ही महसूस होता है तो वह दिल्ली राज्य सरकार के लिए काम ही क्यों करना चाहती हैं?''

जब एक बार किरण तिहाड़ में नहीं थीं तब भारतीय किसान संघ के नेता महेंद्रसिंह टिकैत तिहाड़ में एक राजनीतिक बंदी के रूप में लाए गए थे। दिल्ली के उद्योग और जेल मंत्री हरशरण सिंह बल्ली ने टिकैत को जेल हुक्का पीने की अनुमति देने और इसके लिए तंबाकू उपलब्ध कराने का निवेदन किया था। इसे डी.आई.जी. (जेल) जयदेव सारंगी ने अस्वीकार कर दिया। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, धूम्रपान निषेध किरण के लिए तथा तिहाड़ के अन्य कर्मचारियों के लिए भी सबसे बड़ी चुनौती थी। अब केवल एक व्यक्ति को हुक्के के लिए तंबाकू देकर सब किए-कराए पर पानी नहीं फेरा जा सकता था।

इस मामूली से निवेदन की अस्वीकृति के कारण मंत्री महोदय इतने नाराज हो गए कि उन्होंने प्रेस को दिए गए एक बयान में यह तक कह दिया कि उनके मित्र को तो हुक्के-जैसी 'तुच्छ' चीज़ से वंचित रखा जा रहा है और किरण के 'मित्र' चार्ल्स शोभराज को विदेशी तंबाकू और विदेशी पाइप पीने की इजाज़त है। दुनिया जानती है कि चार्ल्स शोभराज धूम्रपान नहीं करता। इसलिए यह आरोप बिलकुल खीझ से प्रेरित और आधारहीन था। हिदुस्तान टाइम्स की कुमकुम चड्ढा ने नब्बे के दशक के आरंभ में तिहाड़ पर पुस्तक लिखी थी। उसमें भी शोभराज के धूम्रपान न करने की बात लिखी हुई है। दरअसल टिकैत को हुक्का दिलवाने की मंत्री महोदय (वे स्वयं सिख हैं) की जिद्द पर एक सिख बंदी तो इतना नाराज़ हुआ कि वह बैठा कि वह गुरुद्वारे में भी हुक्के की अनुमति की जिद्द क्यों नहीं करते? इस ग़लती को छिपाने के लिए एक और दावा किया गया। वह यह कि दिल्ली जेल-नियमावली के विरुद्ध जाते हुए शोभराज को टाइपराइटर के उपयोग की अनुमति दी गई है। हिंदुस्तान टाइम्स के विल्सन जॉन ने तो नियम-पुस्तिका में से संबद्ध अनुभाग भी उद्धृत करके दिखला दिया था कि टाइपराइटर जेल में प्रतिबंधित वस्तुओं में से है। लेकिन उन्होंने उद्धृत किए गए संदर्भ को अधूरा ही छोड़ दिया था। उसमें एक बात और जुड़ी है कि अनुभाग में ऊपर तालिकाबद्ध वस्तुएं तभी तक प्रतिबंधित मानी जाएंगी जब तक कि वे जेल-अधीक्षक की अनुमति से कैदियों को न दी जाएं। वस्तुत: तिहाड़ में कैदियों को जिन कौशलों की तालीम दी जाती है, उनमें टाइपराइटिंग भी है और इस सिलसिले में कैदियों को बेरोकटोक टाइपराइटर भी दिए जाते हैं। जेल-नियमावली में संबद्ध निर्देश इस प्रकार हैं :

प्रतिबंधित वस्तुएं

33- जेल अधिनियम 1894 के खंड 42 और खंड 45 की धारा (12) के अनुसार, इस नियम से संलग्न सूची में अंतर्विष्ट प्रकारों में से किसी भी प्रकार में निर्दिष्ट या शामिल की गई वस्तुएं प्रतिबंधित वस्तुएं मानी जाएंगी। इन वस्तुओं को

a. जेल में लाने,
b. जेल से ले जाने,
c. जेल की सीमा से बाहर किसी भी बंदी को देने या
d. किसी भी बंदी द्वारा ग्रहण किए जाने, रखे जाने या किसी और को दिए जाने पर प्रतिबंध होगा, जब तक कि जेल-अधीक्षक या उनके द्वारा अधिकृत और उनकी ओर से कार्य करने वाले किसी अधिकारी की अनुमति न हो।

प्रतिबंधित वस्तुओं की सूची :

1. हर प्रकार के मादक पेय, गांजा, भांग, अफ़ीम, स्मैक तथा अन्य मादक द्रव्य।
2. हर प्रकार के विस्फोटक, मादक या विषैले पदार्थ तथा किसी भी तरह के तरल या ठोस रसायन आदि।

चार्ल्स शोभराज को टाइपराइटर का उपयोग करने की अनुमति सबसे पहले 1978 में मिली थी। उस समय उसका वाई.एम.सी.ए. पासपोर्ट वाला केस चल रहा था। यह मुकदमा सहायक सत्र न्यायाधीश टी-एस- ओबेराय की अदालत में चल रहा था और उन्होंने ही यह अनुमति दी थी। अन्य कैदियों को भी यह सुविधा मिलती रही है। उदाहरण के लिए, 1977 में डॉ.एन.एस. जैन और 1979 में सुनील बत्रा को इसकी अनुमति मिली थी। जहां तक चार्ल्स शोभराज को (230 ग्राम) मांस के राशन का प्रश्न है, यह उसे सहायक सत्र न्यायाधीश एच.एल. मल्होत्रा के 1990 के सुस्पष्ट आदेश के तहत दिया जाता था। ये सब आदेश किरण के तिहाड़ में आने के बहुत पहले के हैं। लेकिन कुछ संवाददाता नियमों को उतना ही पढ़ते या उद्धृत करते हैं जिससे वे सनसनीखेज़ ख़बरें छाप सकें। किरण के वकील पी.एस.शारदा या मामला प्रेस परिषद में ले गए हैं।

बहुत जल्दी ही हिंदुस्तान टाइम्स में एक और रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसके अनुसार चार्ल्स शोभराज का वकील देवाशीष मजूमदार चार्ल्स से मिलने के बाद बाहर जाते समय उसके इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर को चोरी से बाहर ले जाते हुए पकड़ा गया था। इस मामले को कुछ ऐसा रंग दिया गया कि चार्ल्स को नियमों के विरुद्ध इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर के प्रयोग की अनुमति थी और अब मानो आईजी (जेल) के विरुद्ध इस प्रमाण को हटाया जा रहा था। यह किरण के विरुद्ध की जा रही असत्य समाचारों की बौछारवाली नीति के अनुरूप ही था। सच तो यह है कि चार्ल्स शोभराज की अपने वकील से मुलाकात तमिलनाडु स्पेशल पुलिस के गार्डरूम में, इसी पुलिस बल के एक सब-इंस्पेक्टर की निगरानी में हुई थी। शोभराज ने इस सब-इंस्पेक्टर से अपना इलैक्ट्रॉनिक टाइपराइटर मरम्मत के लिए अपने वकील के माध्यम से बाहर भेजने की अनुमति मांगी थी। यह प्रार्थना रिकॉर्ड पर है और उच्च सुरक्षावाले कारागार में रखे जानेवाले 'कानूनी साक्षात्कार' रजिस्टर में इसे दर्ज भी किया गया है। इसके बाद ही उसे वह टाइपराइटर वकील को देने दिया गया था। यदि हिदुस्तान टाइम्स के संवाददाता को इस घटना की जानकारी दी गई थी तो ज़ाहिर है कि इससे जुड़े कुछ तथ्यों को आराम से दबा लिया गया था और केवल अपर्याप्त सूचना सहित ही यह किस्सा प्रेस में चला गया था।

और भी मजे की बात यह है कि चार्ल्स शोभराज को बार-बार किरण का 'मित्र' कहा जा रहा है। संभवत: इसका आधार चार्ल्स द्वारा एक संवाददाता को दिया गया वह बयान है जिसमें उसने कहा था कि अपराध की दुनिया को त्यागकर अब वह लेखन को अपनाएगा और यह कि अन्य विषयों के साथ ही वह किरण बेदी द्वारा गत दो वर्षों में तिहाड़ में लाए गए जेल-सुधारों पर भी लिखेगा। जब किरण से इस बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि चार्ल्स समझदार व्यक्ति है। और जेल में भी वह काफ़ी समय बिता चुका है। अत: उसका अगर ऐसा इरादा है तो इस विषय पर कार्य करने के लिए वह बहुत उपयुक्त है। इस बात को तोड़-मरोड़कर यह अर्थ दिया गया कि किरण ने चार्ल्स शोभराज को अपनी जीवनी लिखने की अनुमति दे दी है। स्वाभाविक ही था कि किरण के विरोधियों की नज़र में 'मित्र' बन गया जिसे अपने 'आत्ममोह' को संतुष्ट करने के लिए उन्होंने हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध करवाई। इसलिए टाइपराइटर के मसले को काफ़ी तूल दिया गया। यहां तक कि किरण पर यह आरोप भी लगा दिया गया

कि मामूली से काम की ख़ातिर उन्होंने सुरक्षा व्यवस्था से खिलवाड़ किया है।

जेल-नियमावली के अनुसार जेल से भागे और दोबारा पकड़े गए बंदियों को लाल टोपी पहननी पड़ती है। किरण पर यह हास्यास्पद आरोप लगाया कि उन्होंने चार्ल्स शोभराज पर यह नियम लागू नहीं किया। चार्ल्स शोभराज किरण की जेल-नियुक्ति से बहुत पहले से तिहाड़ में कैद है और किरण के कार्यकाल के बहुत पहले ही वह जेल से भागा और पकड़ा गया था। उसे कभी लाल टोपी नहीं पहनाई गई और आज तक किसी जेल-अधिकारी पर इस मुद्दे को लेकर पक्षपात का आरोप भी नहीं लगाया गया है। 1950 के दशक में तिहाड़ जेल बनी थी और उसका प्रशासन पंजाब जेल-नियमावली के अनुसार चलता था। 1988 में जाकर इसमें कुछ संशोधन करके दिल्ली जेल-नियमावली का रूप दिया गया। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, 1988 तक इस पुस्तक में यह निर्देश भी शामिल था कि ''सब महिला कैदियों को लाहौर की जनाना जेल में रखा जाए।'' ज़ाहिर है, तब तक लाहौर पाकिस्तान का भाग बन चुका था। स्पष्ट है कि जेल-नियमावली को फिर से पूरी तरह लिखना और वर्तमान समय के अनुरूप बनाना ज़रूरी है ताकि वह ब्रितानी उपनिवेशवाद के दिनों से नहीं बल्कि वर्तमान भारत के यथार्थ से सही-सही जुड़ सके। वर्तमान रूप में तो इसको शब्दार्थ के स्तर पर नहीं बल्कि आशय के स्तर पर ही लेना उपयुक्त होगा।

दिल्ली प्रशासन में गृह सचिव अनिल बैजल (बाद में इन्हें इस्तीफ़ा देने के लिए कहा गया था) ने प्रेस को बयान दिया (हिंदुस्तान टाइम्स, 21 अप्रैल 1995) कि आई जी (जेल) से चार्ल्स के प्रति उनके तथाकथित पक्षपातपूर्ण व्यवहार के बारे में प्रामाणिक रिपोर्ट मांगी गई है और उनके दफ़्तर में उनके जवाब का इंतजार किया जा रहा है। किरण का दावा है कि इसकी जानकारी उन्हें समाचारपत्रों से ही मिली थी। पत्रकारों को इसके बारे में उनसे बहुत पहले पता चल गया था। जब किरण को वह पत्र मिला तो उन्होंने दिल्ली के उपराज्यपाल को तो तुरंत पत्र लिखा और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के गृह-मामला विभाग को फैक्स संदेश भेजा जिसमें उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि औरों पर नियम तोड़ने का आरोप लगने वाले अफ़सरों को खुद भी नियम-विनियम कम-से-कम पढ़ लेने चाहिए। इस 'अनुरोध' के लिए किरण को दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि गृह-मामला विभाग का अपना एक सर्वांगपूर्ण विधि सचिवालय है जो उन्हें उपयुक्त परामर्श दे सकता था। अगर वे ऐसी सलाह लेते तो लोगों को यह महसूस न होता कि वे सिर्फ़ किरण पर कोई आरोप लगाने का मौका ढूँढ़ रहे हैं।

अंत में 21 अप्रैल, 1995 को इंडियन एक्सप्रेस में एक समाचार प्रकाशित हुआ जिसने तिहाड़ को ही नहीं, बहुत-से और लोगों को भी हिलाकर रख दिया था :

दवे द्वारा किरण बेदी के स्थानांतरण का अनुरोध

उपराज्यपाल पी. के. दवे ने केंद्रीय गृह मंत्रालय से तिहाड़ जेल की अतिख्यात आई. जी.

किरण बेदी का तबादला करने का इस आधार पर अनुरोध किया है कि वह जोड़-तोड़ करके विदेश यात्राओं के मौके निकालती हैं और जो भी कदम उठाती हैं वह 'जनता में लोकप्रियता' हासिल करने के लिए।

उपराज्यपाल ने केंद्रीय गृह सचिव के पद्मनाभैया को लिखे पत्र में कहा है कि प्रचार की भूखी होने के कारण किरण बेदी ऐसे कदम उठा रही हैं जिनसे जेल की सुरक्षा प्रणाली को ख़तरा हो सकता है। इस समय जेल में लगभग 8,000 कैदी हैं। गत मास के अंत में लिखे गए दो पृष्ठों के इस पत्र में श्री दवे ने ऐसे उदाहरण दिए हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि लोगों को सही जांच किए बग़ैर ही जेल में आने दिया गया था। एक अवसर तो था रक्षाबंधन का त्योहार और दूसरा अमरीकी दूतावास के अधिकारियों का जेल परिदर्शन।

श्री दवे ने विदेशी मीडिया द्वारा जेल की फ़िल्म बनाने के तथाकथित समाचार का भी उल्लेख किया और अमूमन अपनी छवि बनाने के लिए श्रीमती बेदी द्वारा अपनाए गए तरीकों का भी।

गृह मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों ने पत्र के मजमून के बारे में मौन साधे रहने के बावजूद इस बात की पुष्टि की कि भारतीय पुलिस सेवा की पहली महिला अधिकारी के तबादले के अनुरोध सहित एक लिखित ज्ञापन मंत्रालय को भेजा गया है।

पत्र में यह भी कहा गया है कि तिहाड़ जेल की प्रमुख जोड़-तोड़ लगाकर डेनमार्क और इंग्लैंड जैसे विभिन्न बाहरी देशों की यात्रा का जुगाड़ बैठाती रही हैं। डेनमार्क की यात्रा संयुक्त राष्ट्रसंघ के दिल्ली स्थित कार्यालय द्वारा प्रायोजित थी जबकि इंग्लैंड की यात्रा की व्यवस्था ब्रितानी उच्चायोग ने की थी।

इन दोनों ही मामलों में भारत सरकार को कोई औपचारिक पत्र नहीं मिला था, बल्कि श्रीमती बेदी से सीधे संपर्क किया गया था। आम चलन यह है कि प्रायोजक अपने निमंत्रण केंद्रीय सरकार को भेजते हैं और वही तय करती है कि उक्त अधिकारी को भेजा जाए या नहीं।

श्रीमती बेदी को अमरीका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की ओर से 2 फरवरी को ब्रेकफास्ट का निमंत्रण भी मिला था मगर तब ब्रेकफास्ट कमेटी तथा केंद्रीय गृह मंत्रालय के बीच बातचीत के माध्यम से यात्रा को स्वीकृति मिल गई थी।

पत्र में उन हथकंडों का भी उल्लेख है जो वह कैदियों के बीच जनप्रिय होने के लिए अपनाती रही हैं। उन कैदियों को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से सीधे संपर्क करने की अनुमति है। कुख्यात अपराधी चार्ल्स शोभराज को दी गई विशेष सुविधाओं और शोभराज द्वारा श्रीमती बेदी की जीवनी लिखे जाने की योजना से भी गृह मंत्रालय प्रसन्न नहीं है।

श्रीमती बेदी के कार्यकाल में ऐसा दूसरी बार हुआ है कि राज्य प्रशासन उनके विरुद्ध हो गया है। तिहाड़ में नियुक्ति के पहले श्रीमती बेदी को मिज़ोरम के डी. आई. जी. के पद से हटाया गया था क्योंकि उन्होंने अपनी बेटी के दाख़िले के मुद्दे को लेकर राज्य प्रशासन की

खुलेआम आलोचना की थी। अपनी बेटी को वह राज्य कोटा के ज़रिए राजधानी के लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज में दाख़िल करवाना चाहती थीं।

इसके उत्तर में किरण ने उपराज्यपाल को यह पत्र लिखा:

केंद्रीय जेल, तिहाड़
डी.ओ.सं.पी.ए./आई.जी. (पी.)/95/179

दिनांक : 21 अप्रैल, 1995

माननीय उपराज्यपाल महोदय श्री दवे,

यह पत्र आज (21 अप्रैल, 1995) के इंडियन एक्सप्रेस में छपे एक समाचार की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए लिखा जा रहा है। समाचार का शीर्षक है 'दवे द्वारा किरण बेदी के स्थानांतरण का अनुरोध' (पृ- 1)।

2. क्या आपका दफ़्तर कृपा करके इस समाचार की पुष्टि करेगा? आशा है आप इस बात को समझेंगे कि उस दशा में यदि आप चाहें तो मैं जेल प्रबंधन से संबद्ध और अपने बारे में इस समाचार में उल्लिखित विभिन्न मुद्दों के बारे में वस्तुस्थिति से आपको अवगत करा सकूंगी।

3. यह आप भी मानेंगे कि न्याय की बात यही है।

शुभकामनाओं सहित,

भवदीया
(डॉ. किरण बेदी)

आज तक किरण को इस पत्र का उत्तर नहीं मिला है।

फिर किरण ने एक और पत्र सचिवालय को लिखा जो इस प्रकार है :

नं. 42/पी.ए.ए.डी.डी.एल. सी.पी./ पी. एण्ड आई.
दिनांकित : नई दिल्ली, 26 मई, 95

प्रति :
संयुक्त सचिव (गृह)
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली,
दिल्ली
श्रीमान

मैं 1 मई, 1993 से 5 मई, 1995 तक इंस्पेक्टर-जनरल (जेल) के पद पर कार्यरत थी।

आपके दिनांक 3 मई, 1995 के आदेश (पत्र सं- एफ- 5/3/95-होम (पी-) एस्ट, दिल्ली सरकार) के अनुसार 5 मई, 1995 (अपराह्न) को मुझे 'भारमुक्त' कर दिया गया। उसी दिन अपराह्न को मैंने सेवाभार सौंप दिया।

21 अप्रैल, 1995 के इंडियन एक्सप्रेस के पहले पृष्ठ पर 'दवे द्वारा किरण बेदी के स्थानांतरण का अनुरोध' शीर्षक से जो ख़बर छपी है उससे उन आरोपों का पता चलता है। जिनके आधार पर केंद्रीय सरकार से मेरे तिहाड़ जेल से स्थानांतरण का अनुरोध किया गया प्रतीत होता है। इसी ख़बर का एक अधिक विस्तृत और स्पष्ट रूप 22 अप्रैल, 1995 को पंजाब केसरी के पृष्ठ 5 पर एक समाचार के रूप में प्रकाशित हुआ है। न्याय की ख़ातिर मैंने माननीय उपराज्यपाल से इन समाचारों की पुष्टि की प्रार्थना की और उनसे कुछ समय मांगा (देखिए मेरा पत्र सं- पी-ए-/आई-जी-(पी-)/95/179, दिनांक 21 अप्रैल, 1995) ताकि उन आरोपों के संदर्भ में सफ़ाई दे सकूं जो अब ज़रा ज़्यादा ही 'सार्वजनिक' हो गए हैं। मैंने माननीय जेलमंत्री को भी पंजाब केसरी में प्रकाशित समाचार का संदर्भ देते हुए पत्र लिखा है। अब तक मुझे माननीय उपराज्यपाल तथा माननीय जेलमंत्री में से किसी से भी अपने पत्र का उत्तर पाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है।

मैं सिर्फ़ यही दोहराना चाहती हूं कि भारतीय पुलिस सेवा की एक अधिकारी होने के नाते मुझे तबादले पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती...किंतु मेरे मामले में ऐसा लगता है कि मेरा तबादला एक 'सार्वजनिक मुकदमे' में ही बदल गया है और दुर्भाग्यवश इसकी प्रकृति बहुत ही दंडात्मक है। मेरा निवेदन है कि एक सेवा-अधिकारी के रूप में मेरा अपने और अपने परिवार के प्रति यह कर्त्तव्य है कि मैं अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करूं और इस तरह के प्रचार से मेरे परिवार तथा हमारी सामाजिक मर्यादा पर होने वाले दुष्प्रभाव से अपने को बचाऊँ। मेरा निवदेन है कि वर्तमान मामले में अपने वरिष्ठ अधिकारियों के फ़ैसला करने के पहले या बाद में, कभी भी मुझे अपने आचरण के संबंध में सफ़ाई देने का मौका नहीं दिया गया। इससे यह प्रतीत होता है कि मेरे स्थानांतरण का फ़ैसला मेरी सफ़ाई या मेरे आचरण पर विचार किए बिना ही, मेरे काम के बारे में कुछ और लोगों की सतही धारणा पर लिया गया है। आशा है, आप ऐसे कदम उठाने की कृपा करेंगे जिनसे उपर्युक्त घटनाओं के फलस्वरूप मेरे द्वारा झेले गए दुष्परिणामों का निराकरण हो सके।

भवदीया

किरण बेदी
एडीशनल पुलिस कमिश्नर
योजना एवं कार्यान्वयन
26 मई, 1995

आज की तारीख़ तक किरण को इस पत्र का उत्तर भी नहीं मिला।

गृह विभाग ने आगे जाकर यह भी कहा कि ''जेल के प्रबंधन में कई नए तरीके भी अपनाए जा रहे थे जो मेल नियमावली / कारागार अधिनियम के प्रावधानों के पूर्णत: अनुरूप प्रतीत नहीं होते।'' उनके अनुसार ये तरीके थे : ''पत्रकारों को कैदियों के साक्षात्कार और फ़ोटो लेने की अनुमति दी जा रही थी; जेल में टेलिविज़न कार्यक्रम तैयार किए जा रहे थे; और रक्षाबंधन के अवसर पर चार सौ तक मुलाकातियों को बिना तलाशी के अंदर आने दिया गया था।'' जेल में जारी गतिविधियों को चूंकि पत्रकार बड़ी आसानी से देख सकते थे इसलिए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रचार माध्यमों में उनके बारे में विपुल सामग्री रहती थी। ऐसे में दिल्ली प्रशासन के अधिकारियों का यह दावा बड़ा दिलचस्प है कि उन्हें तथाकथित अनियमितताओं की जानकारी एक जेल-अधीक्षक द्वारा लिखी गई पुस्तक से ही मिली जो 1995 के आरंभ में प्रकाशित हुई थी। जो भी हो, जब वे कहते हैं कि तिहाड़ में हो रहे परिवर्तन 'प्रावधानों के पूर्णत: अनुरूप प्रतीत नहीं होते' (दो पदों पर ध्यान दीजिए- 'पूर्णत:' और 'प्रतीत नहीं होते') तो यह स्पष्ट है कि उस व्यापक दृष्टि से इनकी संकीर्ण दृष्टि टकरा रही है।

किरण की प्रकृति को मद्देनज़र रखते हुए कहा जा सकता है कि वह इस तरह के आरोप और परोक्ष संकेत चुपचाप नहीं सह सकती थीं। उन्होंने एक-एक आरोप लेकर उसका युक्तिसंगत तथा सटीक उत्तर दिया। उन्होंने प्रेस को बताया कि ये सब मंत्री : और नौकरशाह आज उनके काम में इतनी कसर निकाल रहे हैं, मगर इनमें से किसी ने भी व्यक्तिगत तौर पर तिहाड़ जेल की समस्याओं को समझने के लिए वहां झांकने का भी कष्ट नहीं उठाया था। जेल से इनका सरोकार सिर्फ़ इतना ही था कि जब इनका कोई 'मित्र' वहां का मेहमान होता तो उसे अतिरिक्त सुविधाएं दिलाने के लिए ये लोग जेल के कार्यों में दख़लअंदाज़ी करते रहते थे। दिल्ली के मुख्यमंत्री मदनलाल खुराना ने किरण के प्रत्युत्तरों को सिविल सेवा अफ़सरों की आचार संहिता के विरुद्ध करार दिया और तिहाड़ की मुख्य अधिकारी के रूप में उनके कार्य करने के तरीके और उनके किए-अनकिए कामों पर जांच समिति बैठाने की मांग की।

जहां तक सरकार और प्रशासन का प्रश्न था, वे मामले को वैसे ही नहीं छोड़ सकते थे, क्योंकि तब यह माना जाता कि किरण एक बार फिर उन्हें मात देने में सफल हो गई हैं। उन्होंने तय किया कि तिहाड़ तो किरण को छोड़ना ही होगा, पर इससे जो समस्या तुरंत सामने आई, वह थी: उनका स्थानांतरण कहां किया जाए? राज्य के बाहर की निर्धारित नियुक्तियों की वह पहले ही पूरा कर चुकी थीं। अब से काफ़ी पहले दिल्ली पुलिस में उनकी नियुक्ति हो जानी चाहिए थी। पर तब वे हरदम इन लोगों के सिर पर ही सवार रहतीं। इसलिए बार-बार उनसे यह कहने की कोशिश की गई कि उन्हें जो नेहरू फेलोशिप मिली है, उसके अंतर्गत वह अध्ययन के लिए छुट्टी मांग ले। अगर वह यह बात मान जातीं तो उन लोगों को दो लाभ होते। एक तो यह कि वे छाती ठोककर यह दावा कर सकते थे कि उन्होंने इस 'फक्कड़' अधिकारी को दबाकर वश में कर लिया है, और दूसरी बात यह कि इनकी नियुक्ति के लिए उन्हें दिल्ली पुलिस सेवा में लंबे समय से जमे-जमाए किसी अफ़सर को उखाड़ना नहीं पड़ता। सबसे बढ़कर बात तो यह थी कि इससे किरण एक कोने में पटक दी जातीं, जिससे उन लोगों को बड़ी सुविधा होती। लेकिन उन लोगों ने अगर सोचा था कि किरण इस प्रलोभन को उत्साह से

लपक लेंगी तो यह उनकी भूल थी। किरण ने कह दिया कि अध्ययन के लिए अवकाश वह तभी लेंगी जब उनके पास इसकी तैयारी होगी और जब उन्हें इसकी जरूरत होगी।

अब तो सत्ताधारियों के पास किरण का तिहाड़ से तबादला करने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं रह गया था। अभी तिहाड़ जेल में आई-जी- (जेल) के रूप में उनके सेवाकाल का लगभग एक पूरा वर्ष शेष था लेकिन 5 मई, 1995 को किरण को स्थानांतरण-आदेश दे दिया गया। उनसे कहा गया कि वह तिहाड़ का कार्यभार छोड़कर दिल्ली के पुलिस कमिश्नर को रिपोर्ट करें और प्रशिक्षण योजना तथा कार्यान्वयन विभाग में अतिरिक्त पुलिस कमिश्नर का पद संभालें।

1988 में दिल्ली के वकीलों के दबाव में आकर किरण का तबादला डीसीपी (उत्तर) के पद से सी.आर.पी.एफ. के कमांडेंट के रूप में कर दिया गया था (देखिए अध्याय 9)। इस सिलसिले में अधिकारियों की हड़बड़ी और उलझन का यह हाल था कि उस नए कार्यभार को संभालने से पहले ही उन्हें फिर से स्थानांतरित कर दिया गया-इस बार मादक द्रव्य नियंत्रण ब्यूरो (एन.सी.बी.) में। इस बार भी कुछ ऐसा ही हुआ। तिहाड़ से भारमुक्त होकर किरण ने अभी नया कार्यभार संभाला भी न था कि एक नए आदेश के तहत उन्हें सिर्फ योजना और कार्यान्वयन विभाग में अतिरिक्त पुलिस कमिश्नर (एसीपी) नियुक्त कर दिया गया। इसमें प्रशिक्षण शामिल नहीं था। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, यह कभी भी स्वतंत्र विभाग नहीं था।

प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार खुशवंत सिंह ने तिहाड़ से किरण के तबादले से जुड़ी सारी स्थितियों का निचोड़ इन शब्दों में प्रस्तुत किया है, ''यह उन मुट्ठीभर संकीर्ण दिमाग़वाले ईर्ष्यालु लोगों की जीत है-उस हिम्मतवर महिला पर जिसने अपना और देश का भी मान-सम्मान बढ़ाया है।''

राजनीति और नौकरशाही ने किरण के पीछे मानो शिकारी कुत्ते छोड़ दिए थे, पर शिकार के उत्साह में उनसे दो बड़े महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर बड़ी भारी चूक हो गई थी। पहली बात मुल्ला समिति की रिपोर्ट से संबद्ध है। यह रिपोर्ट बड़ी महत्त्वपूर्ण है और इसमें भारतीय जेल प्रणाली की घोर दुर्व्यवस्था और अध:पतन का पूरा इतिवृत्त मौजूद है। साथ ही इसमें ऐसे सुझाव और सिफ़ारिशें भी हैं जिन्हें कार्यान्वित करके इन नारकीय स्थितियों को सुधारा जा सकता है और जेल की दीवारों के पीछे बंद बदनसीब लोगों की मानवीय गरिमा की पुन: प्रतिष्ठा की जा सकती है। केंद्रीय सरकार ने इस रिपोर्ट को सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया था और वर्तमान जेल-व्यवस्था में इसकी सिफ़ारिशों को समाविष्ट करने की इच्छा भी प्रकट की थी। इसलिए आज जेलों के लिए समिति की रिपोर्ट को ही निर्देशक नियमावली के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, न कि उन तमाम पुरानी जेल-नियमावलियों को जो स्वतंत्रतापूर्व भारत में ब्रितानी हितों की रक्षा के लिए उपयोग में आती थीं। इस रिपोर्ट में मुख्य रूप से इस बात को सुनिश्चित करना जेल-अधिकारियों का कर्तव्य माना गया है कि कैदियों के मानवाधिकारों का उल्लंघन न हो। एक अधिक व्यापक दृष्टि का परिचय देते हुए इस रिपोर्ट में कहा गया है कि जेलों का प्रेस

से भी संवाद रहना चाहिए क्योंकि तभी उनमें चल रहा कार्य बाहरी संसार के लिए प्रामाणिक रूप से पारदर्शी हो सकेगा और समाज उन लोगों से संपर्क रख सकेगा जो उससे अलग कर दिए गए हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अनेक शीर्ष न्यायालयों ने तिहाड़ जेल प्रशासन को निर्देश देते हुए कहा है कि कारावास प्रबंधन में मानवीय तौर-तरीकों को लागू किया जाए और कैदियों को बाहरी समाज के साथ जोड़ा जाए।

यहां सेवानिवृत्त न्यायाधीश आनंद नारायण मुल्ला की अध्यक्षता में गठित जेल-सुधारों की अखिल भारतीय समिति (1980-83) की रिपोर्ट से एक उद्धरण देना प्रासंगिक होगा (अध्याय 3 की धारा 3.45-1):

> स्मरणातीत काल से अपराध एक सामाजिक समस्या रही है और सामाजिक समस्याओं को मात्र कानूनों या प्रशंसनीय लक्ष्यों की उद्घोषणा द्वारा हल नहीं किया जा सकता। कारावासों में कोई भी आधुनिक और प्रगतिशील व्यवस्था तब तक लागू नहीं की जा सकती जब तक समाज का एक बड़ा भाग सुधार और पुनर्वास का नज़रिया नहीं अपना लेता। जनमत कुछ इस तरह बनाना पड़ेगा कि जनता भटके हुए लोगों का समाज में ही पुनर्वास स्वीकार कर लें। सामाजिक और आर्थिक समस्या के रूप में अपराध के सर्वव्यापी परिणामों के विषय में लोगों को जानकारी देकर ही यह लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। लोगों को अपराधियों से व्यवहार के प्रगतिशील और आधुनिक तरीकों की जानकारी देना भी ज़रूरी है- इसलिए हमारी सिफ़ारिश है कि समाज में पुनर्वास के लिए अनुकूल संस्कृति के प्रवर्तन को लक्ष्य में रखकर जेल प्रशासन एक नियमित योजना बनाकर उसे लागू करे।

स्पष्ट है कि इस तरह के शिक्षामूलक प्रयास में प्रेस बहुत यथार्थवादी भूमिका निभा सकता है। तभी तो प्रचार-प्रसार माध्यमों को तिहाड़ में व्यापक रूप से हो रहे परिवर्तनों को देखने और प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई थी।

आईजी (जेल) के रूप में किरण पर जो तमाम आरोप लगाए गए थे, उन पर नज़र डालने से यही पता चलता है कि उन्होंने कितनी लगन से इन मानवीय सिफ़ारिशों को लागू करने की कोशिश की थी। साथ ही उनकी कार्यपद्धति का भी एक बड़ा दिलचस्प पहलू उभरता है। जिन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह कार्यपद्धति प्रयत्नशील है वे उन लक्ष्यों के ही अनुरूप हैं जिन्होंने सुविचारित सम्मतियों और सोद्देश्य विचार-विमर्श के माध्यम से नीतियों और सिफ़ारिशों के रूप में आकार ग्रहण किया है। किरण की कार्यपद्धति अमूर्त विचारों से नहीं, बल्कि रोज़-ब-रोज़ सामने आनेवाली समस्याओं से तत्काल निबटने की प्रक्रिया से उपजी है। उनके सारे प्रयास सही लक्ष्यों की दिशा में इसीलिए अग्रसर होते हैं कि उनकी दृष्टि बहुत स्पष्ट तथा व्यापक है।

एक ही वर्ष के भीतर किरण ने जो सुधार तिहाड़ में कर दिखाए, ठीक वे ही सुधार एक अमरीकी दंड-सुधार समिति ने एक वर्ष तक विचार-विमर्श तथा विश्लेषण के बाद अमरीकी जेलों के लिए सुझाए थे। दिलचस्प बात यह है कि दोनों बातें एक ही समय में हुईं। 1993-94 के दौरान जब किरण इस दिशा में सक्रिय थीं उसी समय अमरीकी समिति भी इसी तरह की

समस्याएं हल करने के तरीके ढूँढ़ रही थी। इसी तरह किरण जब तिहाड़ में सुधार कर रही थीं तब उन्हें मुल्ला समिति की सिफ़ारिशों की जानकारी नहीं थी। दुर्भाग्यवश यह मानवीयतापूर्ण और प्रगतिशील रिपोर्ट लगभग विस्मृति के अंधेरे कोने में धकेल दी गई थी क्योंकि इसके कार्यान्वयन के लिए जो दो गुण अनिवार्य हैं, व्यवस्था में उन्हीं की कमी थी। ये गुण हैं- प्रतिबद्धता और प्रयास। इसलिए जब इन गुणों ने सिर उठाने की हिम्मत दिखाई तो पूरी व्यवस्था एकजुट होकर इन पर टूट पड़ी।

इस समय तो ऐसा लगता है कि राजनेता और नौकरशाह जीत गए हैं। पर यह आशा अब भी जीवंत है कि यह घटना तो एक छोटी-सी मुठभेड़ थी। बड़ा युद्ध तो अभी भी चल रहा है।

विदेशों से जो पुलिस अधिकारी भारत के दौरे पर आते हैं उन्होंने तो उस सेवा की नैतिकता पर प्रश्न उठाने भी शुरू कर दिए हैं। जो अपने सदस्य की सहायता करने के स्थान पर उसकी पराजय पर खुश दिखाई देती है और उस सदस्य की यह दशा उन सिद्धांतों को बढ़ावा देने के कारण हुई है जो इस सेवा का आदर्श उद्देश्य हैं। आज जब पूरे विश्व में कानून लागू करने वाले प्राधिकारियों के प्रकार्यों और लक्ष्यों में आमूलचूल परिवर्तन की चिंता जाग रही है, ऐसे में इन विदेशी अधिकारियों को भारतीय पुलिस सेवा की नीयत की प्रामाणिकता में भी संदेह होने लगा है।

25

किरण के बाद तिहाड़

किरण के तबादले के बाद इस थोड़े-से समय में ही वे तमाम शंकाएं सही सिद्ध हो रही हैं कि तिहाड़ में किए जा रहे दंडात्मक सुधार और खुलापन तभी तक लागू रहेंगे जब तक सक्रिय और नवोन्मेषकारी किरण बेदी वहां आई.जी. के पद पर रहेंगी। वहां के बंदियों ने तो शुरू में ही शंका व्यक्त की थी। उन्हें यही डर था कि किरण के जाते ही पुरानी व्यवस्था पूरे जोशो-ख़रोश से लौट आएगी। आज पुरानी व्यवस्था फिर से अपना घिनौना सिर उठाने लगी है।

एक उदाहरण तो बिस्कुट उद्योग सम्राट राजन पिल्लै का ही लिया जा सकता है।

न्यायिक हिरासत में राजन पिल्लै की त्रासद मृत्यु पर किरण अपनी प्रतिक्रिया कुछ सख़्त शब्दों में ही व्यक्त करती हैं :

मैं बहुत ही क्षुब्ध हूं। इस बात से क्षुब्ध हूं कि एक बार फिर से लोगों को कैसे बेवकूफ बनाया गया है।

7 जुलाई, 1995 को जेल में राजन पिल्लै की जिन परिस्थितियों में मृत्यु हुई उनकी अदालती जांच करवाने की घोषणा कोई बड़ी बात नहीं है। नियमों के अंतर्गत यह अनिवार्य है। तो इस घोषणा में विशेष बात क्या है? इस मौत के डॉक्टरी कारण क्या हैं, यह तो चिकित्सा विशेषज्ञ ही बता सकते हैं। तिहाड़ में जेल-प्रबंधक होने के अनुभव के आधार पर मैं आपको यह बता सकती हूं कि इस जेल का प्रशासन बड़ी उदासीनता से चलाया जाता रहा है। कभी-कभार इस तरह की दुखद घटनाएं व्यवस्था का पूरा पर्दाफ़ाश कर देती हैं और प्रशासन निष्क्रिय बैठा रहता है जब तक कि कोई और सनसनीखेज घटना आकर पहली घटना को पीछे न धकेल दे, क्योंकि जनता तो हर बात बड़ी जल्दी भुला देती है।

तिहाड़ जेल में स्वास्थ्य सेवाएं हमेशा से बहुत ही अपर्याप्त रही हैं।

बार-बार ऐसा हुआ है कि (ज़रूरत पड़ने पर) 'व्यवस्थापक' मदद करने को आगे आए ही नहीं। हां 'व्यवस्थापक' -मैं उन्हें 'संभरक' (या पालक) नहीं कहूंगी क्योंकि यह बड़ा सम्मानजनक शब्द है जिसका प्रयोग ज़िम्मेदारी निभानेवालों के लिए होता है। यह जेल हज़ारों अभागे गुमराह लोगों से अटी पड़ी है पर वे लोग इसके प्रति बिलकुल उदासीन हैं। यहां ग़रीब चुपचाप मर जाते हैं। यह तो जब राजन पिल्लै-जैसे प्रसिद्ध लोगों का मामला आता है तब पता चलता है कि तिहाड़ में जीवन को कितना सस्ता माना जाता है। जैसा कि मैंने पहले भी कहा, जांच तो अनिवार्य है। इसमें 'निर्देश-आदेश' की कोई जरूरत नहीं

होती। सो, इस आदेश में ख़ास बात क्या है? ख़ास बात तो तब होती जब निम्नलिखित बुनियादी प्रश्नों के बारे में जांच का आदेश दिया जाता :

1. चिकित्सकों के पदों की रिक्तियां कब से नहीं भरी गई हैं?
2. और भला क्यों?
3. इन नियुक्तियों की ज़िम्मेदारी किस पर होती है?
4. अगर इनके लिए आंदेश दिया भी जा चुका था तो उस आदेश के कार्यान्वयन का ज़िम्मा किसका था?
5. जब संगठन के प्रत्यक्ष कार्य का पुनरीक्षण किया जाता है तब क्या समन्वय की जांच के लिए नियमित पुनरीक्षण नहीं किया जाना चाहिए?

कम-से-कम मेरे कार्यकाल में ऐसा कुछ भी नहीं घटा था। एक अकेले आई.जी. के लिए तमाम मामलों में कितने उच्चस्तरीय व्यवस्थापक होते हैं, देखिए-उपराज्यपाल से शुरू करके मुख्यमंत्री, जेलमंत्री, स्वास्थ्यमंत्री, मुख्य सचिव, गृह सचिव, स्वास्थ्य सचिव और स्वास्थ्य सेवाओं के निदेशक (ये सब दिल्ली राज्य सरकार के पदाधिकारी हैं)। इनमें से किसी एक ने भी क्यों यह सुनिश्चित नहीं किया कि तिहाड़ जेल में मानव जीवन की रक्षा के लिए न्यूनतम आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध हों? क्या जांच इस मुद्दे की भी नहीं होनी चाहिए कि 'व्यवस्थापकों' की क्षमता और गुणवत्ता का स्तर क्या है? समस्याएं हल करने में उनकी भूमिका क्या है? क्या वे इन पदों पर इसी काम के लिए नियुक्त नहीं हैं? और अगर उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया तो उनको क्या सज़ा मिलनी चाहिए? क्या वे न्याय-निर्णय से ऊपर हैं कि वे औरों का फ़ैसला करें मगर उनका कोई मूल्यांकन नहीं किया जा सकता?

हमारा प्रशासन सामंतवादी तरीकों के नीचे दबा कराह रहा है। इसकी पूरी कार्यशैली उसी सामंतवादी युग की उपज है? क्या हमारे पास कोई स्वतंत्र संवैधानिक माध्यम है जो इनकी क्रियाहीनता का मूल्यांकन कर सके और इन पर आपराधिक दायित्व डाल सके?

राजन पिल्लै वाली घटना के बाद मुझे तिहाड़ जेल के अधिकारियों से बात करने का मौका मिला था। उन्होंने मुझे बताया कि मुख्यमंत्री और जेलमंत्री उस कोठरी को देखने आए थे जिसमें राजन पिल्लै को बंद किया गया था। वे अपने साथ पत्रकारों को भी लाए थे ताकि समाचार पत्रों के माध्यम से लोगों को पता लग जाए कि मुख्यमंत्री जेल को देखने आए थे। हालांकि पत्रकारों को उन्होंने ऐसी जगह पर रोक दिया था जहां से वे तिहाड़ के भीतरी इलाके में न पहुंच पाएं। अपने दौरे के बाद मुख्यमंत्री ने (पत्रकारों की ग़ैर-मौजूदगी में) कुछ बुनियादी प्रश्न पूछे थे, जैसे :

1. यह घटना कितने बजे घटी?
2. उसके बाद क्या किया गया?

3. डॉक्टर कब आया / आए?
4. डॉक्टर जल्दी क्यों नहीं पहुंच पाए?
5. डॉक्टरों की संख्या कम क्यों है?
6. इस मामले में तिहाड़ जेल अपनी तरफ़ से सफ़ाई कैसे देगी?

इसके बाद मुख्यमंत्री ने पत्रकारों को एक संक्षिप्त-सा विवरण दिया और लौट गए। जेलमंत्री को तिहाड़ में डॉक्टरों की कमी की बखूबी जानकारी थी, इसलिए जब मुख्यमंत्री ने उनसे पूछा कि डॉक्टरों की रिक्तियां भरी क्यों नहीं गईं तो उन्होंने नज़रें चुरा लीं। मुझे बताया गया कि काम का निरीक्षण करने की सीधी ज़िम्मेदारी गृहसचिव पर है, किंतु 10 जुलाई, 1995 तक वह एक बार भी तिहाड़ जेल के दौरे पर नहीं आए थे।

मेरा व्यक्तिगत मत है कि यह जांच तिहाड़ के बाहर भी होनी चाहिए। तिहाड़ के भीतर जांच आयोग को यह पता करना चाहिए कि जेल-अधिकारियों की प्रतिक्रिया क्या और कैसी है। तिहाड़ के बाहर उसे इस बात की जानकारी लेनी चाहिए कि क्या 'व्यवस्थापकों' ने वे सब काम किए जो उन्हें करने चाहिए थे? तभी वे किन्हीं ख़ास व्यक्तियों पर कर्तव्य न निभाने का आरोप लगा सकते हैं। यह जांच दिल्ली प्रशासन के अधीन कार्यरत कर्मचारियों के स्थान पर स्वतंत्र प्रतिष्ठित नागरिकों के एक दल द्वारा की जानी चाहिए।

इस तरह की मौतें तो बार-बार होती ही रहेंगी (और संभवत: वे मौतें अख़बारों की सुर्खियां न बन पाएं)। इसका कारण यह है कि तिहाड़ में चार स्वतंत्र जेलें एक विशाल परिसर में स्थित हैं। लेकिन वहां पूरे चौबीस घंटों की समुचित चिकित्सा सेवाएं उपलब्ध नहीं हैं। उन्हें कम-से-कम इतना काम तो अविलंब करना चाहिए कि जेल में कम-से-कम चार सुयोग्य डॉक्टर चौबीसों घंटे उपलब्ध रहें।

डॉक्टरों के साथ-साथ तिहाड़ ही नहीं अन्य जेलों में भी प्राणरक्षक उपकरण, दवाइयां और साथ ही आवश्यक साजो-सामान से लैस अस्पताल भी मौजूद होने चाहिए। इससे बदतर बात क्या हो सकती है कि एक ओर तो हम स्वीकारते हैं कि तिहाड़ में तपेदिक के मामलों की संख्या बहुत अधिक है और दूसरी ओर यहां तपेदिक का कोई विशेषज्ञ ही नियुक्त नहीं हैं।

'व्यवस्थापकों' की 'निष्क्रियता' की जांच की जानी चाहिए। सवाल यह उठता है, अपनी जांच की अनुमति कौन देगा? सामंतवादी संस्थाएं जब प्रजातंत्र का लबादा ओढ़ लें, तो यह संभव ही नहीं है।

जो स्वयं सेवी संस्थाएं यहां जन-सहयोग से होने वाले सुधारों की रीढ़ थीं, उनके सदस्य इस उलझन में पड़े हुए हैं कि बंदियों के साथ अपने वे कार्य ये लोग कैसे पूरे कर सकेंगे जिनके लिए ये प्रतिबद्ध थे और समय-सीमा भी इन्होंने तय कर रखी थी। जेल मुख्यालय का दावा है कि ऐसे लोगों को अपना काम करने से रोका नहीं गया है। मगर जब वे स्वयंसेवक अपना काम करने जाते हैं तो चारों ही जेलों के वार्डर इनसे साफ़-साफ़ कहते हैं कि इन्हें जेल में आने

के लिए दी गई अनुमति व्यवहारतः वापस ले ली गई है। ये (वार्डर) इस बात पर भी अड़े हैं कि कोई अगर कैदियों से संपर्क करना ही चाहे तो वह केवल मुलाकातियों वाली दीर्घा में हो सकता है। इन स्वयंसेवकों को यह भी कहना है कि उन्हें बड़ा लंबा-कभी-कभी तो दो घंटे से ऊपर-इंतज़ार करना पड़ता है, जब कहीं जाकर वार्डर, अगर चाहें तो, इन्हें थोड़ी-सी देर के लिए अंदर जाने देते हैं। अब स्वयंसेवकों की यह स्पष्ट धारणा बनती जा रही है कि उनके रास्ते में इतनी कठिनाइयां इसलिए खड़ी की जा रही हैं ताकि तंग आकर ये स्वयं ही काम छोड़ बैठें। तब वार्डर लोग यह दावा कर सकेंगे कि उन्होंने तो कोई ऐसा आदेश नहीं दिया था पर स्वयंसेवकों की अपनी ही दिलचस्पी समाप्त हो जाने के कारण काम रुक गया।

एक संस्था ने, जो महिला कैदियों के साथ एक कार्यक्रम चला रही थी, बहुत ही क्षुब्ध होकर हमें बताया कि जो सह-वार्डर इनके काम की प्रभारी थी उसने कैदी महिलाओं से कह दिया है कि उनके खुली हवा में सांस लेने के दिन बीत चुके हैं और अब तो उन्हें उतनी ही हवा मिलेगी जितनी कि ये सह-वार्डर महोदया इजाज़त देंगी।

किरण बेदी के कार्यकाल में यही वार्डर अभागी महिला बंदियों की स्थिति के लिए चिंता व्यक्त किया करती थी। तब इसी वार्डर ने यह भी कहा था कि इन बदनसीबों के लिए तिहाड़ जेल में किरण बेदी की नियुक्ति से बेहतर और कुछ नहीं हो सकता। इस तरह के कर्मचारियों के पाखंड से दर्दनाक बोध होता है कि बंदियों की दशा कैसी हो गई होगी और जेल में पुराना घिनौना यथार्थ फिर से कैसे उभर आया होगा।

बीड़ियों के एक बंडल की कीमत तो अभी ही एक सौ पचास रुपयों से घटकर पचास रुपए हो गई है। स्पष्ट है कि अब बीड़ियां ज़्यादा आसानी से मिल जाती हैं। अब तो बंदियों को उस सुपर मार्केट में जाने की भी अनुमति नहीं मिलती जिसे उनकी ही सहूलियत के लिए बनवाया गया था और जिसे जेल के कर्मचारी और बंदी, दोनों चलाते थे। उस सुपर मार्केट के माध्यम से कमाए गए धन का एक अंश उन कैदियों को जाता था जो बाज़ार का संचालन करते थे। अब जेल-कर्मचारी यही सामान ख़रीदकर बंदियों को अंधाधुंध कीमत पर देते हैं। अब गरीब बंदियों को यह सुविधा रही ही नहीं है। अब तो मुलाकातों के लिए भी पैसा देना पड़ता है। जब किसी बीमार को इलाज के लिए अस्पताल भेजा जाता है तब वह पुलिस की गाड़ी में तो ले जाया जाता है पर अस्पताल के भीतर उसे तभी जाने दिया जाता है जब वह जेल-कर्मचारी की मुट्ठी गरम करे। मधुमेह के मरीज़ एक बंदी ने शिकायत की कि बाहर से जांच करवाने पर उसके रक्त में शर्करा का स्तर बहुत ऊँचा - 385 तक पाया गया था, जबकि जेल के अस्पताल की रिपोर्ट में यह सिर्फ 125 था जो कि एकदम सामान्य है। यह बंदी ग़रीब है। इसका आरोप है कि रिपोर्ट में ऐसी हेराफेरी इसलिए हुई है कि डॉक्टर-वार्डर गठबंधन को देने के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। यह गठबंधन अब बड़े मज़े करने लगा है।

एक शोधकर्त्री अब भी बड़े धीरज से घंटों इंतज़ार करके किसी तरह जेल के अंदर जाने का इंतज़ाम कर ही लेती है। उनका बयान है कि लंबी अवधि के कैदी अभी भी नए-नए आए कैदियों को बुरी तरह पीटते हैं। वह स्वयं ऐसी कई पिटाइयों की चश्मदीदी गवाह रही है। उनका

यह भी कहना है कि यह सब जेल-कर्मचारियों की मौजूदगी में होता है। एक बार जब वह कर्मचारियों के पास इसे रोकने का अनुरोध करने गई तो उन्होंने जवाब दिया कि कैदियों को मालूम है कि वे क्या कर रहे हैं और इस तरह की स्थितियों से निबटने के उनके अपने तरीके होते हैं। जिन कर्मचारियों पर कैदियों के कल्याण का भार था उन्हीं की इस तरह खुल्लमखुल्ला लापरवाही देखकर उन्हें बड़ा धक्का लगा। स्पष्ट था कि वे पुरानी विचार-वृत्तियां बड़े आराम से वापस लौट आई हैं जिनके अनुसार निचले दर्जे के जेल-अधिकारी सिर्फ़ पिटाई और सज़ाओं की ज़िम्मेदारी लेने को तैयार हैं। वे अब फिर से अपनी वही पुरानी बातें दोहराने लगे हैं कि तिहाड़ जेल में आने वाले सारे कैदी मुजरिम होते हैं। इसलिए यहां बिताया जाने वाला समय उनके लिए जितना भी संभव हो, कष्टकर बनाया जाना चाहिए।

जेल के कूड़ाघर से एक बार फिर सड़ांध उठने लगी है। जो कैदी पहले 'कूड़े से खाद' बनानेवाली योजना में काम करने को खुशी-खुशी तैयार होते थे, वे अब यहां काम करना नहीं चाहते। इस योजना से अच्छी कमाई होने लगी थी जो कैदी कल्याण कोष में जाती थी। कैदी अब स्वयंसेवकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को बताते हैं कि उन्हें पता है कि अब यहां की कमाई उनकी भलाई के लिए ख़र्च नहीं होगी बल्कि जेल-कर्मचारियों की ही जेबें भरेंगी। नतीजा यह है कि एक बार फिर पुराने समय की ही तरह कूड़े के ढेर तिहाड़ में जमा हो रहे हैं और सड़ते हुए जैविक पदार्थों की बदबू पूरे जेल परिसर में फैलने लगी है।

यह दावा तो ज़रूर किया जा रहा है कि दंडात्मक सुधार की प्रक्रिया पहले की ही तरह जारी है और उन्हें रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया गया है लेकिन ये सिर्फ़ दावे हैं। इनका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, क्योंकि पहले-जैसी पारदर्शिता अब रही ही नहीं है। एक गुप्त आदेश द्वारा दिल्ली सरकार ने प्रचार-प्रसार माध्यमों के जेल में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया है। जिन संगठनों ने जेल की शिक्षा-व्यवस्था को गढ़ने में सहायता की थी और जिन्हें कैदियों ने बड़े प्रेम से अपनाया था, उनसे ही अब कहा जा रहा है कि उनके जेल में आने से पढ़ाई में खलल पड़ेगा। ऐसे स्वयंसेवकों का कहना है कि फिर भी वे जब-जब भीतर जाने में सफल हो जाते हैं तब-तब अंदर के कर्मचारियों को इशारों से आगाह कर दिया जाता है और अंदर एक नाटक-सा खेला जाने लगता है। जेल की अनेक फैक्ट्रियों का काम कच्चे माल की कमी और निरीक्षण के अभाव के कारण लगभग ठप हो चला है।

सरोज वशिष्ठ एक बहुत ही बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न और सक्रिय समाज-सेविका हैं। लगभग दो वर्षों से वह बंदियों से मिल-जुल रही हैं। उन्होंने सांस्कृतिक गतिविधियों के अनेक ग्रुप बनाए हैं, कविता की कक्षाएं और शिक्षण की कक्षाएं आयोजित की हैं तथा दूसरे बहुत-से नए कदम उठाए हैं। उनका कहना है कि जैसे ही जेल में किरण की गतिविधियों को उठा विवाद अख़बारों में आने लगा वैसे ही अमूमन सभी कैदी यह निश्चित मान बैठे थे कि उनका तबादला होने वाला है। इसके कुछ समय बाद ही उन्हें स्थानांतरण का आदेश मिल गया। अधिकतर बंदी जहां इससे शोकसंतप्त हो उठे, वहीं जेल-कर्मचारियों के छोटे-से गुट ने सबमें मिठाइयां बांटीं। उन्हें भरोसा था कि जेल की दीवारों के घेरे में फिर से उनका सिक्का चलने लगेगा। सरोज बताती हैं

कि तिहाड़ जेल के अधिकतर बंदी इस बात से बहुत दु:खी हैं कि किरण उनसे विदा लेने नहीं आई। किरण ने स्पष्ट किया, ''यह एक बहुत ही सोचा-समझा निर्णय था। मैं पुरुषों को रोते हुए नहीं देखना चाहती थी। साथ ही यह पहला अवसर होता जब मैं उनसे मिलती, मगर उनके प्रश्नों के उत्तर न दे पाती। इसके अलावा मैं अधिकारियों को अपने ऊपर कोई आरोप थोपने का मौका नहीं देना चाहती थीं।'' किरण का फ़ैसला बहुत ही समझदारी भरा था, जैसा कि कुछ कैदियों की बातों से पता चला। उनका कहना था कि उस दिन तिहाड़ के भीतर स्थिति इतनी विस्फोटक थी कि 1990 की घटनाएं फिर से घट जाती तो कोई ताज्जुब न था। ज़ाहिर है उनका संकेत उस समय हुए बलवे की ओर था।

एक कैदी लगभग चार साल जेल में बिता चुका है और वहां का माना हुआ कवि है। उसने बताया कि हर शाम को होनेवाली चक्र-धर्म सभाएं लगभग बंद हो गई हैं। सारे कैदी इनमें इकट्ठे होकर आध्यात्मिक उपदेश और घोषणाएं सुनते थे। कुछ समय पहले तक ये धर्मसभाएं बहुत ही लोकप्रिय थीं। पर अब हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई कैदियों का अलगाव बहुत स्पष्ट है। उसके अनुसार, यहां भ्रष्टाचार इस समय अपने बाल्यकाल में है। बहुत जल्दी ही यह अपने पूरे यौवन पर आ जाएगा। उसने यह भी बताया कि धूम्रपान का चलन दोबारा शुरू हो गया है और तंबाकू अब कितनी आसानी से मिलने लगी हैं, यह बीड़ी और सिगरेट के तेज़ी से गिरते हुए दामों से स्पष्ट हो जाता है।

हत्या के अपराध में तिहाड़ में कैद एक कीनियाई बंदी अपनी चौदह वर्षों की सज़ा पूरी कर चुका है। वह सरोज को तिहाड़ में किरण की नियुक्ति से पहले की बातें याद दिलाता है। पहले पांच साल वह केरल की एक जेल में था, लेकिन वहां तस्करों के एक गिरोह से जान का ख़तरा होने के कारण उसे तिहाड़ में स्थानांतरित कर दिया गया। यहां आने पर इसकी ड्यूटी लंगर में लगा दी गई। बहुत जल्दी ही उसे बता दिया गया कि उसे अधीक्षक को 500 रुपए और उप-अधीक्षक को 300 रुपए प्रति सप्ताह देने होंगे। वह समझ नहीं पाया कि इसका इंतजाम कैसे किया जाए। इसलिए उसे नंगा करके एक पेड़ से बाँधकर इतना पीटा गया कि वह मरणासन्न हो गया इसके बाद उसे समझाया गया कि लंगर में आया हुआ राशन अगर वह कैदियों को बेच दे तो इस तरह अर्जित रकम में से वह अधिकारियों को पैसा दे सकता है। अपनी जान बचाने के लिए उस युवक को यह गलत काम करना पड़ा। आज यह युवक कहता है कि उसे वही रिवाज़ दोबारा लौटता दिखाई दे रहा है और जल्दी ही तिहाड़ में पुराने दिन लौट आएँगे। अगर आज कोई विदेशी कैदियों की बैरकों में आता तो उसे साफ़ दिखाई देता कि वहां मादक पदार्थों का एक सुपर बाज़ार पूरे ज़ोर-शोर से चल रहा है।

सरोज आगे बताती हैं, ''किरण के तबादले के बाद जब मैं पहली बार महिलाओं के वार्ड में गई तो वहां एक स्तंभित सन्नाटा छाया था। मैं उसका इससे बेहतर वर्णन नहीं कर सकती। एक भी महिला एक भी शब्द बोलने को तैयार न थी। जब मैंने बहुत मनाया-फुसलाया तो वे बस बुदबुदा देतीं, 'सब ठीक ही है'।'' एक विदेशी महिला कैदी है जो सरोज को बहुत मानती है और उनसे खुलकर मन की बात कर लेती है। उसी ने सरोज से कहा कि अब विदेशी कैदियों

से फिर से कहा जा रहा है कि वे अपने मुलाकातियों से कहकर वार्ड-अधिकारियों के लिए विदेशी सामान मंगवाएं, नहीं तो उन्हें कोई सुविधा नहीं मिलेगी और उनका जीना दूभर कर दिया जाएगा।

तिहाड़ में आज सब जगह कहा जा रहा है कि रामराज्य गया, रावण राज्य लौट आया है। एक किशोर हवालाती ने तो सरोज को यह तक कह दिया कि जब वह अगली बार अपनी पेशी पर अदालत जाएगा तो वहां से फ़रार हो जाएगा और उस आदमी को गोली मार देगा जिसने किरण का तबादला किया है। जब सरोज ने उसे ध्यान दिलाया कि उसके ऐसा करने पर पिछले दो वर्षों में की गई सारी मेहनत बेकार चली जाएगी तो उसने क्षमा मांगते हुए सरोज से कहा कि तब फिर वह जेल के भीतर बैठे-बैठे भगवान से प्रार्थना करेगा कि उस व्यक्ति का या तो कार एक्सिडेंट हो जाए और वह मर जाए और नहीं तो कम-से-कम उसकी पदावनति तो हो ही जाए।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तिहाड़ का परिवर्तन-चक्र पूरा घूम चुका है और बहुत जल्द ही उसे अपने सब पुराने नाम लौटा दिए जाएंगे। किरण ने तिहाड़ जेल का नाम तिहाड़ आश्रम रखा था अर्थात सुधार का स्थान। उनके स्थानांतरण के बाद वहां के निवासियों ने तिहाड़ का पुन: नाम रख दिया है : तिहाड़ अनाथाश्रम।

26

तिहाड□ के बाद किरणः भावी पीि□□यों के लिए लेखन

किरण ने एक बार फिर दिल्ली पुलिस में रिपोर्ट की। तबादले के नए आदेश के अनुसार अब वह प्रशिक्षण और नीति क्रियान्वयन की प्रभारी बना दी गई। मगर रातों-रात उससे प्रशिक्षण वापस ले लिया गया और उनके पास केवल नीति क्रियान्वयन रह गया था। किसी को कुछ नहीं मालूम कि आदेश क्यों बदला गया। इतना ही नहीं नीति क्रियान्वयन के बारे में भी ज्यादा कुछ नहीं बताया गया था। अब यह किरण के हाथ में था कि वह क्या करना चाहती है। चुपचाप बैठी रहें, या मनमर्ज़ी से काम करें। तिहाड़ में कार्य करते हुए वे प्रतिष्ठात्मक जवाहरलाल नेहरू स्कॉलरशिप दी गई थी। ऐसा लगता है कि स्कॉलरशिप का रास्ता छठी इंद्रिय द्वारा सुझाया गया रास्ता था।

इस बारे में उन्होंने बताया-जिस समय मैंने नेहरू फेलोशिप के लिए आवेदन किया, तब सब कुछ सामान्य था। यानी जैसा चलता है- 'स्मूथ-स्मूथ'। तिहाड़ सुधार भी अपने चरम पर था। मुझे लग रहा था कि हमारी ईर्ष्यालु प्रणाली के चलते उसे कभी भी आघात लग सकता है। तो पहली जरूरत थी उन सबके दस्तावेजीकरण की। फिर भी यह सब एक बेहतर सपने जैसा था। लगता था कि कभी यह सब छोड़ना भी पड़े तो अपनी शर्तों पर छोड़ना ही श्रेयस्कर है ताकि कम से कम वह आत्मसम्मान तो बचे। मुझे अन्दर से कोई बता रहा था कि मुझे यह फैसला कभी न कभी लेना पड़ सकता है। सच कहूं तो जिस समय सब कुछ आराम से चल रहा था तभी मैंने इस बारे में सोचा था। बार-बार ख्याल आता। इतना ही नहीं मैंने इस बारे में अपनी सहकर्मी- सारंगी से इस विषय पर बातचीत भी की थी। फिर मैंने फेलोशिप को स्थगित कर दिया। मैंने सोचा कि अगर हम तिहाड़ को एक साल और दें, तो इसे हम वहां ले जा सकेंगे जहां उसे ले जाने की हमारी इच्छा थी। उस समय कई काम हो रहे थे जैसे कम्प्यूटरीकरण, केबल नेटवर्किंग, एन जी ओ की भागीदारी। परन्तु जो मैंने सोचा था, वह सच निकला। मुझे तिहाड़ छोड़ना पड़ा। अब दिल्ली पुलिस में लौटने के बाद, मैंने देखा कि यहां कुछ भी मेरा इंतजार नहीं कर रहा है। मुझे महसूस हुआ कि जैसे मैं मुक्त हूं। इसीलिए मैंने तय किया कि मैं फेलोशिप के लिए लिखूंगी।

किरण ने पढ़ाई के लिए छुट्टी की दरखास्त दी और अपनी आशावादी आदत से लिखना शुरू किया। तीन साल बाद उनकी पुस्तक 'इट्स ऑलवेज पॉसिबल' सीडी रोम के साथ प्रकाशित हुई। यह पुस्तक फिर कई मायनों में अपनी तरह की पहली पुस्तक थी।

27

'इट्स ऑलवेज पॉसिबल' : एक रिकॉर्ड

अपने टेनिस के दिनों से ली गई बातों में पूर्वाभ्यास और तैयारी किरण की आदत बन गई थी। उन्होंने जेल में काम करते हुए कई 'वर्क नोट्स' लिए थे और उन्हें बड़े जतन से सहेजकर रखा था। वैसे भी उनकी लाईब्रेरी में रिकॉर्ड्स का सुव्यवस्थित संग्रह। इन सबको वे बहुत संभाल कर रखती हैं। यह आदत उन्हें अपने पिता से मिली। वे किरण के टेनिस संबंधी छपी खबरों को सिलसिले से रखते, ताकि जब किरण लौटें तो उन सबको ठीक से देख-समझ सकें।

अब किरण पढ़ाई की छुट्टी पर घर आ गई थीं। रातों-रात उनकी मां ने अपने ड्रॉइंग रूम को स्टडी रूम में बदल दिया। हालांकि उसमें एक पलंग भी था, ताकि उनकी बेटी रात-भर काम भी कर सके और जरूरत पर आराम भी। किरण के पास अवसर था कि जो-जो जानकारी उनके पास है उसे सिलसिले से रखा जाए, ताकि आगे कुछ काम किया जा सके। दिलचस्प बात यह है कि इस दरमियां कई रिहा हुए कैदी चाहे वे भारतीय हों या विदेशी उनसे मिलने उनके घर पहुंचने लगे। वे सब वहीं आत्मीयता से किरण से बातें करते। दोनों के बीच जेल का अवरोध हट गया था। बातचीत मुक्त होती। इन सबकी रिकॉर्डिंग अब भी सुरक्षित है। फिर तो एक नया आयाम खुल गया। वह उनसे कई और मुद्दों पर भी पूछताछ कर सकती थीं जो वे अब तक नहीं कर पा रहीं थीं या उन्होंने अब तक नहीं पूछे थे। वे सब भी घर आकर ज्यादा करीब और मुक्त महसूस करते थे शायद इसकी एक वजह यह भी हो कि अब वे दोनों ही जेल से आजाद थे। जेल से आजाद हुए एक ब्रितानी नागरिक ने किरण को उन टेपों को 'ट्रांसक्राइब' करने में मदद दी और एक महिला कैदी ने जेल के भीतर के दृश्यों के स्कैच किए थे। जो और जैसा उसने देखा बनाया था। यानी बदलाव से पहले की जेल का वह सब मूर्तिमान लेखा-जोखा था। जेल से कैदियों की हज़ारों चिट्ठियां आतीं। वे सब यह बताने के लिए पर्याप्त थीं कि उनके विचारों में कहां तक प्रगति हुई है और वे अब क्या सोचते हैं। कुल जमा, वे चिठ्ठियां-कैदियों की विचार यात्रा को बखूबी समझाने के लिए पर्याप्त थी। किरण ने ऑडियो-विजुअल के अलावा इन सबको भी संभालकर रखा है।

अपनी इस पढ़ाई की छुट्टी के दौरान किरण ने देश विदेश में भ्रमण किया। वे ऑस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी, इटली, जापान, फिलीपिन्स, चेकोस्लोवाकिया, श्रीलंका, यू-के- और अमेरिका भी गईं। भारत में उन्होंने यू. पी., बिहार, मध्य प्रदेश, केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक और बंगाल का दौरा किया। वे इन सभी जगहों पर कैदियों से भी मिलीं। वहां के अफ़सरों और कैदियों से बातचीत की। उन्हें यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि तिहाड़ का सुधार कार्यक्रम समाचार पत्रों के ज़रिए यहां तक भी पहुंच गया था। किरण के तिहाड़ छोड़ने से पहले ही एक डॉक्यूमेन्ट्री बनी थी जिसका शीर्षक था 'तिहाड़ का चमत्कार'। जेल अफसरों से बातचीत में

इसकी बड़ी कारगर भूमिका रही।

किरण ने लिखने की अपनी निजी शैली विकसित की। वह दिनभर लिखती। महीनों जब तक विचार प्रवाह चलता रहता उनका लिखकर अहर्निश जारी रहता। महज़, थोड़ी दिमागी ताजगी के लिए वे कुछ देर बाहर घूमने निकल जातीं और फिर लिखने बैठ जातीं। परन्तु दूसरी जेलों में जाने से उन्हें तिहाड़ में जो हुआ, उसकी तुलना दूसरे जेलों से करने में आसानी हुई। उन्होंने लिखा है- मुझे लगा कि जेलों में नई विचारधारा लाने की आवश्यकता है। इसे बदलना भी एक चुनौती है। अपनी यात्रा में मैंने देखा कि जिसमें सच में सुधार की आवश्यकता है, वह है जेल के नीति बनाने वालों की चिन्तनधारा, जेल प्रबंधकों की सोच जिसे करने की तिहाड़ में हम लोगों ने सामूहिक चेष्टा की थी और कुछ हद तक सफल भी हुए थे। मुझे विश्वास था कि यह पुस्तक इस सामूहिक चेष्टा को मेरा सलाम होगा। मैंने सोचा कि मैं एक मॉडल दूंगी जो सफल हुआ था।

पुस्तक जेल में उनके पहले दिन से शुरू होती है। क्या आप प्रार्थना करते हैं? नामक अध्याय उनके जेल के पहले दिन के अनुभव को बताता है। यह एक हृदय-स्पर्शी गाथा है, एक ऐसी महिला पुलिस अधिकारी की, जो अन्त:स्थल से, एक पुनर्वासक, अपराध निरोधक और सुधारक है। उन्होंने कैदियों से अपनी पहली भेंट में ही अपने और उनके बीच एक घनिष्ठ संबंध स्थापित किया। यहां से वह अपने पाठकों को जेल के भीतर ले जाती हैं और उनके रहन-सहन, स्वास्थ्य, महिलाओं पर अत्याचार, बालकों और युवकों को पथभ्रष्ट करना, गुण्डाराज और भ्रष्टाचार और लत के कोढ़ से परिचय कराती हैं। पुस्तक के इस भाग में कहीं-कहीं चित्र भी है।

पुस्तक के दूसरे भाग में, जो था और जो किया गया, उसका विवरण है। इसका शीर्षक है, क्या हुआ?' यह इस बात का विवरण देता है कि एक जेल कैसे आश्रम में बदल गया किरण इसे '3सी एस मॉडल' कहती हैं। इसका अर्थ है, करेक्टिव (सुधारक), कलेक्टिव (सामूहिक) और कम्यूनिटी बेस्ड (समाज पर आधारित) जेल का प्रबंधन। किरण ने बहुत ही विनम्र तरीके से खुद को परिदृश्य में रखने की चेष्टा की है और हर बदलाव के लिए जेल के कर्मचारियों को श्रेय दिया है और उनकी पीठ थप-थपाई है। पुस्तक में बहुत ही सजीव ढंग से बताया गया है कि किस प्रकार जेल की चार दीवारी में कैदी समाज का हिस्सा बने।

पुस्तक का अन्तिम भाग 'एमरजेंस' है। किरण ने हर तरीके का ग्राफ और चार्ट बनाकर उनके आविर्भाव के विषय में बताया है। यह पूरी एक यात्रा है कि कैसे गिद्ध संस्कृति से तिहाड़ एक आदर्श जेल में तब्दील हुआ। वे कहती हैं 'इट्स ऑलवेज पॉसिबल' इस पुस्तक का परिचय दलाई लामा ने लिखा है और विमोचन पूर्व विदेश राज्य मंत्री श्री नटवर सिंह ने दिल्ली में 25 सितम्बर, 1998 को किया। फिर इसका विमोचन मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, त्रिवेन्द्रम चंडीगढ़ और अमृतसर में भी किया गया।

इस पुस्तक का गुजराती, मराठी और हिन्दी में भी अनुवाद हुआ। 'इट्स ऑलवेज पॉसिबल' का आजकल इतालवी में अनुवाद हो रहा है। मिलान यूनिवर्सिटी में इसे कोर्स की पुस्तक बनाने के बारे में सोचा जा रहा है। जेल सुधार की कहानी से यह पुस्तक 'हर अवस्था को संभालने' की पुस्तक बन गई है। यह एक नया तरीका है अपराधियों के सुधार और अपराध निरोध का।

28

गवर्नर हाऊस के खुले द्वारः भाग्य की विडंबना

पुलिस सेवा से जेल संभालने, फिर पुस्तक लिखने से लेकर, दिल्ली के उपराज्यपाल को शहर प्रबंधन में मदद करना, एक लंबी यात्रा थी। किरण की उपराज्यपाल के विशेष सचिव के रूप में नियुक्ति भी भाग्य का एक खेल ही तो थी। उपराज्यपाल तेजेंद्र खन्ना लोकप्रिय लोक सेवक थे। किरण को उनके पूर्ववर्ती पी. के. दवे ने तिहाड़ जेल से निकाला था। कितनी मजे की बात है कि उन्हें उसी ऑफिस में विशेष क्षमता के साथ कार्य करने का अवसर दिया जा रहा था। जिस प्रतीक्षा कक्ष में बैठकर, उन्होंने पिछले अधिकारी से मिलने की प्रतीक्षा की थी, उसे ही उनके ऑफिस में बदल दिया गया था। ये कमरा उपराज्यपाल के कक्ष से सटा था। इस प्रतिष्ठित नियुक्ति के विषय में वे कहती हैं :

> 'इट्स ऑलवेज़ पॉसिबल' पुस्तक के पहले ड्राफ्ट संपादक के पास जा चुके थे, मैंने दिल्ली पुलिस को रिपोर्ट करने का फैसला किया लेकिन मुझे फिर से प्रतीक्षा करने को कहा गया। इसी दौरान दिल्ली में तेजेंद्र खन्ना नामक नए उपराज्यपाल नियुक्त हुए। जैसा कि मैंने उनके बारे में जाना, वे एक सुलझे हुए, ईमानदार व कर्मठ व्यवसायी थे। मुझे उनसे मिलने का समय लिया। दिल्ली पुलिस कमिश्नर उपराज्यपाल को रिपोर्ट करता है। खन्ना जी ने राजधानी में पुलिस सेवा के विषय में मुझसे चर्चा की तथा अपराध निवारण के बारे में, मेरी राय भी ली। उन्होंने पूरे मान से मेरी बात सुनी। भाग्य की विडंबना तो देखिए, उनसे पहले जो कार्यरत थे, उन्होंने बिना कुछ कहे-सुने, मुझे तिहाड़ से निकाल दिया। मेरे लिखित आग्रह के बावजूद, मुझे अपनी बात कहने का अवसर नहीं दिया गया और यहाँ उपराज्यपाल मेरी बात सुनने को तत्पर बैठे थे।

मैं उनके दफ्तर से निकलते वक्त यही सोच रही थी कि जल्द ही मुझे कहीं न कहीं, दिल्ली पुलिस में कोई नियुक्ति मिल ही जाएगी, लेकिन कुछ ही दिन बाद मुझे उनके ऑफिस से फोन आया कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं। मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मैं पहुँची तो वह सीधी बात पर आ गए, "क्या मेरे साथ काम करना चाहोगी?'' मैंने उत्तर दिया, "धन्यवाद, सर! लेकिन क्यों?" उन्होंने कहा, "हम मिलकर इस शहर और लोगों की समस्याओं के लिए काम करेंगे'', मैंने कहा, "सर! ये तो बहुत अच्छा अवसर है लेकिन मैं अपने करियर के इस मोड़ पर पुलिस की मुख्यधारा में ही जाना चाहूँगी।'' तब वे बोले, "अच्छी बात है, लेकिन इस बारे में एक बार फिर से सोच कर, मुझे बताना," मैं लौट आई तथा पुलिस मुख्यालय से अपनी नियुक्ति के आदेश की प्रतीक्षा करती रही। कोई संदेश नहीं आया, लेकिन उपराज्यपाल ने फिर से पुछवाया कि क्या मैंने उनका प्रस्ताव मान लिया है।

इसी दौरान, खबर फैल गई थी कि वे मुझे अपने विशेष सचिव के रूप में नियुक्त करना चाहते थे; सी. बी. आई. के सेवानिवृत्त वरिष्ठ पुलिस अधिकारी हैं। शांतनु सेन को कानून व जाँच विषयों का विशिष्ट सचिव बनाया जा चुका था। सेन का सी. बी. आई. में काफी अच्छा व सफल कार्यकाल रहा था। मैं वहाँ नियुक्ति की बात करने नहीं बल्कि यह पूछने के लिए गई कि मुझे अभी तक इंतजार क्यों करवाया जा रहा था। श्रीमान खन्ना ने साफ तरीके से कह दिया, "किरण, मुझे नहीं लगता कि दिल्ली पुलिस के उच्चाधिकारी तुम्हें मुख्यधारा में लाना चाहते हैं। तुम यहीं से काम क्यों नहीं करतीं? इस बारे में सोचो और हम अभी से काम शुरू कर देते हैं" मैंने कहा, ''सर, अगर ऐसी बात है तो क्या यह एक अस्थायी व्यवस्था हो सकती है, ताकि मैं अपना काम करके लौट सकूँ?'' वे मान गए, मैं उन्हें धन्यवाद देकर लौट आई।

उन्होंने अपने ऑफिस में सलाहकारों के तौर पर दो विशेष सचिवों की नियुक्ति की थी। ऐसा पहली बार हुआ था कि दोनों प्रतिष्ठित पद पुलिस अधिकारियों को ही मिले थे। सभी काफी हैरान थे और कई दायरों में ये रंजिश भी थी कि किरण को भारत के बेहतरीन लोक सेवक के साथ काम करने का मौका मिल रहा है। कइयों के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण तथा प्रतिष्ठित नियुक्ति थी लेकिन किरण के लिए ये किसी मिशनरी के साथ काम करने का सुनहरा मौका था।

किरण की संभावित नियुक्ति की बात मीडिया ने कही और लेफ्टिनेंट गवर्नर ने स्वयं सार्वजनिक संवाद के दौरान इस नियुक्ति की पुष्टि कर दी। वे एक संवेदनशील दोस्त और नीतिपरक सरकारी कर्मचारी थे। वे प्रशासन को भी एक सुव्यवस्थित साँचे में ढालना चाहते थे। उनका लोगों के साथ संवाद बढ़ा तो लोगों की अपेक्षाएँ भी बढ़ने लगीं। उनके ऑफिस में शिकायतों का अंबार लगने लगा, लोगों के झुंड के झुंड बिना कोई समय लिए, मिलने आ जाते। शिकायतों को कार्यवाही के लिए तुरंत संबंधित विभागों में भेजा जाने लगा; कुछ मामलों में ही रिपोर्ट माँगी गई थीं।

उनके ऑफिस में केवल एक ही कंप्यूटर था, जो कि मृतप्राय पड़ा था। खन्ना ने घोषणा की कि उनका ऑफिस कोई 'पोस्ट ऑफिस' नहीं बनेगा, वहाँ हर संभव उपलब्ध तकनीक से समस्याएं सुलझाई जाएँगी। इस घोषणा के बाद उनके ऑफिस में पद्धतिबद्ध तरीके से काम होने लगा।

किरण के कार्यकाल के दौरान व यहाँ तक कि उसके बाद भी, दफ्तर में तरह-तरह की शिकायतें आती रहीं, लंबे समय से सड़ता कूड़ा, अनाधिकार अतिक्रमण, अधिकारियों का दुर्व्यवहार, सालों से खोई फाइलों जैसी शिकायतों के अलावा और भी कई मसले थे, जो दिल्ली पुलिस के अंतर्गत आते थे।

ऑफिस शहर प्रबंधन की अव्यवस्था का आईना बन गया। लेफ्टिनेंट गवर्नर से मुलाकाती, प्रतिदिन समय लेकर या साप्ताहिक सुनवाई में मिलते लेकिन किरण से कभी भी, कोई भी मिलने आ सकता था और वह अपनी सुनवाई होने पर ही लौटता। किरण की नियुक्ति नहीं थी इसलिए उचित साधनों का भी अभाव था। किरण ने उपराज्यपाल की सहमति से अपने लिए उन लोगों में से टीम तैयार की, जो उनके साथ दिल्ली पुलिस में काम कर चुके थे और संभवत: लेफ्टिनेंट गवर्नर की सेवा भावना को समझने का माद्दा भी रखते थे। सेवादल व सेवानिवृत्त

अधिकारियों के लिए युवा सहायक कंप्यूटर ऑपरेटर रखे गए, जो कि छात्र थे। ऑफिस में पर्याप्त स्थान बनाने के बाद उन्होंने कंप्यूटर, टेलीफोन लाइन, फैक्स व फोटो कॉपी मशीन की व्यवस्था की ताकि मुलाकातों व शिकायतों की बढ़ती संख्याओं की माँगें पूरी हो सकें।

उन्होंने नई दिल्ली के नेशनल इन्फॉर्मेटिक सेंटर के तत्कालीन चेयरमैन डॉ. एन. शेषगिरि से, लेफ्टिनेंट गवर्नर के दफ्तर में कंप्यूटरीकरण के लिए सहायता ली। किरण, उनकी टीम व एन आई सी कंप्यूटर स्टाफ ने मिलकर जरूरत के मुताबिक से प्रोग्राम तैयार किए। कुछ ही सप्ताह में कंप्यूटरीकरण का कार्य हो गया। लेफ्टिनेंट गवर्नर के कंट्रोल रूम का टेलीफोन नंबर सार्वजनिक किया गया, ताकि कोई भी टेलीफोन से संपर्क कर सके। सारे आँकड़े नोट किए गए, एक ऐसी मशीन बनाई गई, जिसमें शिकायतों को दूर करने में लगा समय दर्ज होता था।

एक मोबाइल टीम प्राप्त रिपोर्टों की वैधता की जाँच भी करती थी। प्रतिदिन निजी सार्वजनिक सुनवाई का समय तय हुआ। इस तरह दिनचर्या तय होने से क्रियान्वयन, अनुपालन, विश्लेषण व मीटिंग आदि के लिए भी समय मिलने लगा। वायरलैस/डाक/फैक्स/ फोन, किसी भी माध्यम से प्राप्त शिकायत को कंप्यूटर में दर्ज किया जाता तथा एक नंबर दे दिया जाता, साथ ही यह भी दर्ज होता कि उससे संबंधित अधिकारी कौन होंगे। डाक पाने वाली सभी इकाइयों का मासिक अंकेक्षण होता, किरण पहले से सबके लिए समय नियोजित करके सूचना भेज देतीं। हर माह के अंत में, एक कंप्यूटर ग्राफिक निकाला जाता, जिसमें हर इकाई का अनुपालन ब्योरा दर्ज होता था ये प्रदर्शन करने वालों व न करने वालों के लिए पारदर्शी रिकॉर्ड था। अच्छे कामों के लिए एल. जी. पीठ थपथपाते तथा प्रदर्शन में कमी पाने पर उचित राय दी जाती। इस प्रकार का सुव्यवस्थित, सुसंगठित व पद्धतिबद्ध कार्य पहले कभी नहीं हुआ था इसलिए इसे सराहा गया, मान दिया गया और ईर्ष्या भी हुई।

भारतीय गवर्नर के ऑफिस में ऐसी कार्रवाई, अपने-आप में एक इतिहास थी? जहाँ गवर्नर लोगों के अपने गवर्नर बन गए थे।

इसी प्रक्रिया में उपराज्यपाल ने सिटीजन वार्डन स्कीम शुरू की। उन्होंने रेजीडेंट एसोसिएशनों के प्रतिष्ठित नागरिकों को चुना, जो कि सही मायनों में सेवा करना चाहते थे। रोटरी व लायंस क्लब के सदस्य, सेवाओं के सेवानिवृत्त व्यक्ति, सैन्यबल व अन्य व्यक्ति शामिल किए गए। उन सबको हस्ताक्षर युक्त पहचान-पत्र के साथ-साथ नियुक्ति पत्र भी दिया गया, साथ ही उनके कर्तव्यों का चार्टर भी था। वे मासिक रूप से, एल. जी. द्वारा नियुक्त सिटीजन वर्धन डेस्क प्रमुख इंस्पेक्टर सरबपाल सिंह को अपनी रिपोर्ट देते। किरण ने व्यक्तिगत रूप से इस पहलू का निरीक्षण किया। वे प्राय: सिटीजन वार्डनों की बैठकें करतीं व उन्हें क्षेत्रीय अधिकारियों के साथ समन्वित होने में सहायक होतीं। सिटीजन वार्डन डेस्क की उपलब्धियों, विचारों व सुझावों का न्यूजलैटर भी प्रकाशित होता है। इसके बाद एल. जी. ने सिटीजन ट्रैफिक वार्डनों की नियुक्ति की। सड़क सुरक्षा से जुड़े काम करने के लोगों का यातायात उल्लंघन रिकॉर्ड स्लिप दिए गए। उन्हें रंग-बिरंगी जैकटें दी गई ताकि वे सिटीजन ट्रैफिक वार्डन के रूप में पहचाने जा सकें। इन वार्डनों ने यातायात प्रबंधन में अधिकारियों की मदद की। वास्तव में, लेफ्टिनेंट गवर्नर का यह

एक सराहनीय प्रयास था।

इस तरह से जनता की भागीदारी, चुने गए प्रतिनिधियों के लिए खुली चुनौती थी। कई तथाकथित नेताओं ने स्वयं को असुरक्षित व डरा हुआ महसूस किया। कइयों ने तो इसके लिए खुलेआम विरोध जता दिया, जबकि कइयों ने समर्थन भी दिया। दिल्ली की जनता ने इसका स्वागत किया, वे तो जाने कब से यही चाहते थे। यह प्रजातांत्रिक, प्रतिक्रियावादी तथा सामूहिक भागीदारी को प्रश्रय देने वाली सरकार थी। जनता ने इसे खुले दिल से सराहा। परंतु जो प्रश्न सदा मन में आता था कि यह तंत्र कब तक चलेगा। किरण कब तक रहेंगी? उत्तर भी स्पष्ट था- जब तक लेफ्टिनेंट गवर्नर पद पर रहेंगे।

बहुत जल्द, ऐसा ही हुआ... करीब डेढ़ वर्ष बाद, मार्च 1998 में केंद्र सरकार बदली, खन्ना की नियुक्ति केंद्र सरकार ने की थी इसलिए उन्हें भी पद से हटा दिया गया। इसके बाद प्रेस स्टेटमेंट जारी किया गया कि लेफ्टिनेंट गवर्नर के घर को निगरानी की जरूरत नहीं, साथ ही यह भी माना गया कि उपलब्धियाँ तो कई रहीं। सिटीजन वार्डनों ने असंख्य पत्र लिखकर जानना चाहा कि उनकी स्कीम का क्या होगा लेकिन नियुक्त अधिकारी के पास कोई उत्तर नहीं था। उन्होंने हार मान ली। किरण को भी अवांछित माना जाने लगा। वे जब भी नए लेफ्टिनेंट गवर्नर को कोई प्रपत्र भेजतीं, तो उस पर ध्यान न दिया जाता।

सरकार के काम करने के तौर-तरीके के साथ-साथ उनके उद्देश्य तथा प्राथमिकताएं भी बदल गए थे। राजनिवास (एल. जी. ऑफिस) के दरवाजे जनता के लिए बंद हो गए थे। एक स्टाफ कर्मचारी ने कहा कि वहाँ तो बिना मुलाकात का समय लिए, एक पंछी भी पर नहीं मार सकता। जनता की इस भवन तक पहुँच तो एक याद ही बनकर रह जाएगी।

किरण को उनकी विनती पर दिल्ली पुलिस में बुलवा लिया गया। इस बार वे ज्वाइंट कमिश्नर (प्रशिक्षण) चुनी गईं, किंतु पुलिस मुख्यालय में पाँव तक रखने की इजाजत नहीं दी गई जबकि बाकी सभी ज्वाइंट कमिश्नर वहीं से अपनी गतिविधियों को संचालित व समन्वित करते थे। पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, जहाँ किरण ने अपना कार्यभार संभाला था, वह मुख्यालय से काफी दूर; दक्षिण-पश्चिमी दिल्ली में देहाती छोर पर था। वह संस्था भी गोपनीय दशा में थी। फंड की कमी के कारण, स्थान उपेक्षित था। उसे आधुनिक मशीनों व उपकरणों से सुसज्जित करने की भीख माँगी गई ताकि दिल्ली पुलिस की भावी पीढ़ी को प्रशिक्षित किया जा सके। किरण ने उनमें अपनी सेना व देश की सुरक्षा का भविष्य देखा। ज्वाइंट कमिश्नर के रूप में उनका कार्यकाल दो चरणों में रहा, इनके बीच 41 दिन के अंतराल में वे चंडीगढ़ की इंस्पैक्टर जनरल ऑफ पुलिस के पद पर रहीं।

29

सफलता व त्रासदीः चंडीग□□ में लंबे 41 दिन

एक शहर, जो किरण को बहुत पसंद है, वह है चंडीगढ़। वह इसके चप्पे-चप्पे से वाकिफ़ है, तब से, जब वह एम.ए. की विद्यार्थी थीं और साइकिल पर घूमा करती थीं। ''जब भी बारिश होती, मैं अपनी साइकिल उठाकर निकल जाती। एक तरफ़ हवा अनुकूल होती, परन्तु दूसरी ओर मुझे उससे संघर्ष करना पड़ता। मैं उसका मज़ा लेती थी। मैं टेनिस के लिए स्टेमिना बढ़ा रही थी और यह इसमें मदद देता।

किरण ने चंडीगढ़ तबादले के लिए अनुरोध किया और उन्हें पोस्टिंग मिल गई। उन्होंने 10 महीने संयुक्त आयुक्त, पुलिस प्रशिक्षण में बिताए थे। पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज के छात्रों से, अपने विदाई संदेश में, उन्होंने कहा कि वह अपनी चुनौती बढ़ाने के लिए चंडीगढ़ जा रही है, यह देखने के लिए कि पुलिस बल की अगुआई करना कैसा है? वह कैसे इस बल को नेतृत्व देंगी और कैसे उन्हें व्यावसायिकता सिखाएंगी, जिसकी पुलिस सेवा से आशा की जाती है? इसके अलावा, जो दबाव आते हैं, उससे वह कैसे निपटेंगी?

ऐसा लगा जैसे वे वक्तव्य देकर नहीं भविष्यवाणी कर आई हों। चंडीगढ़ पुलिस के आईजी के रूप में बिताएं 41 दिनों में उन्हें यह परीक्षा हर मोड़ पर कई बार देनी पड़ी। उनकी यह नियुक्ति उनके कामकाजी जीवन की सबसे छोटी नियुक्ति थी।

किरण के सहकर्मी बताते हैं कि उनके पहले दो सप्ताह में ही निष्क्रिय पुलिस तन्त्र अब सक्रिय हो गया। जितने पुलिस कर्मी सुरक्षा का चोला पहने व्यक्तिगत स्टाफ के रूप में काम कर रहे थे, वापस आ गए। श्रीमती बेदी ने स्वयं अपनी मार्गरक्षक गाड़ी एवं स्टाफ लौटा दिए। चालक सजग हो गए, प्रदूषण चेक केन्द्र पर लम्बी कतारें लगने लगीं, साइकिल चालक अपनी लेन में आ गए। फुटपाथ से दुकानें हटकर सही जगह पर आ गईं। गायब हो जाना अब इतिहास की बात थी। किरण स्वयं किसी भी पुलिस स्टेशन में ठीक नौ बजे पहुंच जातीं। इसलिए हम सब इस डर से कि उन्हें कहीं कोई कमी नज़र न आ जाए, लगे रहते। पुलिस स्टेशनों को हर प्रकार के साधन मिलने लगे। सब कुछ इतनी जल्दी बदल गया, कि यह अद्भुत लगने लगा। रात्रि के अपराध रोकने के लिए, पुलिस बल चंडीगढ़ के आस-पास के गांव में घूमती रहती। पुलिस बल में जो शराबी थे, उन्हें समझ आने लगा कि अपना व्यवहार बदलने के अलावा, कोई और विकल्प नहीं है। इन सब बातों से एक व्यक्ति बहुत दु:खी था। वह थीं गृह सचिव-एक महिला जो किरण के आने के पहले चंडीगढ़ की असली आई जी थीं। वह पुलिस अफ़सरों को डांटती धमकातीं,

निलम्बित कर देतीं, यहां तक कि उनका तबादला भी करवा देती थीं और यह सब तत्कालीन आई.जी.रामपाल सिंह के होते हुए हुआ। इसका प्रमाण है निम्नलिखित दस्तावेज-

CHANDIGARH ADMINISTRATION
HOME DEPARTMENT

ORDER

The following Police officials posted at Police Post, Sector 22, Chandigarh, are hereby transferred and sent to the Police Lines, Sector 26, Chandigarh, forthwith:

S.No.	Name, Rank & No.
1.	ASI Gurmeet Singh, 499/CHG
2.	C. Sawarn Singh, 115/CP
3.	C. Prema Nand, 247/CP
4.	C. Kashmir Singh, 3690/CP
5.	C. Raj Kumar, 1361/CP
6.	C. Balbir Singh, 2683/CP
7.	C. Satish Kumar, 2884/CP

ANURADHA GUPTA, IAS
HOME SECRETARY,
CHANDIGARH ADMINISTRATION

Endst. No. 16435-HIII (I) -98/

Date: not mentioned

A copy is forwarded to the Inspector General of Police. U.T., Chandigarh, for information and necessary action.

He is requested to arrange to post alternative personnel in place of the abovesaid officials transferred from Police Post, Sector 22 to Police Lines.

Gurmel Singh

Joint Secretary Home
for Home Secretary,
Chandigarh Administration

Endst.No.16435-HIII(I)-98/25561 Dated:18-12-98

A copy is forwarded to the following for immediate compliance to:

1. ASI Gurmeet Singh, 499/CHG
2. C. Sawarn Singh, 115/CP
3. C. Prema Nand, 247/CP
4. C. Kashmir Singh, 3690/CP
5. C. Raj Kumar, 1361/CP
6. C. Balbir Singh, 2683/CP
7. C. Satish Kumar, 2884/CP

Gurmel Singh

Joint Secretary Home
for Home Secretary,
Chandigarh Administration

---

* Evidential document of the home secretary bypassing the authority of the IG by issuing transfer orders.

गृह सचिव ने यह आदेश जारी कर दिया और फिर इसे अपनी इच्छानुसार रद्द कर दिया और आई.जी. को, सारी क्रिया पूरी होने पर, बतला दिया। इसका प्रमाण है यह निम्नलिखित दस्तावेज-

No. 16435-HIII (I)-98/25589 Dated: 17-12-1998

CHANDIGARH ADMINISTRATION
HOME DEPARTMENT

ORDER

1. Whereas disciplinary proceedings against Sub Inspector Ved Parkash and Assistant Sub Inspector Azad Singh, Police Post Sector 22, Chandigarh are contemplated.

2. Now, therefore, in exercise of the powers conferred by Rule 16.18 of the Punjab Police Rules, 1934, as made applicable to the Union Territory, Chandigarh Police Officials, the said Sub Inspector Ved Parkash and Assistant Sub Inspector Azad Singh are hereby placed under suspension with immediate effect.

3. It is further ordered that during the period that this order shall remain in force, the headquarters of Sub Inspector Ved Parkash and Assistant Sub Inspector Azad Singh shall be at Chandigarh and they will not leave the headquarters without obtaining prior permission of the Competent Authority. SI Ved Parkash and ASI Azad Singh will be entitled to subsistence allowance as per rules.

(Anuradha Gupta)
Home Secretary,
Chandigarh Administration

To

1) SI Ved Parkash,
   PP, Sector 22, Chandigarh.
2) ASI Azad Singh,
   PP, Sector 22, Chandigarh.

Endst. No. 16435-HIII (I) -98/

Date: not mentioned

A copy is forwarded for information and necessary action to the Inspector General of Police, U.T. Chandigarh.

Joint Secretary Home
for Home Secretary,
Chandigarh Administration

---

* Evidential document of the home secretary's suspension orders.

No. 4970-HIII (1)-99/8676
CHANDIGARH ADMINISTRATION
HOME DEPARTMENT
ORDER

1. Whereas disciplinary proceedings against Sub Inspector P. K. Dhawan, Sub Inspector Balhar Singh and Head Constable (record keeper) Yash Pal, U.T. Chandigarh Police, are contemplated.

2. Now, therefore, in exercise of the powers conferred by Rule 16.18 of the Punjab Police Rules, 1934, as made applicable to the Union Territory, Chandigarh, the said Inspector P.K. Dhawan, Sub Inspector Balhar Singh and HC Yash Pal, U.T. Chandigarh Police, are hereby placed under suspension with immediate effect.

3. It is further ordered that during the period that this order shall remain in force, the Headquarters of the said Inspector P. K. Dhawan, Sub Inspector Balhar Singh and HC Yash Pal, U.T. Chandigarh Police, shall be at Chandigarh and they shall not leave the Headquarters without obtaining prior permission of the Competent Authority. The said Inspector P. K. Dhawan, Sub Inspector Balhar Singh and HC Yash Pal, U.T. Chandigarh Police, shall be entitled to subsistence allowance as per rules.

Chandigarh,
dated, the 6th May, 1999

(Anuradha Gupta)
Home Secretary,
Chandigarh Administration
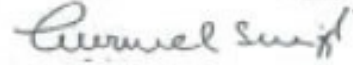
To

1) Inspector P. K. Dhawan,
   U.T. Chandigarh Police
2) Sub Inspector Balhar Singh,
   U.T. Chandigarh Police
3) HC Yash Pal, 699/C.P.
   U.T. Chandigarh Police

Endst. No. 4970-HIII (I) -99/
Date: not mentioned

A copy is forwarded for information and necessary action to the Inspector General of Police, U.T. Chandigarh.

Joint Secretary Home
for Home Secretary,
Chandigarh Administration

* Evidential document of the home secretary's suspension orders.

गृह सचिव द्वारा घोषित और लिखित दिशा-निर्देशों जो कि आई.जी. पुलिस द्वारा खुद कार्यान्वित किये जाने थे, की अवमानना करते हुए पदों का स्थानांतरण किया गया।

CHANDIGARH ADMINISTRATION
HOME DEPARTMENT
ORDER

Inspector Jaswant Singh, SHO North is hereby transferred and sent to the Police Lines forthwith.

Anuradha Gupta
Home Secretary,
Chandigarh Administration.

Endst. No. 16440-HIII (I) -98/25584
Date: 17-12-1998

A copy is forwarded for information and necessary action to the:

1) Inspector General of Police, U.T. Chandigarh.
2) Senior Superintendent of Police, U.T. Chandigarh.
3) Shri Jaswant Singh, Inspector presently posted as SHO North, U.T. Chandigarh.

Joint Secretary Home
for Home Secretary
Chandigarh Administration

---

* Evidential document of the home secretary's transfer orders.

गृह सचिव द्वारा जारी आदेश, जिन्हें उन्होंने निरस्त कर दिया और समस्त क्रिया-कलाप समाप्त होने के पश्चात आई.जी. पुलिस इसकी सूचना दी। प्रस्तुत दस्तावेज इसी बात की पुष्टि करते हैं।

From The Home Secretary,
Chandigarh Administration

To The Inspector General of Police,
Union Territory, Chandigarh,
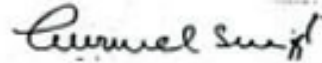
Memo. No. 74-HIII (1)-99/1004
Dated ... 18/1/1999

Subject Inquiry into the case of beating up of SHO, PS North.

After considering the matter it has been decided to revert ... Sh. Jaswant Singh as SHO (North) from Police Lines, who was transferred to the Police Lines by this Administration order issued by Endst. No. 16400-HIII (1)-98/25584 dated 17.12.1998.

You are, therefore, requested to inform the SSP concerned to take further action in the matter accordingly.

Joint Secretary Home
for Home Secretary
Chandigarh Administration

---

* Evidential document of the cancellation of her own order by the home secretary.

जैसा कि आदेश बतलाता है, सबसे खराब बात यह थी कि यह सभी आदेश क्रियान्वित होते थे। किरण के आई.जी. पुलिस, चंडीगढ़ बनने के पहले, ऐसी थी व्यवस्था। उनके पहले के आई.जी., रामपाल सिंह ने जब देखा कि उनके विरोध का कोई असर नहीं हो रहा है, तो उन्होंने हार मान ली! उन्होंने कहा ''किसी ने मेरी बात नहीं सुनी। इस कारण उन्हें अपनी इच्छानुसार करने देने के अलावा कोई और उपाय नहीं था'' गृह सचिव ने यही किरण के साथ भी करना चाहा। उन्होंने राजपत्रित और अराजपत्रित पुलिस अफ़सरों के निलम्बन आदेश दे दिए और किरण को खबर देने के पहले पत्रकारों को यह खबर भिजवा दी। चुनाव आ रहे थे और गृह सचिव, यह दिखा रहीं थी कि उनके बिना काम नहीं हो सकता। क्योंकि वह मुख्य निर्वाचन अफ़सर थी। कई पुलिस अधिकारियों और अन्य ने शिकायत की कि वह अपने व्यवहार से तानाशाह थीं और कोई सवाल पसंद नहीं करती थीं। जाहिर था कि पूरी संस्था उनके साथ थी जबकि किरण नई थीं और अभी भी पुल बनाना बाकी था और उन्हें अपने प्रभाग के बाहर के अफसर और वरिष्ठ सहकर्मियों को जानना बाकी था। पहले कुछ सप्ताह, वे अपने घर को ठीक-ठाक करने में लगाए। परन्तु असुरक्षा और निहित स्वार्थों ने बेहद परेशान किया। गृह सचिव ने किरण पर वहां हमला किया जहां सबसे अधिक दर्द होता है। उन्होंने पुलिस के दो

अधीक्षकों और एक इंस्पेक्टर को निलंबित कर दिया और भी कुछ और स्टाफ़ को सस्पेंड कर दिया गया। एक बार फ़िर आदेश उन तक सीधे पहुंच गए और पत्रकारों को ख़बर दे दी गई। चंडीगढ़ पुलिस बल के आई. जी. की हैसियत से किरण को यह ख़बर रोते अफ़सरों और समाचार पत्रों से मिली। इस निलम्बन का आधार था एक जांच। इसे गृह सचिव ने 16 फरवरी, 1999 को करवाई थी जब किरण के पूर्वाधिकारी का कार्यकाल चल रहा था। (इधर यह याद रखना होगा कि किरण चंडीगढ़ पुलिस में 5 अप्रैल 1999 को आई थीं)

विवाद उस समाचार पत्र की रिपोर्ट से हुई जो 1983 और 1984 में हुए आतंकवादी नियम की खोई फाइलों से सम्बन्धित थीं। यहां यह गौर करना होगा कि उस समय पंजाब में आतंकवाद अपने शिखर पर था-यहां तक कि चंडीगढ़ में भी। समाचार पत्रों की रिपोर्ट के हवाले से जिला वरिष्ठ पुलिस7 अधीक्षक बलदेव सिंह से कहा था कि वह जांच करके रिपोर्ट दें। उन्होंने अन्तत: फाइलों को खोज निकाला। परन्तु बिना जांच पड़ताल ख़त्म हुए और बिना आई.जी. पी. से सलाह किए, गृह सचिव ने अपनी ओर से जांच का आदेश दे दिया। यह जांच बिना निम्नलिखित चीजों के पूरी कर दी गई-

1. तत्कालीन एस.एस.पी.सी.एस.आर. रेड्डी के बयान उसमें हैं ही नहीं। उन्हें हर चीज़ की जानकारी थी। वह वहां कई वर्षों से थे और उन्हें वहां कई बार निरीक्षण का मौका भी मिला था।
2. एस.पी. से बयान और निष्कर्ष लिए बिना ही जांच पूरी हो गई। जबकि उन्होंने ही उसी पुलिस स्टेशन से फाइलें बरामद करवाई थीं।
3. इसके अलावा कुछ और जरूरी बयान भी इसमें नहीं थे। आई.जी.का भी नहीं। कम से कम वहां पदस्थ होकर वे चीजों को बेहतर समझ सकती थी।
4. किरण ने जब कार्यभार संभाला तो उसे ऐसी किसी जांच के विषय में नहीं बताया गया था। परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ तो, उन्होंने खुद उसका विश्लेषण किया। परन्तु जब इसका कोई लाभ न मिला, तो उन्होंने चंडीगढ़ के प्रशासक से मुलाकात करने की कोशिश की।
5. उन्होंने उन्हें एक लिखित पत्र से बताया कि वह क्यों समझती हैं कि उन अफ़सरों का निलम्बन उचित नहीं था माना जाता है कि उन्होंने कुछ इस तरह से अपना निवेदन अंतिम जज के सामने प्रस्तुत किया था:-
6. महत्त्वपूर्ण साक्ष्य, जिनमें एस.पी. (शहर) के शामिल थे, जिन्होंने यह जांच करवाई थी और इससे जुड़े अन्य अफ़सर जिन्हें सब जानकारी थी, उनसे संपर्क तक नहीं किया गया।
7. 1985 के बाद के निरीक्षणों में कभी भी इस पुलिस स्टेशन के निरीक्षण में फ़ाइल ग़ायब होने का पता नहीं चलता है और जिन अफ़सरों की जांच हो रही थी और जिन्हें निलंबित करने पर विचार किया जा रहा था, उनका कोई इरादा फ़ाइल को न तो खराब करने का था न ही इधर-उधर करने का, क्योंकि वे स्वयं ही बाद के वर्षों में इससे जुड़े थे।
8. विशेषज्ञ की रिपोर्ट भी किसी सरकारी स्त्रोत से नहीं थी-वह किसी निजी विशेषज्ञ की थी, और जहां तक उनकी जानकारी है उन्हें ज़बरदस्ती अवकाश दिला दिया गया था।

9. वह ख़ास रिपोर्ट तत्कालीन रिकॉर्ड था और उस पर ई.ओ की जांच की टिप्पणी भी नहीं थी।
10. ऐसे प्रकरण जिनका पता नहीं लग सका, उन्हें पांच साल बाद नष्ट कर दिया जाता है। इन्हें भी 1995 में नष्ट माना जाना चाहिए था।
11. यह माना गया कि उन फाइलों से किसी को लाभ या हानि नहीं होती, इसलिए उनके खोने या इधर-उधर करने की आवश्यकता नहीं थीं।
12. जांच रिपोर्ट अधूरी थी और उसके अनुसार चलने से किसी भी तरह न्याय की उम्मीद नहीं है।

किरण ने याचना की कि जिन अफ़सरों को निलंबित किया जा रहा है। उनके रिकॉर्डों की जांच हो चुकी है। उन्हें कई पुरस्कार मिल चुके हैं। उनके रिकॉर्डों में दर्ज है कि उनकी सेवा पिछले कई दशकों की विशिष्ट सेवा थी। वह अभी कई और साल सेवा कर सकते थे।

किरण के पूर्वाधिकारी भी गलत नहीं थे। उन्होंने भी गृहसचिव के मामले में आपत्तियां उठाई थीं लेकिन कोई सुनता नहीं था। किरण ने भी वही किया...और इस बार लोगों ने सुना। समाचार पत्रों ने किरण और गृहसचिव दोनों के पूरे-पूरे नजरिए प्रकाशित किए।

गृह सचिव की अपरिहार्य होने का गलतफहमी का पर्दाफ़ाश हो गया। पहली बार ऐसा हुआ कि लोगों ने गृह सचिव के गलत कार्यों के बारे में और आई.जी. के स्थान पर उनका काम करने और चंडीगढ़ के पुलिस कार्यो में सीधे दख़ल अंदाजी करने के सबूत देने शुरू किए। हालांकि गृहसचिव ने शुरू में ही कहा था कि वे दखलअंदाजी नहीं करती। मगर अपने ही दावे के समर्थन में न तो उनके पास कोई तर्क था न सबूत। वे सिवा किरण पर तोहमत लगाने के अलावा और कुछ नहीं कर सकती थी।

किरण ने अपनी पुलिस फ़ोर्स और जवानों का पक्ष लिया और उनके निलंबन का विरोध किया। उन्होंने साफ़-साफ़ कहा 'मैं शहर की आईजी हूं और अपने पुलिस बल का नेतृत्व करती हूं, क्योंकि मैं एक अच्छी सेवा देना चाहती हूं लोगों को इसलिए उनका शोषण नहीं करना चाहती। मैं केवल दर्शक न बन सकी बल्कि पुलिस सेवा का बेहतरी का काम करने वाली बनी।' दरअसल, वे चाहते थे कि पुलिस बल वैसा ही रहे, उनके नीचे दबा ताकि वे जब चाहें जिसे चाहें मार सकते थे। किरण के अनुसार, ''मैं साक्षी नहीं रह सकती थी। मेरा अब कर्तव्य बन गया था कि मैं देखूं कि मेरे पुलिस का मनोबल नीचे न गिरने पाए नहीं तो मैं उनसे कैसे उम्मीद कर सकती थी कि शहर उनसे जिस पहल की उम्मीद करता है वे उस पर खरे उतरे।

परंतु बहुत कम लोग जानते थे कि जिस समय किरण पुलिस तंत्र को सुधारने में जुटी थीं, वे स्वयं भी किसी घायल आत्मा से कम नहीं थी। किरण की माँ अपनी जिंदगी से जूझ रही थीं। वे चंडीगढ़ के पी. जी. आई. अस्पताल (एक प्रमुख मेडिकल संस्था व अस्पताल) में सेरीब्रल स्ट्रोक के बाद, कोमा में थीं। वे अपनी बिटिया के साथ चंडीगढ़ आई थीं। वे किरण को बेहद चाहती थीं...माँ-बेटी का यह रिश्ता बेहद आत्मीय व स्नेहपूर्ण था और काफी हद तक आदर्श

भी। किरण ने माँ को कभी बीमार तक नहीं देखा था और यहाँ वे बेहोश पड़ी थीं। किरण, उनकी बहनों व पिता ने सोचा कि उन्हें दिल्ली ले जाना ठीक रहेगा। शायद माहौल बदलने से कोई फर्क पड़ जाए। ऐसा ही एक चमत्कार किरण के पिता के मामले में हुआ था, आइजोल में उनकी हालत बिगड़ गई थी, उन्हें वायुमार्ग से दिल्ली लाना पड़ा। किरण ने भारत सरकार से तबादले की प्रार्थना की क्योंकि उनकी माँ की हालत काफी गंभीर थी। उनकी अर्जी मंजूर हो गई और उन्होंने अपना कार्यभार सौंप दिया। उनके उत्तराधिकारी ने, उनके जाते ही सबसे पहले उन अधिकारियों का निलंबन किया, जिसे अब तक किरण ने रोक रखा था।

इसी दौरान, किरण दिल्ली जा पहुँचीं, उनकी माँ को आई. सी. यू. यूनिट वाली एंबुलेंस में दिल्ली लाया गया, जिसे एस्कॉटर्स हार्ट इंस्ट्टयूट से भेजा गया था। वे सीधा अस्पताल पहुँचीं और चमत्कार घटने की प्रतीक्षा करने लगीं लेकिन उनकी माँ को कभी होश नहीं आया और तीसरे दिन उन्होंने दम तोड़ दिया। वे 41 दिन तक कोमा में रहीं।

किरण अंतिम अरदास व प्रार्थना के लिए चंडीगढ़ गईं, जहाँ सैकड़ों पुलिस वाले व उनके परिवार जन, उनकी माँ की सलामती के लिए दुआ माँग रहे थे, पूजा-पाठ कर रहे थे। किरण की माँ 41 दिन तक अस्पताल में रहीं। उनके लिए 41 बार प्रार्थनाएँ व अरदास की गईं। किरण 41 दिन तक चंडीगढ़ पुलिस में रहीं और उन्हें इन 41 दिनों के बाद प्रशिक्षण की नियुक्ति मिली।

30

मानवीय पुलिस व्यवस्था

आर्ट्स से ग्रेजुएशन के बाद एम.ए. में दाखिले के बीच तीन माह का प्रतीक्षा काल था। इसमें तफरी या आराम करने के बजाय किरण ने एक अच्छे स्कूल में जाकर बच्चों की नर्सरी क्लास में पढ़ाना शुरू किया। इसके लिए उन्हें शारीरिक श्रम भी करना पड़ता। वे तब साइकिल से पढ़ाने जातीं। जल्दी ही बच्चों और उनमें एक अच्छा साहचर्य बन गया। वे उनके साथ गाती व खेलती भी थीं। एम. ए. की परीक्षा के परिणाम के पहले ही किरण का विमेन्स कॉलेज में लेक्चरर की नौकरी मिल गई थी। शायद इसलिए कि वे पंजाबी विश्वविद्यालय की सबसे अच्छी छात्रा रही थीं। वे ग्रेजुएशन में पॉलिटिकल साइन्स पढ़ाती थीं और उसके बाद स्वयं छात्रा बन जाती थीं। किरण अभी छोटी थीं और उनके बाल भी छोटे-छोटे थे। यह उस समय के शहर के चलन के खिलाफ़ था।

सन् 1999 में, करीब 28 वर्ष बाद, उन्हें फिर से शिक्षण कौशल प्रमाणित करने का अवसर मिला: वे दिल्ली पुलिस के पुरुष तथा महिलाओं की प्रशिक्षिका बनीं उन्होंने न केवल प्रशिक्षण का निरीक्षण व नियोजन किया बल्कि उनके साथ ध्यान करके, पुलिस प्रशिक्षण को नए आयाम भी दिए। किरण अपने जीवन के इन तीस वर्षों में सचमुच काफी आगे निकल आई थीं।

उन्होंने दिल्ली पुलिस के लिए पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में प्रशिक्षण सत्र आरंभ किया। ऐसा पहली बार हुआ था कि ज्वाइंट कमिश्नर पद का वरिष्ठ पुलिस अधिकारी प्रत्यक्षत: प्रशिक्षण का निरीक्षण कर रहा था।

पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज 'झरोडा कलाँ' में था, जो उनके घर से 45 किलोमीटर से भी दूर था। वे रोज़ की इस यात्रा में पत्रिकाएँ व समाचार-पत्र पढ़ने के अतिरिक्त फाइलें निबटातीं। कॉलेज में पहुँचने के बाद, प्रशिक्षण गुणवत्ता की जाँच, छात्रों से प्रतिपुष्टि (फीडबैक) लेना तथा स्टाफ से संयोजन करना ही उनकी प्राथमिकताएँ रहीं।

प्रशिक्षण का कार्यभार संभालने के पश्चात, वे तत्काल पुलिस कमिश्नर वी. एन. सिंह तथा केंद्रीय गृह मंत्री लाल कृष्ण आडवाणी से मिलने गईं; ताकि पुलिस बल प्रशिक्षण की कमियों व अभावों की चर्चा कर सकें। एक आधुनिक प्रशिक्षण संस्थान के हिसाब से कंप्यूटर व दूसरे बुनियादी उपकरणों का अभाव था। छात्रों को श्यामपट्ट पर चित्र बनाकर कंप्यूटर सिखाया जाता था और वे सफल करार भी कर दिए जाते थे। एक छोटे से स्टोर में पड़ी अप्रचलित किताबें, पुस्तकालय कहलाती थीं। कानून अध्यापकों की गहरी कमी थी, 250 छात्रों की कक्षा को केवल एक निर्देशक माइक्रोफोन व लाउडस्पीकर की सहायता से पढ़ाते थे।

गृहमंत्री ने तत्काल उत्तर दिया, "मेरे पास प्रस्ताव लाइए तथा बताइए कि किस चीज की कमी है, किरण काफी उत्साहित लौटीं। उन्होंने पुलिस कमिश्नर को मंत्री जी की प्रतिक्रिया बताई और फिर पूरी टीम काम में जुट गई। कुछ दिन बाद, वे अपने साथ कंप्यूटर पुस्तकालय, फायरिंग व सहायक वाहन चालक व मल्टीमीडिया तथा दृश्यश्रव्य उपकरणों के प्रस्ताव ले गईं। गृहमंत्री ने प्रस्तावों का अध्ययन किया व उपयुक्त निर्देश दे दिए। तत्काल परिणाम सामने आए। गृहमंत्रालय के संशोधित अनुमान में दिल्ली पुलिस को अधिक पैसा मिला। मीटिंग में उपस्थित किरण ने, उपकरणों का प्रबंध करने में गृहमंत्रालय की सहायता माँगी। संबंधित अधिकारी सहायता देने को राजी हो गए। इस प्रकार राह में आने वाली सारी बाधाएं हट गईं। पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज के प्रतिबद्ध अधिकारी व गृहमंत्रालय के अधिकारियों ने जल्द ही सारा काम कर दिया। उसी बजट अवधि में सारे उपकरण व मंत्र चालू कर दिए गए। इन मल्टीमिडिया गैजेट में; कैमरे, प्रोजेक्टर, विज़्वलाइजर, स्क्रीन व स्पीकर्स आदि शामिल थे; इनके माध्यम से एक ही अध्यापक; एक बार में 16 कक्षाओं को पढ़ा सकता था।

किरण ने ट्रेनिंग कॉलेज को इस हद तक आधुनिक बना दिया कि यहाँ पुलिस अधिकारियों को व्यावसायिक कौशल भी सिखाए जाने लगे। उन्होंने कुछ निश्चित स्थान भी तैयार करवाए पर इनके लिए गृहमंत्रालय या पुलिस आयुक्त को सूचना देने की आवश्यकता नहीं थी। ये वस्तु स्थानीय पहलों से उत्पादित हो सकती है, इनके लिए ऊपर तक जाने की आवश्यकता नहीं थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि अब तक किसी का भी इन पर ध्यान नहीं गया था। ये प्रशिक्षार्थियों के कल्याण से जुड़ी थीं, जिनमें कैंटीन, राशन की दुकान, बैंक, मिल्क बूथ (हैल्थ फूड भी मिलता था), जल की समुचित व पर्याप्त व्यवस्था, विभाग के लिए परिवहन व्यवस्था तथा टेलीफोन करने की सुविधा शामिल थी।

प्रशिक्षण की गुणवत्ता को भी प्रधानता दी गई। पुलिस कार्य के व्यावहारिक पहलुओं को प्राथमिकता दी गई, जिनमें प्रशिक्षण तथा सिद्धांतों को व्यवहार में बदलना शामिल था। लिंग संवेदात्मकता, व्हाइट कॉलर अपराध, साइबर अपराध व अदालत में सबूत पेश करने जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर अतिरिक्त कोर्स करवाए गए। छात्रों में रोमांच की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित किया गया।

वहाँ के सभी सदस्य पूरी तरह से प्रेरित नहीं थे क्योंकि उन्हें लगता था कि ट्रेनिंग कॉलेज की नियुक्ति के रूप में उन्हें दण्ड दिया गया है। उनकी मानसिकता बदलकर उन्हें यकीन दिलाना पड़ा कि वे दूसरों को कुछ सिखाने पर प्रेरित करने के लिए कितना महत्त्व रखते हैं।

यह सब कैसे संभव हो सकता था, जबकि अधिकतर स्टाफ को दिल्ली पुलिस की कार्मिक नीतियों से शिकायत थी? किरण को एक बार फिर उसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा, जो उन्होंने तिहाड़ जेल में देखी थी, उन्हें वहाँ के वासियों को एहसास दिलाना था कि वे स्वयं ही अपनी धारणाओं तथा बोध के उत्तरदायी हैं। यहाँ उन्होंने उनसे कहा कि यदि वे प्रशिक्षण को दण्ड मानते हैं तो वे स्वयं को तथा अपने प्रदर्शन को ही दण्ड दे रहे थे।

उन्होंने जोर देकर कहा कि वह हर किसी का अपना ही निर्णय होता है कि वह स्वयं से कैसे

पेश आए। इन पुलिस अधिकारियों पर 'ऊपर वालों' का गहरा प्रभाव था। उनमें से प्रत्येक सामाजिक स्वीकृति पर काफी हद तक निर्भर था। उन्होंने तिहाड़ जेल की तरह यहाँ भी विपश्यना ध्यान कार्यक्रम से लोगों को परिचित करवाया। इसका प्रमुख उद्देश्य यही था कि स्टाफ अधिकारी दूसरों को प्रेरित करने व प्रशिक्षण देने से पूर्व स्वयं पर संयम तथा अनुशासन रखना सीखें, हालांकि ये काम काफी कठिन था क्योंकि वे काफी लंबे समय से उसी साँचे में ढल चुके थे। यहाँ किरण ने स्वयं दस दिवसीय विपश्यना कार्यक्रम में भाग लेने का निर्णय किया ताकि वे भी प्रेरित हो सकें। इस ध्यान कार्यक्रम के पश्चात कई उच्च अधिकारियों ने तंबाकू व शराब जैसे व्यसनों को त्यागने की सार्वजनिक घोषणा की। दूसरे कनिष्ठों व प्रशिक्षुओं के सामने किसी वरिष्ठ द्वारा यह स्वीकारना बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

जब नेता नेतृत्व करता है तो अनुयायी उसके पीछे नहीं, साथ चलने लगते हैं। प्रशिक्षार्थी भी अपने अध्यापकों जैसा अनुभव पाना चाहते थे। जिस दिन 1100 पुलिस अधिकारी व प्रशिक्षार्थी, एक साथ विपश्यना में बैठे, वह एक इतिहास बन गया। सुनील गर्ग ने उनका नेतृत्व किया। उस दिन पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज एक गुरुकुल में परिवर्तित हो गया। यह अपने आप में दुर्लभ प्रकार की संस्था बन गया था।

तत्काल परिणामों पर हुए सर्वे से रोचक तथ्य सामने आए। एक प्रश्न पूछा गया था, कोर्स करने के पहले व बाद में, आप दस में से, स्वयं को कितने अंक देना चाहेंगे?' यहां कुछ उत्तर उपस्थित हैं- पहले 10 में से 3, बाद में 7; पहले 10 में से 2, बाद में 8; पहले 10 में से 5; बाद में 9; पहले जीरो और बाद में 71 उत्तरकर्ताओं की पहचान गुप्त रखी गई। एक भी प्रशिक्षार्थी ऐसा नहीं था, जिसने कोर्स के बाद आत्ममूल्यांकन में; आत्मसुधार के तथ्य को नकारा हो।

इन सबके अतिरिक्त, प्रतिदिन प्रबंधन अभ्यास में प्रतिपुष्टि 'फीडबैक' प्रणाली को भी शामिल किया गया। ये काफी हद तक तिहाड़ की चलती-फिरती शिकायत पेटी की तरह थी। यहाँ इसे 'फीडबैक बॉक्स' का नाम दिया गया। इसे प्रत्येक कक्षा में ताला लगाकर रखा गया, छात्र प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर अपने फीडबैक तथा विभाग से संवाद स्थापित करने के लिए इसका प्रयोग करते। किरण के पास इनकी चाभियां रहती। ये बॉक्स प्रतिदिन खोले जाते। वे उन्हें स्वयं पढ़ती तथा लंच मीटिंग के दौरान स्टाफ के सामने रखतीं। समस्याओं के समाधान के प्रभावी हल खोजे जाने लगे। 1999 में, उन्हें कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर फीडबैक पत्र मिले, उसी दोपहर फैसले लेने के बाद शाम को संबंधित अधिकारी, छात्रों तक उन्हें पहुँचा देते।

इस गतिविधि से एक तरह का भय भी फैला। छात्रों ने तो इसे सराहा किंतु कुछ स्टाफ सदस्यों को यह नहीं भाया, उन्हें लगा कि इससे रैंक का ढाँचा टूट रहा था। इससे संप्रेषण में कमी आने लगी; इस समस्या को दूर करने के लिए भी असंभव प्रयास किया गया।

कुल मिलाकर, इस फीडबैक प्रणाली ने छात्रों को तनावरहित कर दिया। वे वरिष्ठ अधिकारियों से संप्रेषण कर सकते थे; अपने विचार, सुझाव व निवेदन प्रस्तुत कर सकते थे। इस प्रकार दोनों पक्षों में बेहतरीन संवाद स्थापित हुआ। विचारों का प्रवाह मुक्त हो गया।

समस्याओं व चुनौतियों का भी सामना किया गया। दूसरे शब्दों में कहें तो हर कोई मन की बात कह सकता था।

कानूनी व नैतिक आधार पर कई मुद्दे सुलझाए गए व इनके समाधान साक्षी रहे। परंतु कई बार प्रशिक्षार्थी असुरक्षा से घिर जाते थे। ये असुरक्षा फील्ड में कई कारणों में उपजती थी; उनके वरिष्ठों का व्यवहार, प्रभावी तथा संगठित समूहों व व्यक्तियों का दबाव, राजनेता, कोर्ट व और भी कई। उन्हें कई बार फील्ड ड्यूटी के दौरान बेवजह सजा भी भुगतनी पड़ती थी, जिसका किरण व उनकी टीम के पास कोई हल नहीं था। इनके ऊपर की गई करवाइयां, क्षेत्र विशेष के प्रबंधन पर निर्भर करती थीं जो कि प्रशिक्षण संस्था के नियंत्रण के बाहर थी। कार्मिक नीतियों व उनके निष्कर्षों के मुद्दों का भी कोई हल नहीं था। इन सभी का निरंतर एक ही उत्तर था, "जितना बेहतर कर सको, करो; याद रखो कि तुम दूसरों को नियंत्रित नहीं कर सकते; जो सही लगे, वही करो; किसी से नियुक्ति मत माँगो, तुम्हें वह स्वयं मिलेगी; बस आगे बढ़ने का प्रशिक्षण पाते रहो; जिस तरह झूठ बोलने पर दण्ड मिलता है, उसी तरह सच बोलने की भी कीमत चुकानी पड़ती है; स्वयं चुन लो कि तुम क्या चुकाना चाहते हो", किरण उन्हें सलाह देतीं, "असुरक्षा व नियुक्ति मिले, पूरी सएकाग्रता से काम पूरो। जो भी हो, तुम दिल्ली में तो हो ही।''

कुछ पुलिस थानों में नियुक्तियां ले चुके अधिकारियों के अनुभवों ने हकीकत पर से पर्दा उठाया। एक महिला अधिकारी याद करती हैं कि किस तरह अपराध को मामूली बनाया जाता है: मैं एक थाने में ड्यूटी अधिकारी थी। एक व्यक्ति ने कहा कि बस में जेबकतरों ने उसे चाकू की नोक पर लूटा, वह अपने स्टेशन हाऊस अधिकारी के पास जाकर बोलीं, ''सर, मुझे डकैती का मामला दर्ज करना है", एस. एच. ओ. ने कहा, "रहने दो'' फिर उन्होंने सलाह भी दे दी कि उस मामले को कुछ सौ रुपए का नुकसान व शरीर की कुछ खरोंचों के साथ झड़प दिखा दो। महिला पुलिस अधिकारी ने मना किया तो उन्हें पैट्रोलिंग व पिकेट, ड्यूटी पर लगा दिया गया। मामले को हल्का बनाकर, अपराधी छोड़ दिए गए। उसके बाद महीनों तक उन्हें ड्यूटी अधिकारी नहीं बनाया गया। वे कहती हैं कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं हुई लेकिन अक्सर ऐसा ही होता है।

एक और मामले में युवा पुलिस अधिकारी बताते हैं कि उनसे, उनके वरिष्ठ अधिकारी; किसी बिल्डर के खिलाफ मनगंढ़त केस बनवाना चाहते थे, ताकि उससे पैसा वसूला जा सके। लेकिन उसने मना किया तो उसे सजा देने की धमकी दी गई। किस्मत से धमकी धमकी ही रही। एक और मामले में पिता अपने पड़ोसी के बेटे के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने आया कि वह उसकी पुत्री को जबरन कहीं ले गया है। यह 'अपहरण' की बजाए गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखी गई। ऐसे कई मामलों से पता चला कि किस तरह नए अधिकारियों को, मौजूदा तंत्र का हिस्सा बनाया जाता है। प्रशिक्षण के दौरान, नैतिक भावनाएं उन्हें निष्पक्ष न्याय करना सिखाती हैं लेकिन वे इसे कब तक जारी रख पाते हैं।

इसी दौरान उन पुलिस ट्रेनिंग कॉलेजों के छात्रों में असंतोष फैलने लगा, जो किरण के

निरीक्षण में नहीं थे। बदकिस्मती से दिल्ली पुलिस प्रशिक्षण में असबद्ध थी। वे लोग अपने अधिकारियों को अर्जियाँ भेजने लगे कि उन्हें भी वैसी ही गुणवत्तापूर्ण वाला ट्रेनिंग दिया जाए जो किरण के ट्रेनिंग कॉलेज में दिया जाता है। उनका कहना जायज भी तो था। पुलिस आयुक्त अजय राज शर्मा के निर्देश पर स्पेशल कमिश्नर आर. के. शर्मा ने खोजबीन की व उनकी शिकायत को जायज पाया। इसके बाद किरण को दो और प्रशिक्षण केंद्र सौंप दिए गए। ज्वाइंट कमिश्नर ऑफ पुलिस (प्रशिक्षण) ने उन सभी शिकायतों व कमियों को पूरा किया। लंबित फैसले निपटाए, वे इतने समय से लंबित थे क्योंकि न तो कोई परवाह करता था न ही कोई तुलना करता था और न ही किसी से, किसी को कोई शिकायत थी।

अतिरिक्त भार संभालने के कुछ ही घंटों में किरण ने कई ठोस कदम उठाए। उन्होंने भर्ती केंद्र से 51 लोगों को बाहर निकाला। वहाँ की अवस्था अमानवीय थी। व उन्हें पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज में प्रशिक्षण तथा साधन उपलब्ध करवाए गए। 151 महिला कांस्टेबल, हैड कांस्टेबल बनने के मुहाने पर थीं, उन्होंने शिकायत की कि तीन महीने के प्रशिक्षण के बावजूद उन्हें पुलिस के वास्तविक कार्य की कोई जानकारी नहीं है तो पुलिस ने उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण देने का फैसला किया। उन्हें छोटे-छोटे दलों में बाँट कर थानों में भेजा गया, वे एक मार्गदर्शक के नेतृत्व में व्यावहारिक कार्रवाई सीखने लगीं। कंप्यूटर केंद्रों से कंप्यूटर का प्रशिक्षण भी दिलवाया गया।

उन्होंने एक खास काम यह किया कि महिलाओं को कैद से बाहर निकाला। उन महिलाओं को केवल सप्ताहांत में घर जाने की इजाजत थी। जो महिलाएँ बच्चों को किसी सहारे के बिना छोड़ती थीं, उन्हें रोज का प्रशिक्षण समाप्त कर, घर जाने की इजाजत दी गई। किरण ने उन्हें बिन माँगे उनका प्राप्य दिया तो वे भी जी.जान से जुट गईं। किरण के लिए, वे सब किसी न किसी रूप में भविष्य की पूँजी थीं।

दिल्ली पुलिस एक नए पथ पर थी- यह पथ कोई पगडंडी नहीं बल्कि राजमार्ग था। इसका श्रेय पुलिस कमिश्नर अजय राज शर्मा को जाता है, जिन्होंने प्रशिक्षण को प्राथमिकता देने का साहस दिखाया। पहली बार निम्न आदेश के अनुसार प्रशिक्षण के विविध रूप एक हुए:

आदेश

आधुनिक पुलिस उच्च व्यावसायिक कौशल चाहती है और उचित प्रशिक्षण के बल पर ही पुलिस बल वर्तमान तथा भावी चुनौतियों का सामना कर पाएगा। निरीक्षण से पता चला है कि कांस्टेबल रंगरूट के प्रशिक्षण में कोई समरूपता नहीं है; जो कि पर्याप्त सुविधाओं व निरीक्षण के अभाव में, आंशिक रूप से पी. जी. टी., डी. ए. पी. (दिल्ली आर्म्ड पुलिस), चौथी बटालियन तथा आर. टी. सी. रिक्रूट ट्रेनिंग सेंटर द्वारा की जाती है। इस विभिन्नता में सुधार लाना होगा।

इसके बाद सम्पूर्ण प्रशिक्षण डी. ए. पी. चौथी बटालियन तथा वजीराबाद के प्रशिक्षण केंद्र में होगा। डी. ए. पी. छठी बटालियन, झरौंडा कलाँ, प्रिंसीपल पी टी सी के निरीक्षण व नियंत्रण में

रहेंगी तथा कुल निरीक्षण ज्वाइंट सी. पी. (प्रशिक्षण) का होगा। उनके अधीन एक अतिरिक्त डी सी पी स्तर के अधिकारी की नियुक्ति वाइस प्रिंसीपल/आरटी सी के रूप में होगी जो वजीराबाद तथा महिला कांस्टेबल के प्रशिक्षण पर नजर रखेगा। वह वजीराबाद तथा छठी बटालियन डीएपी का निरीक्षण करेगा किंतु वजीराबाद में बैठेगा, उसका सहयोगी बटालियन प्रशिक्षण केंद्र में रहेगा। पुलिस ट्रेनिंग कॉलेज से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने तीनों संस्थानों, झरौडा कलाँ वजीराबाद तथा महिला रिक्रूट बैरक में प्रशिक्षण की गुणवत्ता, वितरण व निरीक्षण पर पूरा ध्यान देगा।

(अजय राज शर्मा)
कमिश्नर ऑफ पुलिस, दिल्ली

संख्या 19211-95/प्रशासन/पी एच क्यू; तिथि नई दिल्ली, 17/7/2000

सूचना हेतु प्रतिलिपिः

1. इन्फॉर्मेशन ऑफ एलजी, दिल्ली के लेफ्टिनेंट गवर्नर सचिव के लिए
2. निजी सचिव (गृह), जीएनसीटी (गवर्नमेंट ऑफ द नेशनल कैपिटल टेरिटरी) दिल्ली
3. संयुक्त सचिव/ यू. टी., गृह मंत्रालय, नई दिल्ली

सूचना व कार्यवाही के लिए प्रतिलिपिः

1. सभी विशेष सी० एस० पी०, दिल्ली
2. सभी संयुक्त सी० एस० पी०, दिल्ली
3. सभी अतिरिक्त सी० एस० पी०, दिल्ली
4. सभी जिला व यूनिट डी० सी० पी०, दिल्ली/ नई दिल्ली
5. एस० ओ० से सी० पी०, दिल्ली
6. सभी ए० सी० पी० इंस्पैक्टर (पीएचक्यू)
7. इंस्पैक्टर/एस्टेट/पी.एच.क्यू., (गजट नोटिफिकेशन के लिए)

इन सभी विकासों ने किरण व उनके दल के कंधों पर नई जिम्मेदारी डाल दी और एक नई चुनौती सामने आ गई।

उनके लिए प्रशिक्षण का अर्थ था, 'पुलिस व्यवस्था का शरीर, मन व आत्मा।' यह मात्र व्यवसाय नहीं किंतु मानवीय व्यक्तित्व का आह्वान था।

31

अपने से भी परे : विविध कार्य

किरण की नियुक्ति जहाँ भी हुईं, अपराध निवारण ही उनकी पहली प्राथमिकता रही। उन्होंने हमेशा नकारात्मक व हानिप्रद स्थितियों को विकसित होने से रोकने का रिकॉर्ड कायम किया। हमेशा घटनाओं का पूर्वानुमान करके, उन्हें सकारात्मक लक्ष्यों की ओर प्रेरित किया। उनकी ऊर्जाएं घटना के बाद प्रतिक्रिया की बजाए 'घटना से पूर्व बचाव' पर केंद्रित रहीं। 1980 में वे दिल्ली (पश्चिम) की डिप्टी कमिश्नर नियुक्त हुईं; वहाँ उन्होंने उन लोगों को शराब के अड्डे छोड़ने पर विवश कर दिया व सही रास्ता अपनाने की प्रेरणा दी। वे लोग अवैध शराब बनाकर बेचते तथा आपराधिक कार्यों से आजीविका चलाते थे। वे अपने मिशन में सफल रहीं (विस्तार के लिए अध्याय 8 देखें)

छः साल बाद, अगली जिला पुलिस नियुक्ति में, उन्होंने मादक द्रव्यों व अपराध के मेल को पहचाना तो छः पुलिस थानों में मादक द्रव्य चिकित्सा केंद्र खोते गए; जैसा कभी किसी ने सुना तक नहीं था। जहाँ पुलिस अधिकारी किसी एक मादक द्रव्य व्यसनी को नहीं संभालना चाहते, किरण ने वहीं अपने उत्तरदायित्व क्षेत्र में ऐसे सौ लोगों को थानों में रिहायशी सुविधाएँ व चिकित्सा उपलब्ध करवाई। इस कार्रवाई को केवल शब्दों के माध्यम से व्यक्त करना थोड़ा कठिन है।

उनके इस अग्रणी कदम ने न केवल समाज बल्कि सरकार को भी ध्यान देने पर मजबूर कर दिया। उन्होंने देश के कई हिस्सों में स्लाइड प्रदर्शन किए, मादक द्रव्यों पर निर्भरता के परिणाम बनाए व स्कूलों, विश्वविद्यालयों, माता-पिता पुलिस व समुदाय को नए पाठ पढ़ाए। 1988 में उनका तबादला हुआ तो जिले के लोगों ने आग्रह किया कि वे इस भले काम को संस्था का रूप दे दें। तभी नवज्योति फाउंडेशन की स्थापना हुई। किरण के गुरु व तत्कालीन पुलिस कमिश्नर वेद मारवाह ने संस्था को अपना आशीर्वाद दिया। तब से इस संस्था ने मादक द्रव्य व शराब पर निर्भर करीब 20,000 रोगियों को अवासीय चिकित्सा दी है तथा इसके अतिरिक्त हजारों व्यक्ति इसकी सामुदायिक परियोजनाओं का लाभ उठा रहे हैं।

नवज्योति फाउंडेशन मादक पदार्थों के सेवन में कमी, प्रशिक्षण व शोध केंद्र की संस्था बन गया है। विधि स्रोतों के सहायता प्राप्त होती है। जापानी दूतावास ने भवन की लागत उठाई, गुजरात आधारित के. के. शाह चैरिटेबल ट्रस्ट ने जमीन का दाम दिया, यमुना पुश्ता ट्रस्ट (नीदरलैंड से प्राप्त वित्त के आधार पर) ने एक अतिरिक्त हॉल में योगदान दिया। यह केंद्र भारत सरकार से प्राप्त सहायता के बल पर होम्योपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा, योग, ध्यान व उपचारक विधियों द्वारा रोगियों व उनके परिवारजन को सलाह व चिकित्सा प्रदान करता है। इसके अलावा, इसे जर्मनी की एक एन जी ओ तथा अमरीकी सरकार से भी मदद मिलती है तथा शोध

व प्रशिक्षण भी सुचारू रूप से हो सके। नवज्योति के प्रत्येक कार्यक्रम में, रोगमुक्त परिवारों की बढ़ती संख्या से सामुदायिक सशक्तिकरण को बल मिलता है। यह अपनी तरह का पहला ऐसा समूह है। इसे अनेक राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है, जिनमें अमेरिका का 'सर्ज सॉटीरॉफ' पुरस्कार भी शामिल है।

धीरे-धीरे किरण की नवज्योति ने अपराध निवारण के और भी कई कार्यक्रम प्रस्तुत किए। एक अध्यापिका वाले 200 एकल स्कूल खोले गए ताकि झोपड़पट्टी में पलने वाले बच्चों को शिक्षा प्रदान की जा सके। महिला कैदियों, झोपड़पट्टी की औरतों, गरीब ग्रामीणों, किशारों तथा विकलांगों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। स्वास्थ्य व सलाह-केंद्र भी खोले गए। 350 से भी अधिक व्यवसायियों की यह संस्था प्रतिदिन, 10,000 से भी अधिक ऐसे लोगों तक पहुँचती है, जो समाज के हाशिए पर हैं। 50 से भी अधिक परियोजनाएँ चल रही है, जिनमें से एक दूरदर्शन धारावाहिक 'गलती किसकी' भी है। उनकी परियोजनाओं को भारत सरकार-अंतर्राष्ट्रीय समुदाय, दोनों से ही भरपूर सहायता मिलती है। वे फाउंडेशन की जनरल सैक्रेट्री के रूप में काम करती हैं।

सामुदायिक कल्याण की तीव्र इच्छा यहीं समाप्त नहीं हुई। 1994 में रैमन मैग्सेसे पुरस्कार प्राप्त होने पर उन्होंने इंडिया विज़न फाउंडेशन की स्थापना की। जेल सुधार तथा कैदियों के बच्चों को शिक्षा देना इसकी प्राथमिकता थी। आज यह ऐसे 300 से अधिक बच्चों को स्कूली शिक्षा प्रदान कर रही है। ये नवज्योति के गली स्कूल, बालवाड़ी, कैद में व्यावसायिक प्रशिक्षण इकाइयों, पारिवारिक सलाह केंद्रों व विकलांगों के शिविर आयोजित करने में भी सहयोग देती है। तिहाड़ जेल में, फाउंडेशन द्वारा प्राप्त पुरस्कार राशि के एक अंश से ब्रेड-निर्माण इकाई व पोलीग्रीन हाऊस की स्थापना हुई। तभी से उनकी यह संस्था ग्रामीण इलाकों में, सामुदायिक कल्याण की अनेक योजनाओं से जुड़ी हुई है। किरण के माता-पिता, बहनों व स्वयं द्वारा दान दी गई जमीन पर, संस्था ने नार्वे की मदद से; खूबसूरत ग्रामीण विकास सामुदायिक विकास केंद्र की स्थापना की गई है। (अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट www.indiavisionfoundation.org, www.drughelpline.org व उनकी अपनी वेबसाइट www.kiranbedi.org देखें।)

किरण अपने हर कार्य को सेवाभाव से पूरा करती हैं। वे दोनों संगठनों के प्रति पूरी तरह से समर्पित हैं। मोबाइल, ई-मेल व इंटरनेट जैसे आधुनिक उपकरणों की सहायता से, वे दोनों संस्थाओं को भली-भांति संभालती हैं। सप्ताहांत तथा अवकाशों के अतिरिक्त रोष समय संस्थाओं के नाम है। स्तंभों व पुस्तकों से मिली रॉयल्टी, संस्थाओं को जाती है। यहाँ वे स्वयं से भी परे चली जाती है।

किरण ने इसी तरह अपने जीवन को आकार दिया है। यदि वे ऐसा न करतीं तो उनका सामुदायिक कल्याण का यह कार्य इस हद तक न फैला होता। अपने मिशन के प्रति ऐसी प्रतिबद्धता, कर्तव्य से भी परे जाने की उत्कंठा किसी भी पुलिस अधिकारी के लिए दुर्लभ है। लेकिन किरण उनमें से हैं जो सदा पूरे प्यार व स्वेच्छा से, स्वयं से भी परे जाने का साहस रखती

हैं।

32

उनकी धारणाएं

किरण के ही शब्दों में, उनके विश्वास हैं :

बाल्यकाल

- यदि जान बूझकर अथवा आग्रहपूर्वक न भुलाए जाएं तो बाल्यकाल में सीखे गए (नैतिक) मूल्य स्थायी होते हैं।
- (बच्चों के मन में) मूल्यों की अवधारणा बैठाने में माता-पिता और शिक्षा की मुख्य भूमिका होती है।
- बच्चे के बेहतर बहुमुखी विकास में और उसके माध्यम से जीवन में उत्कर्ष हासिल करने में पढ़ाई और खेल, दोनों की ही शक्तिवर्धक भूमिका होती है।

जीवन

- जन्म, नियतिवश हो अथवा संयोगवश, उसे निरंतर ऊँचे उठने का आधार माना जाना चाहिए, आराम या पश्चात्ताप का नहीं।
- सभी मनुष्यों को रोज़ ही तन और मन के सुदृढ़ीकरण के रूप में मानसिक पोषण की आवश्यकता होती है। यह हासिल होता है बाह्य तथा आंतरिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से।
- किसी भी व्यक्ति का अगर अंतरात्मा की नियंत्रण व्यवस्था में विश्वास हो, तो वह आसानी से नहीं भटकता, और यदि भटक भी जाए तो नैतिक माने गए मार्ग पर उसके फिर से लौट आने की संभावना अधिक होती है।
- ठीक-ठीक संतुष्ट व्यक्ति झूठा दिखावा नहीं कर सकते। इसलिए भले ही वे जीवन की ऊँचाइयों को शीघ्र न छू सकें, लेकिन अंत में वे ही अधिक प्रसन्न तथा स्वस्थ होते हैं और सम्मान भी पाते हैं।
- किसी भी व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता और उसके आचरण के स्वरूप-निर्धारण में इस चेतना का बहुत बड़ा हाथ होता है कि विचार, स्वभाव और चरित्र के स्तर पर उसे सबसे पहले तो स्वयं ही साथ रहना है।
- दानी और बांटकर खाने वाला जीवन केवल अपने लिए बटोरने और रखनेवाले जीवन से कहीं अधिक समृद्ध होता है।
- व्यक्ति को धन और पदवी से मिली पहचान तब तक खोखली है जब तक उसमें दूसरों के प्रति सच्चा सरोकार न हो।

- जो भी स्त्री या पुरुष अपने जीवन की बागडोर संभाल लेता है, वह ताकतवर है।
- व्यक्ति विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चुनाव करके जो काम करता है, उसके परिणाम जीवन में मील के पत्थर होते हैं।
- प्रकृति के नियम तुरंत पुरस्कार अथवा तुरंत दंड देते हैं। इन नियमों के प्रति जागरूकता से ही इनका ज्ञान होता है।
- भूगर्भशास्त्र, शरीरशास्त्र और मौसमविज्ञान आदि शास्त्रों का ज्ञान हासिल करने से कहीं अधिक ज़रूरी है, जीवन जीने का शस्त्र सीखना।

समय प्रबंधन

- बाल्यकाल में ही समय का प्रबंधन और समय की कीमत समझ लेना जीवन की सबसे अमूल्य संपत्ति हैं।
- जो लोग अपने जीवन की बागडोर नहीं संभालते उन पर समय की मार पड़ती है।

महिलाएं

- जब तक महिलाएं देने की नहीं पाने की ही स्थिति में बनी रहेंगी, उन पर अन्याय होता रहेगा।
- सामर्थ्य हासिल करके महिलाओं का कठिन या ग़ैर-परंपरागत पदों पर पहुंचना उनका त्याग या बलिदान नहीं, (सोच-समझे विकल्प का) चुनाव होता है।
- भारतीय समाज में स्त्री प्रतिबंधों के साथ ही जीवन आरंभ करती है। ये प्रतिबंध जब भी और जैसे भी टूटते हैं, वे उसके अपने दृढ़ संकल्प और इच्छा-शक्ति से ही टूटते हैं। उसके पश्चात ही पुरुष उसके समर्थन और प्रोत्साहन के लिए आगे आते हैं। यह बुनियादी हकीकत है। हो सकता है, मेरे ख़िलाफ़ भी भेदभाव हुआ हो किंतु उसे रोकने के लिए पुरुषों ने मेरा साथ दिया। महिलाओं को अपने इच्छा-शक्ति और दृढ़ संकल्प का विकास करना होगा और साथ ही अपनी स्थिति की लगातार समीक्षा करते चलना होगा। तभी पुरुष उनका साथ देंगे। अधिक संख्या में महिलाओं के (कार्यक्षेत्र में) आने से स्थिति में परिवर्तन होगा।
- सामर्थ्यसंपन्न महिला ही वह महिला है जो अपने निर्णय स्वयं करके उनके परिणामों को भी झेल सकती है। इससे परिपक्वता तथा उत्तरदायित्व की भावना का पता चलता है। परिपक्व महिला अपने निर्णयों की समय-समय पर समीक्षा भी करती है। सामर्थ्यवान महिला देने की स्थिति में होगी, पाने की नहीं। उसका अनुभव उसके बच्चों का मार्ग प्रशस्त करेगा।
- सामर्थ्यसंपन्नता का अर्थ मात्र आर्थिक सामर्थ्य ही नहीं है। इसका अर्थ है मस्तिष्क की परिपक्वता, आत्मगौरव और साथ ही स्वयं को हीन न समझने की क्षमता। मां स्वयं अपने गौरव की दात्री होती है। सामर्थ्यवान महिला अपने प्रति किसी प्रकार का असम्मान नहीं होने देगी। अपने आत्मगौरव को बनाए रखने और उसकी रक्षा करने की क्षमता उसमें होगी।

विवाद

- निर्णय लेना, कुछ परिस्थितियों में, सदा विवादास्पद होता है। इससे बचने का एक ही उपाय है कि कोई निर्णय न किया जाए और समस्याओं को वैसे ही छोड़ दिया जाए। जो उच्च अधिकारी समस्याओं को समाधान नहीं करते, वे स्वयं समस्या का ही भाग बन जाते हैं।
- जब हम अलग तरीके से काम करते हैं। तो समीकरण में बदलाव आता है। यथास्थिति टूट जाती है। यथास्थिति सुरक्षा देती है। जब यथास्थिति और परिवर्तन में टकराव होता है, तो इससे असुरक्षा पैदा होती है। इसीलिए परिवर्तन सहन नहीं किया जाता। यहां प्रश्न शक्ति के समीकरण का है।

नेतृत्व

- नेतृत्व केवल एक पदवी नहीं है, यह एक विशेषता है जो ज़िम्मेदारी मांगती है। यह ऐसी कार्यशाला है, जहां कार्य किया और करवाया जाता है। कठोर समय बीत जाता है किंतु कठोर लोग बने रहते हैं।

नौकरी/व्यवसाय

- सरकारी सेवा, विश्वास की सेवा है। कोई भी व्यक्ति अगर वह नहीं करता जो अपेक्षित लक्ष्य के लिए किया जाना चाहिए तो वह विश्वासघात करता है।
- राजनीतिक प्रशासन राष्ट्रीय सेवा है जो व्यक्ति के निजत्व का अधिकाधिक बलिदान मांगती है। इस क्षेत्र में वही उतरे जो संपूर्ण समर्पण के लिए तैयार हो।
- जनता भागीदारी वाली सरकार चाहती है, जो पारदर्शी और जवाबदेह हो। वह अदृश्य, गुप्त तथा संवेदनशीलता से रहित नौकरशाही नहीं चाहती।
- प्रशासक हमेशा सामने रहे तो जवाबदेही बढ़ती है और इससे सेवा में संवेदनशीलता और न्याय-निष्ठा भी बढ़ती है।
- शासक और शासित के बीच के अंतर को कम किए बिना भ्रष्टाचार समाप्त नहीं हो सकता।

पुलिस

- पुलिस-कार्य का अर्थ है कार्य करने की सत्ता, संशोधन करने की सत्ता और सुधारने की सत्ता। पुलिस मानवाधिकारों की सबसे बड़ी रक्षक भी हो सकती है और सबसे बड़ी भक्षक भी।
- ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ पुलिस अधिकारी किसी तरह गुज़ारा करते हुए अपने परिवार

के लिए खींचतान कर ही समय निकाल पाता है।

- मानवीय और व्यावसायिक दृष्टि से संपन्न पुलिस सेवा जनतंत्र के सबसे सबल रक्षकों में से हैं।

जेल

- जेल भेजा जाना अपने-आपमें एक दंड है। जेल लगातार सज़ा के लिए नहीं है। अपराध रोकने और सुधार लाने के लिए जेल अंतिम स्थान है।

राजनेताओं और अपराधियों का गठबंधन

- इस गठबंधन को कोई संयोजक कक्ष बनकर नहीं तोड़ा जा सकता। कानून लागू करने वाली एजेंसियों में वृत्तिसुलभ की पुन:प्रतिष्ठा और उनके कार्यनिष्पादन में अधिक आज़ादी, जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित करने से ही इस समस्या की जड़ नष्ट होगी। पुलिस में उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति और स्थानांतरण में राजनेताओं की व्यापक दख़ल समाप्त करनी होगी। तभी यह मिलीभगत टूटेगी।

33

संयुक्त राष्ट्र में पदार्पण

किरण को 2002 में पुलिस के विशेष कमिश्नर के रूप में नियुक्त किया गया। यह पदोन्नति उन्हें उनके परम उत्तरदायित्व, पुलिस कमिश्नर के रूप में प्रिय दिल्ली पुलिस के नेतृत्व के समीप ले आई। ये वही पद था, जिस पर उन्हें देखने के लिए प्रशंसक व शुभचिंतक जाने कब से प्रतीक्षारत थे।

इटैलिजेंस के विशेष कमिश्नर के रूप में, राजनीतिक इंटेलिजेंस का विश्लेषण तथा मिलान, उनका प्रमुख कार्य था। राजनीतिक चलनों पर, राजनीतिक मालिकों तथा वरिष्ठों को विशेष चेतावनी व विवरण का कार्य भी उन्हीं का था। इस संवेदनशील पद पर रहने का अर्थ था, राजनीतिक दाँव पेंचों व उठा-पटक का पूरा ध्यान रखना, जो कि राजनीतिक पक्षों को जानने के लिए अनिवार्य था। पद की प्रकृति के कारक, उनके पद का कई रूपों में प्रयोग/दुरुपयोग हो सकता था। अत: किरण की तटस्थता व यथार्थथरकता ने उनके उच्चधिकारियों व राजनीतिक अखाड़े में सुरक्षा उत्पन्न कर दी। उनके अपने बॉस, पुलिस कमिश्नर ने, उनकी रिपोर्टों में काट-छाँट शुरू कर दी, ताकि राजनीतिक बॉस को जो भी रिपोर्ट मिले, वह राजनीतिक रूप से उचित हो।

ज्यों ही, किरण ने पदभार संभाला, अनेक 'एनकाउंटरों' के लिए जाना जाने वाला 'स्पेशल ऑपरेशन सैल' उनके उत्तरदायित्वों की सूची से हटा दिया गया। जिसके लिए कोई कारण भी नहीं दिए गए।

किरण के ये बॉस वही व्यक्ति थे, जिन्होंने उनके स्थान पर आई जी पी (तिहाड़ जेल) पद संभाला था। ये बात भी छिपी नहीं रही थी कि उन्होंने तिहाड़ रैंक तथा फाइल के बीच उन्होंने उन सभी एन. जी. ओ. या स्टाफ के सदस्यों को दंडित किया, जिन्होंने भूल से भी जेल सुधार कार्यों में किरण को सहयोग दिया था। वे किरण से, उनकी लोकप्रियता के कारण घृणा करते थे।

किस्मत का क्या करें, अब वही पुलिस कमिश्नर पद पर थे और किरण विशेष कमिश्नर के रूप में उनकी जूनियर थीं। वे दिल्ली पुलिस प्रमुख बने तो किरण 'कर्टसी कॉल' के लिए पहुँची, जबकि वे अच्छी तरह जानती थीं, कि वे उनके मित्र नहीं थे। उन्होंने स्पष्टत: कहा, ''आप पुलिस कमिश्नर हैं तथा अपनी टीम चुनने का अधिकार रखते हैं। बस आप तय करते ही, मुझे जल्द से जल्द बता दें कि मैं आपकी टीम का हिस्सा रहूँगी या नहीं, आपका बड़ा एहसान होगा, क्योंकि अगर टीम में नहीं हूँ तो मैं थोड़ा-पीछे हटना चाहूँगी'', उन्होंने झट से उत्तर दिया। मानो किरण की बात सुनने की बजाए, उसी के मुँह पर सवाल दे मारा, ''एक बात बताओ, यह हमेशा तुम्हारे साथ ही क्यों होता है, गोआ, ट्रैफिक, वकील, तिहाड़ जेल, मिज़ोरम, चंडीगढ़ वगैरह?" तब किरण ने जवाब दिया, "सर, ये बात थोड़ा लंबा वक्त लेगी। चूँकि ये 'कर्टिस

कॉल' है इसलिए बात को यहीं खत्म करना ठीक रहेगा।''

मानो यही काफ़ी नहीं था, उन्होंने एक और गोली दागी, "आप इसके बाद लिखेंगी नहीं।" किरण 'द ट्रिब्यून' में 'रिफ्लैक्शन्स' नाम से पाक्षिक स्तंभ लिख रही थीं) किरण ने पूछा, "क्यों सर?'' पुलिस कमिश्नर ने जवाब दिया, "क्योंकि मैंने ऐसा करने को कहा है'' किरण ने आँखों में आँखें डालते हुए, दृढ़ शब्दों में कहा, "मैं लिखना नहीं छोड़ूँगी। यह मेरा रचनात्मक अधिकार है'' फिर वे वहाँ से आ गईं।

वे उस पद पर स्वयं को काफी असहज पा रही थीं। बॉस दिन-ब-दिन दमघोंटू माहौल बना रहे थे। उन्हें लगने लगा कि काश, वे उस संघर्ष से कुछ दिन दूर रह पातीं, यदि उन्हें ऊपर तक पहुँचना था, तो यह संघर्ष हानिप्रद हो सकता था। कुछ ही दिन में बॉस को उनको 'कार्य विवरण' लिखने का अधिकार मिलने वाला था। वे जानती थीं कि वे क्या करेंगे। ईश्वर ने उनकी इच्छा पूरी कर ही दी; वास्तव में यह किसी सपने के साकार होने जैसा ही था, लेकिन यह नई नियुक्ति उन्हें घर से लंबे समय के लिए दूर ले जाने वाली थी।

जब किरण इस पद पर कार्यरत थीं तो उन्हें संयुक्त राष्ट्र में वरिष्ठ पद के आवेदन का प्रस्ताव आया। इस विषय में उनकी पहली प्रतिक्रिया थी, ''मैं इतनी दूर इतने लंबे समय के लिए कैसे जा सकती हूं?'' यह स्थिति उन्हें 'देश निकाले' जैसी लग रही थी क्योंकि स्वभाव से ही घरेलू हैं। चाहे वे संसार के किसी भी कोने में क्यों न हों, अपना काम समाप्त करते ही वे घर लौटना पसंद करती हैं। इस नए प्रस्ताव का सीधा-सा अर्थ था-अपने घर से लंबे समय के लिए दूरी, हमेशा की तरह उनकी प्रतिक्रिया नकारात्मक थी। हितैषियों व शुभिंचतकों द्वारा प्रोत्साहित किए जाने पर उन्हें लगा कि यह प्रस्ताव अंतरराष्ट्रीय अनुभवों के दायरे को बड़ा करने का सुनहरा अवसर होगा, जिसे उन्हें गंवाना नहीं चाहिए। उन्होंने साक्षात्कार दिया और बेसब्री से नतीजे की बाट देखने लगीं। मन में केवल एक ही शंका थी कि यदि वे नाकामयाब रही तो मीडिया बड़ी-बड़ी सुर्खियों में छापेगा 'किरण बेदी संयुक्त राष्ट्र में असफल'। उनका भय निराधार नहीं था क्योंकि उनका सामना ऐसे प्रतियोगियों से था जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुभवी थे।

''मेरी आयु अब इतनी कम नहीं रही कि मेरे कारण देश की प्रतिष्ठा पर आंच आए।''

ईश्वर ने तो मानो सब कुछ पहले से ही रच रखा था। साक्षात्कार के बाद संयुक्त राष्ट्र के सेक्रेट्री जनरल ने उन्हें 'सिविलयन पुलिस एडवाइजर' के रूप में चुन लिया। वह पीस कीपिंग ऑपरेशन डिपार्टमेंट के सिविलयन पुलिस डिवीजन की मुखिया थीं, यह अंतर्राष्ट्रीय पीस कीपिंग संस्था का एक वरिष्ठ पद था। इस तरह न केवल भारत, अपितु पूरे विश्व में किरण संयुक्त राष्ट्र की पहली महिला पुलिस एडवाइज़र (सलाहकार) बनीं। संयुक्त राष्ट्र के 'पीस कीपिंग ऑपरेशन डिपार्टमेंट' के सिविलयन पुलिस डिवीज़न में, संसार के विभिन्न भागों से अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। वे युद्ध प्रभावित तथा विवादित क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र की अन्य एजंसियों व डिपार्टमेंट के साथ मिल कर कार्य करते हैं। वे संयुक्त राष्ट्र के अन्य कमेटियों के माध्यम से नियमित अंतराल पर सदस्य राष्ट्रों को अपने कार्यों की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं।

किरण व उनके सहकर्मियों ने अपने वरिष्ठ अंडर सेक्रेट्री जनरल 'जीन मारी गुईहेनो' के नेतृत्व में कार्य किया। अपने काम को बेहतर ढंग से जानने के लिए किरण ने उन क्षेत्रों का दौरा किया जहां संयुक्त राष्ट्र की सिविलयन पुलिस (यू एन सी आई वी पी ओ एल) रही। फरवरी 2003 में अपनी नियुक्ति के पश्चात् उन्होंने टिमोर लेस्टे (पूर्वी टिमोट), सीरिया लेनोन और कोसोवा की यात्रा की। ड्रैमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो, जार्जिया, साइप्रस, लिबरिया व अन्य कई देश उनके पुलिस डिवीज़न के अंतर्गत थे।

अपनी इस नियुक्ति के विषय में पूछे जाने पर वे कहती हैं-''आज से पहले मैं इन विषयों पर टी.वी. में देखती थी या समाचार पत्रों में पढ़ती थी परंतु अब मैं भी इनका ही एक अंग हूं।'' ''आपको यहां कैसा अनुभव हुआ?'' इस बारे में पूछने पर वे तपाक से उत्तर देती हैं-''एक वैश्विक नागरिक''। एक प्रतिभाशाली अंतर्राष्ट्रीय अनुभवी ने ही उन्हें यह सिखाया। संयुक्त राष्ट्र में वे एक भारतीय के रूप में कैसा अनुभव करती हैं? यह पूछने पर वह कहती हैं-

''मैं अपने माता-पिता व परिवार के सहयोग, वरिष्ठों के मार्गदर्शन, सहकर्मियों के प्रोत्साहन व प्रेरणा तथा देशवासियों के प्रेम तथा विश्वास के प्रति आभार व्यक्त करती हूं परंतु मैं सबसे पहले उस सर्वशक्तिमान की कृपा के लिए धन्यवाद देती हूं।''

संयुक्त राष्ट्र में किरण का सिविलयन पुलिस डिवीजन अनेक राष्ट्रों का एक परिवार था जिसमें अमरीका, अर्जेंटीना, चीन, डच, हंगरी, भारत, इटली, जॉर्डन, कीनिया, नेपाल, न्यूजीलैंड, नार्वे, फिलीपिंस, पुर्तगाल, रूस, स्वीडन, तुर्की और जिम्बाब्वे आदि देशों के नागरिक शामिल थे। किरण कहती हैं कि यह पुलिस डिवीज़न वास्तव में एक वैश्विक परिवार की तरह था जहां अभियान, नियुक्ति, प्रशिक्षण तथा विश्व शांति बनाए रखने के प्रयासों को भली-भांति अंजाम दिया जाता था।

अपने भविष्य की योजनाओं के विषय में वे कहती हैं-हम अपने आप को इतना मजबूत व दक्ष बना रहे हैं ताकि पुलिस का एक न्यायपरक आदर्श रूप लोगों के सामने रख सकें। संयुक्त राष्ट्र में रुकने के विषय में पूछने पर उन्होंने जवाब दिया-''अरे! इस बारे में क्या कहूं? किस्मत मुझे न्यूयार्क ले आई। जब तक आवश्यक होगा और हालात साथ देंगे, मैं तब तक यहां रहूंगी क्योंकि मैं अपने पीछे दिल्ली में ढेर-सा काम छोड़ आई हूं, जो मेरे लिए प्रतीक्षारत हैं।"

34

न्यूयार्क में बीता समय

किरण दो वर्ष तक संयुक्त राष्ट्र में रहीं। वहां उन्होंने अनेक स्थानों की यात्राएं कीं, अच्छी पुस्तकें पढ़ीं, नियमित रूप से लेखन किया। अनेक विश्वविद्यालयों व संस्थाओं को संबोधित किया, ऑडियो बुक्स सुनीं, आध्यात्मिक संगीत का आनंद लिया और ध्यान किया।

चाहे वे संसार के किसी भी कोने में रहीं, परंतु अपने पिता व पुत्री से नियमित संपर्क बनाए रखा। उनका मानना है कि वे परिवार के साथ किए गए संप्रेषण के कारण ही जीवित रह पाईं। उन्होंने अपने व परिवार के बीच आई इस दूरी को मिटाने के लिए सूचना तकनीक, खासतौर पर ई-मेल का प्रयोग किया। इसके अलावा वे जी.टी.वी. और एन.डी.टी.वी. के माध्यम से देश से जुड़ी रहीं। वे 'समाचार' वेबसाइट द्वारा देश के मुख्य समाचार-पत्रों का जायज़ा भी लेती रहती थीं। वे कहती हैं-

''विदेश में अनेक सुविधाएं होने पर भी कुछ परेशानियां भी हैं। वहां आपको घरेलू कामकाज के लिए सेवाएं नहीं मिलतीं। खासतौर पर संयुक्त राष्ट्र में घर की साफ-सफाई और भोजन पकाना जैसे काम भी स्वयं ही करने पड़ते हैं।''

...परंतु किरण अपने समय का पूरा सदुपयोग करने और आराम से रहने के लिए नौकरी की सुविधा लेना चाहती थीं। संयुक्त राष्ट्र ने उन्हें यह सुविधा प्रदान की। इसी सुविधा के बल पर वे अपने समय का पूरा-पूरा लाभ उठा पाईं।

''मैं चाहती थी...यदि मैं घर से दूर रहूं तो किस्मत द्वारा दिए गए इस देश-निकाले के एक-एक पल का सदुपयोग करूं क्योंकि घर लौटने पर मैं अपनी व्यस्तताओं से ऐसे पल नहीं निकाल पाती...।''

13 अप्रैल, 2003 को उनका विवाह हुआ। उनके यहाँ 'मेहर' नामक प्यारी-सी बिटिया ने जन्म लिया है। जो किरण को 'नानी' कहकर पुकारती है।

जब किरण से पूछा गया कि संयुक्त राष्ट्र प्रवास के दौरान उन्हें क्या-क्या सीखने को मिला तो वे कहती हैं-

''विभिन्न देशों की पुलिसों के ढांचे को नया रूप देना, नीतियों का आकलन करना, नियुक्ति करना, मार्गदर्शन करना व प्रशिक्षण देना आदि कार्य हमारे पास थे। हमारा 190 सदस्य राष्ट्रों से संपर्क था और हम समय-समय पर सुरक्षा परिषद को अपनी रिपोर्ट पेश करते रहते थे।''

किरण ने जनवरी 2003 में संयुक्त राष्ट्र के सिविलयन पुलिस डिवीज़न में अपना कार्य-भार

संभाला। उन्होंने यूरोप, एशिया व अफ्रीका में फौज व मानवाधिकार संस्थाओं के साथ 16 शांति अभियानों में भाग लिया। वर्तमान में, 80 देशों से पुलिस अधिकारी व विशेषज्ञ शांति अभियानों में जुटे हुए हैं। यदि सदस्य राष्ट्रों से सही समय पर उचित सहयोग न मिले तो इन्हें अपने अभियानों को सफलतापूर्वक निभाने में कठिनाई अनुभव होती है। वास्तव में यह कार्य किसी बड़ी चुनौती से कम नहीं है। किरण कहती है-''अपने सिस्टम को और भी प्रभावी बनाने के लिए हमने मागदर्शक नीतियां तैयार की हैं। सटीक अनुभव की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। परंतु अंततः आपके पास अच्छी नेतृत्व शक्ति का होना बहुत जरूरी है। फिर चाहे वे संयुक्त राष्ट्र के पुलिस कमिश्नर हों या मिलिट्री एडवाइज़र, मानवाधिकार से जुड़े अधिकारी हों या सेक्रेट्री जनरल के विशेष प्रतिनिधि।

किरण से एक बार साक्षात्कार में पूछा गया कि जब वहां कार्यरत अधिकारी वापस लौटते हैं तो भारत जैसे सदस्य देशों को उनसे क्या लाभ होता है? उनके अनुसार-

जब भारतीय पुलिस अधिकारी अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए काम करते हैं तो वे भारत के 'शांति दूत' की भूमिका निभाते हैं और वैश्विक अनुभवों से विस्तृत दृष्टिकोण लेकर वापस जाते हैं। कुछ मामलों में वे अपनी शक्तियों और व्यावसायिक दक्षता के बारे में और भी विश्वस्त हो जाते हैं।

सन् 2004 संयुक्त राष्ट्र के 'ब्ल्यू हेल्मेट वालों' अर्थात शांति दूतों के लिए व्यस्तता से भरा समय था। उन्हें अफ्रीका, कैरीबियन, हैटी, बुरूंडी व सूडान आदि देशों में कई कठिन अभियान करने पड़े। किरण ने बताया-

''एक ही सबक बार-बार दोहराया जाता है कि 'आंतरिक सुरक्षा के बिना विकास होना असंभव है।' अच्छी तरह प्रशिक्षित व हथियारों से लैस व्यावसायिक पुलिस सेवा ही मानव अधिकारों व प्रजातंत्र की रक्षक हो सकती है। जब संयुक्त राष्ट्र ऐसे देशों में पहुंचा जहां पुलिस सेवाएं नष्ट हो चुकी थीं तो उन्होंने इसी तथ्य को स्वीकारा। सिविलयन पुलिस ने पुलिस का ढांचा नए सिरे से तैयार करने, भर्ती, नियुक्ति व प्रशिक्षण आदि कार्य किए। मैंने उन देशों में इन शांति-अभियानों से आने वाले परिवर्तनों को लक्ष्य किया, जहां संयुक्त राष्ट्र अपने पूरे साधनों के साथ मौजूद था। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस कार्य को करने में समय लगता है परंतु यदि नीतियां उचित हों, कार्य का निष्पादन उचित हो तो देश को संभलने में देर नहीं लगती। दुर्बल, असहाय तथा निर्धन राष्ट्रों को इससे विशेष लाभ होता है।''

किरण ने महसूस किया कि जब संयुक्त राष्ट्र के विभाग किसी मिशन के विषय में मिलकर फैसला करते हैं तो वह कूटनीति और राजनीति से प्रभावित होती है। अंतर्राष्ट्रीय विश्व शांति अभियान में महिलाओं की भूमिका और पीस कीपिंग ऑपरेशन के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में होने वाली सुधारों पर किरण कहती हैं-

''हम अपने विभाग में महिला अधिकारियों को तभी शामिल करते हैं जब सदस्य राष्ट्र उनका नाम प्रस्तावित करते हैं। प्रायः ये ऐसा नहीं करते क्योंकि उनके देशों में पुरुषों की

तुलना में महिला अधिकारियों की संख्या भी काफी कम है। अनेक देशों में तो अब भी महिला पुलिस कर्मियों की संख्या नगण्य है। यद्यपि अभी वहां भी सुधार की आवश्यकता है परंतु संयुक्त राष्ट्र इस विषय में पीछे नहीं रहा। टिमोर में नियुक्त पुलिसकर्मियों में से 23 महिला कर्मी थी। किसी भी अंतर्राष्ट्रीय गृह युद्ध में महिलाएं ही सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं इसलिए वर्दी वाली महिलाएं यदि आगे आएं तो वे उनके दु:ख को समझ सकती हैं, उनकी पीड़ा बांट सकती हैं तथा नई पीढ़ी को राष्ट्र के निर्माण का दायित्व लेने की प्रेरणा दे सकती है।''

घर लौटने पर अपनी योजनाओं और संयुक्त राष्ट्र में भागीदारी के प्रश्न पर किरण कहती हैं-

''मेरे पास भारतीय पुलिस की सेवा के लिए चार वर्ष से भी अधिक समय है। मैं सेवा की गुणवत्ता में सुधार, अधिकारियों के कल्याण, प्रशिक्षण व संसाधन आदि मुद्दों के लिए अपनी सेवाएं अर्पित करना चाहूंगी। संयुक्त राष्ट्र मेरे अवचेतन मस्तिष्क में समाया रहेगा परंतु यह भी अपने तरीके से सहायक बना रहेगा। जो कुछ भी मैंने वहां सीखा, उसके लिए मैं संयुक्त राष्ट्र के प्रति कृतज्ञ हूं। मैंने स्वयं देखा है कि भारत को संयुक्त राष्ट्र की ओर से विशेषाधिकार प्राप्त है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता।”

35

किरण की संयुक्त राष्ट्र से विदाई

संयुक्त राष्ट्र, मैं आपसे विदा लेती हूं (सदा के लिए नहीं)।

मैंने संयुक्त राष्ट्र के साथ दो वर्ष बिताए और समय बीत गया। इन दो वर्षों में मुझे घर की बेहद याद आती रही परंतु आज जब मैं पीछे मुड़ कर देखती हूं तो वह सारा समय बीत गया है- और अब मैं अपने पीछे अधूरा काम छोड़ कर जा रही हूं। इसमें कोई नई बात नहीं है। मेरे लिए तो नहीं है, हो सकता है औरों के लिए भी न हो। पर प्रश्न यह उठता है कि क्या यह आज्ञा पहले से दी गई है? या यह प्रकृति का ही कोई नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के किसी न किसी भाग में कुछ कार्य अधूरे छोड़ने ही पड़ते हैं।

एक जीवन कभी पर्याप्त नहीं होता। मैं विश्वास रखती हूं कि यही वापस लौटने का कारण बनता है। हम जितना कार्य करते हैं, उतना ही कार्य शेष रह जाता है और उसी अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए हम नए लोगों को आगे लाते हैं परंतु हर बार काम अधूरा ही रह जाता है। जब मैं बहुत छोटी थी तो मेरी अध्यापिकाओं ने मुझे बताया था कि इस जन्म में अधूरा छोड़ गया होमवर्क अगले जन्म में आकर पूरा करना पड़ता है। यह सुनकर हम अपना होमवर्क अधूरा छोड़ने की हिम्मत नहीं कर पाते थे। तब मैं बहुत छोटी थी और अपनी अध्यापिका से डरती थी पर अब मैं बड़ी हो गई हूं और मैं सोचती हूं कि मैं जो भी जानती हूं, वस्तुत: सत्यार्थ नहीं जानती। मैं जीवन में छिपे रहस्य जानना चाहती हूं परंतु मैं उन्हें कभी नहीं जान पाऊंगी।

...परंतु एक बात मैं स्वाभाविक रूप से जानती हूं कि मुझे इस जन्म में एक पुलिस अधिकारी के रूप में किए गए पापों के कारण फिर से जन्म लेना होगा। लोगों से राज उगलवाने के लिए उन्हें हवालात में डालना, भीड़ को तितर-बितर करना, आंसू-गैस छोड़ना, गिरफ्तार करना, कैदी बनाना और गैरकानूनी कामों का भंडाफोड़ करना आदि कार्यों के लिए मुझे पुरस्कार भी मिले। यही नहीं, लोगों के वाहन क्रेन से उठवा लेना। यहां तक कि मैंने अपने मित्रों और गणमान्य व्यक्तियों के गलत जगह पार्क किए गए वाहनों को भी नहीं छोड़ा और कई विशेषण पाए।

संयुक्त राष्ट्र में मैंने अपने लिए एक निश्चित स्थान बनाने की कला सीखी-अधूरा काम छोड़ कर 'अगले जन्म' के तथ्य को जाना। यद्यपि मैं स्वीकार करती हूं कि यह संयुक्त राष्ट्र के लिए कुछ नया नहीं है। मैं इस अनुभव को अपने साथ भारत ले जाऊंगी। मेरा अधूरा काम युद्ध नीति की ही एक योजना (मेरे बॉस का प्रिय शब्द) है। मैंने सभी समर विधाएं सीखीं और उसे पुनरावतारवाद से जोड़ दिया। यदि मैं आपको एक और लाभ गिनाऊं तो यह (सी ओ एन पी ओ एस) का निर्माण है। इसे हम 'कांसैप्ट ऑफ ऑपरेशन' कहते हैं। पीस कीपिंग ऑपरेशन के

डिपार्टमेंट में इस शब्द का प्रयोग प्राय: किया जाता है। कौन कहता है कि ऑफिस ऑफ ऑपरेशन की मदद के बिना और मदद से, हमारा पुलिस डिवीजन कुछ नहीं कर सकता।

मैंने अपने स्कूली दिनों से ही संयुक्त राष्ट्र का सम्मान करना सीखा है। हमने स्कूल-कॉलेज में संयुक्त राष्ट्र दिवस देखा है। हम महासभा व सुरक्षा परिषद को भी पूरा मान देते थे। हमारे लिए संयुक्त राष्ट्र एक ऐसी संस्था थी जो अपने चार्टर व नियमों के प्रति कटिबद्ध थी। मैं एक भारतीय पर्यटक के रूप में संयुक्त राष्ट्र आती और तस्वीरें खिंचवाकर लौट जाती। मेरे लिए यहां काम करना या इस बारे में विचार करना भी कठिन था क्योंकि यह विदेशी मामलों से भरपूर रहस्यमयी कूटनीति वाला संसार था, परंतु मेरे फ्रांसीसी मूल से आए बॉस ने मेरे सामने इस संस्था का मानवीय और दैवीय ढांचा प्रस्तुत किया। मैंने इस अमूल्य अनुभव के लिए आजीवन उनकी आभारी रहूंगी।

हमारा संयुक्त राष्ट्र विश्व शांति व सौहार्द्र का एकमात्र मातृस्थल है। मानो यह सभी छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब देशों का एक घर है। इस घर में जगह की कोई कमी नहीं है। यहां सभी को लपक कर गले से लगाया जाता है। यहां आकर मैंने सबसे पहले इसी तथ्य को जाना।

...परंतु अब हमारे लिए माता समान संयुक्त राष्ट्र स्वयं संकट में है। नीला झंडा व हेल्मेट दुर्बल होते जा रहे हैं। इसके अनेक अधिकारी विभिन्न मुद्दों में निशाने पर हैं। संसार में बढ़ते मार्जिनलाइजेशन ने इसकी नींव हिलाकर रख दी है।

बाहरी वित्तीय सहायता भी इसके लिए एक चुनौती बनकर उभरी है। गरीबी और बीमारी लगातार बढ़ती जा रही है। यही काफी नहीं था कि मानवीय सुरक्षा का प्रदान भी विकराल हो गया।

इसके बारे में संसार क्या कहना चाहता है? हम संयुक्त राष्ट्र से जुड़कर विश्व शांति के लिए प्रतिबद्ध हैं, ऐसे में हमारी सुरक्षा और घरों से दूरी भी शायद मायने नहीं रखती। हम सब मिलकर विस्थापित और दु:खियारों की मदद के लिए सबसे आगे हैं और रहेंगे।

अब मैं अपने अधूरे काम को पूरा करने के लिए, अपने वृद्ध पिता की सेवा के लिए लौट रही हूं। दिल्ली में ही किसी भी पद पर कार्य करके मुझे प्रसन्नता होगी। मैं आपसे केवल तीन अंकों की दूरी पर हूं- 100, पुलिस कंट्रोल रूम शीघ्र ही आपको मेरी जानकारी दे देगा।

मैं आपसे एक विश्वास बांटना चाहती हूं, जिसका अभ्यास मैं प्राय: करती हूं। परिवर्तन एक नियम है, वृद्धि वैकल्पिक है, बुद्धिमत्तापूर्वक ही चुनाव करें।

किरण ने दो कारणों से, न्यूयार्क प्रवास को दो वर्षों तक ही सीमित रखा। उन्हें अपने वृद्ध पिता की सेवा करनी थी तथा दूसरे, वे दिल्ली पुलिस में लौटने को बेचैन थीं, किंतु भारत वापसी पर, उनके अंतर्राष्ट्रीय अनुभव को सराहने की बजाए, उसे काम में लाने की बजाए, उनके आस-पास ईर्ष्यायुक्त जाल बुना जाने लगा। उन्हें दिल्ली पुलिस से दूर रखने का हर संभव छल-प्रपंच रचा गया। दुश्मनों का एक पूरा समूह उन्हें मर्माहत करने पर तुला था। पहले उनकी पदोन्नति रोकी गई और फिर उनकी ईमानदारी व अखंडता को तोड़ना चाहा। एक स्थानीय राष्ट्रीय पत्र के

रिपोर्टर को सारी कहानी सुनाई गई, उसने उसे छापने से पहले किरण से पूछना उचित समझा। किरण ने उसे अपना पक्ष बताने के लिए, बाद में बुलवाया क्योंकि उस समय उन्हें उड़ान भरनी थी उसे रिपोर्टर ने कहानी को वहीं रोक दिया। अगली सुबह, जब उसे कहानी से जुड़े अंकेक्षण रिपोर्ट दिखाए गए तो वह जान गया कि उसका इस्तेमाल किया जा रहा था। उसने कहानी छापने से मना कर दिया लेकिन षड्यंत्रकारियों का प्रभाव इतना अधिक था कि उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

किरण ने मामले को वहीं खत्म नहीं होने दिया। उन्होंने उच्चाधिकारियों को उक्त व्यक्ति के आचरण की जाँच के लिए कहा, किंतु कोई फायदा नहीं हुआ। उस व्यक्ति की काफी ऊँची राजनीतिक पहुँच थी।

फिर किरण ने गृह मंत्री के सामने सारे रिकॉर्ड रखे, जो कि खुशकिस्मती से उनके पास ही थे। उन्हें डी. जी. पी. का रैंक तो मिला, लेकिन (अध्याय 36 में सविस्तार पढ़ें) वे कई तरह से सीमाओं में बंधी थी। उनकी मर्जी की नियुक्ति देने की बजाए उन्हें कामचलाऊ भार सौंपा गाया। वे स्वयं को फिर एक बार अवांछनीय स्थिति में पा रही थीं।

संयुक्त राष्ट्र की विशेष शिक्षा व ज्ञान अनुपयोगी ही रहा।

36

बंधन से मुक्ति

दिनांक: 25 जुलाई, 2007, उस दिन, स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में पहली बार एक महिला (प्रतिभा पाटिल) ने राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण की। उसी दिन, देश की राजधानी दिल्ली को भी पहली महिला पुलिस कमिश्नर मिल सकती थी; परंतु ऐसा हुआ नहीं। नियोक्ताओं ने अपने उत्तरदायी पद का प्रयोग करते हुए न केवल मुझे प्राथमिकता सूची से बाहर रखा, बल्कि व्यक्तिगत एजेंडा भी पूरे किए।

इस अध्याय में, मैंने स्पष्ट किया है कि मैं क्यों मानती हूँ कि मुझे इस उत्तरदायित्व से वंचित रखा गया, किस तरह मेरी अपनी पुलिस सेवा के कुछ सदस्यों व नौकरशाहों के एक गुट ने दिल्ली पुलिस में मेरी वापसी में बाधाएं खड़ी कर दीं; जो कि मेरे लिए घर की तरह थी। उन्होंने मुझे दिल्ली शहर की उस रूप में सेवा करने की अनुमति नहीं दी जो कि जनता-पुलिस साझेदारी में नए चलन पैदा करता। वह गुट जानता था कि मैं वे सब बदलाव लाऊँगी, जो वे कभी नहीं चाहते और उन्होंने कभी लाने का प्रयत्न भी नहीं किया। वे मुझे देश में पुलिस सुधार का एक द्वीप खड़ा करने की आज्ञा दे भी कैसे सकते थे और वे अतीत की व्याख्या कैसे करते? दिल्ली पुलिस गढ़ की सुरक्षा का भी तो पुख्ता इंतजाम करना था। यह उनमें से कुछ के लिए उत्तरजीविता का प्रश्न था, जिन्हें भय था कि यदि मैं शीर्ष पद तक पहुँच गई तो उनके काम करने के कई तौर-तरीके सामने आ जाएँगे।

मैंने अपने मन में पक्का कर लिया था और स्पष्ट रूप से नियंत्रक नियोक्ताओं (राजनीतिक व नौकरशाह) को भी संकेत कर दिया था कि यदि मुझे दिल्ली की पुलिस कमिश्नर पद के लिए उपेक्षित किया गया तो मैं बाहर निकल जाऊँगी। वह गुट मेरे निर्णय के बारे में जानता था; और मैं उनके निर्णय-निर्धारण में थरथराहट देख सकती थी। मेरी वापसी को हर संभव प्रयास से टाला जा रहा था, जबकि पद तथा वरिष्ठता, दोनों लिहाज से पंक्ति में सबसे आगे थी। वे मुझे उपेक्षित करने की स्थिति में सार्वजनिक प्रतिक्षेप से भी आशंकित थे। या फिर यू. एन. चयन के विषय में क्या कह सकते हैं? (अध्याय-33 देखें।) मेरे हिसाब से उस गुट के लिए अपने 'आदमी' को वहाँ लाना तथा अतीत पर आवरण डालना कहीं मायने रखना।

जब देर रात टी. वी. चैनलों पर नए पुलिस कमिश्नर की नियुक्ति का समाचार प्रसारित हुआ तो मैं लगभग सो ही चुकी थी। तभी मेरी मानस-पुत्री नीतू ने खबर देखी, वह मेरे बिस्तर के पास आई और हिलाकर जगा दिया। संभवत: नहीं जानती थी कि ऐसी खबर कैसे देनी चाहिए। उसने केवल यही कहा, ''मम्मू (वह मुझे इसी नाम से पुकारती है) न्यूज़ देखो। पुलिस कमिश्नर की नियुक्ति के बारे में हैं।'' मैंने अचानक तकिए से सिर उठाकर, कमरे में पड़े टी. वी. की तरफ देखा। वह खबर देखते ही मन में सबसे पहले एक ही विचार आया, ''हे

भगवान! फैसला तो हुआ,'' मैंने नीतू से कहा, ''मैं तो आजाद हो गई'' (अभी दो साल तक ही नौकरी बाकी थी उसी से आजाद हो गई) फिर मैं दोबारा सो गई।

अगली सुबह, जब मैं सुबह की सैर के लिए बाहर निकली तो मुझे बताया गया कि दरवाजे पर मीडिया वाले भीड़ लगाए खड़े हैं। मैं उनसे मिली व एक साथ अपनी निराशा, हानि व चैन की भावनाएँ प्रकट कीं। उसी संदर्भ में, यहाँ दो समाचारों की कतरनें दी जा रही हैं।

किरण बेदी के आई. पी. एस. करियर का पटापेक्ष

सरकार ने अंततः, देश की पहली महिला आई. पी. एस. अधिकारी किरण बेदी की अर्ज़ मान ली, जो कि पुलिस सेवा से स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति चाहती थीं। उन्होंने कार्यकाल समाप्त होने के 19 माह पूर्व ही नवंबर 2007 में सेवानिवृत्त होने के लिए आवेदन किया था।

रैमन मैग्सेसे पुरस्कार विजेता, जिन्होंने 1972 में भारतीय पुलिस सेवा में कदम रखा; अब सेवानिवृत्ति के पश्चात पंचायत स्तर पर महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम को पहला मिशन बनाने जा रही हैं तथा अपने बलबूते पर कार्य करने की योजना बना ली है।

गृह मंत्री ने बेदी को सेवानिवृत्ति करने का निर्णय ले लिया; जो कि (बी. पी. आर. डी.) के डायरेक्टर जनरल के पद पर थीं, उनके कार्यों से...

केंद्र से सेवामुक्ति का औपचारिक पत्र पाने के बाद बेदी ने टाइम्स ऑफ इण्डिया को बताया कि अब वे बिना किसी हस्तक्षेप या संघर्ष के जनता के लिए काम करने को तत्पर हैं। उन्होंने कहा, ''अब मैं मनमर्जी की मालिक हूँ।'' उनसे पूछा गया कि क्या वे सरकार की ओर से आने वाले किसी भी प्रस्ताव को स्वीकारेंगे; पिछले सप्ताह ही संकेत मिला था कि नेशनल पुलिस मिशन परियोजना के लिए उनकी सेवाएँ ली जाएँगीं। बेदी ने कहा, ''मैंने बहुत सरकारी नौकरी कर ली। अब मैं सरकार के लिए नहीं, बल्कि अपनी परियोजनाओं के माध्यम से सरकार के साथ काम करूँगी'', इसका खुलासा करते हुए वे बोलीं कि उनकी दोनों संस्थाएँ- नवज्योति व इंडिया विज़न फाउंडेशन; थोड़ी सरकारी सहायता के साथ, विभिन्न परियोजनाओं पर कार्यरत हैं। उन्होंने कहा, ''देहाती इलाकों में महिला सशक्तिकरण व उनके बीच पंचायत स्तर पर नेतृत्व पैदा करना, मेरा पहला कार्य होगा।'' दरसअल बेदी ने वी. आर. एस. के लिए आवेदन करते समय ही अपनी मंशा जाहिर कर दी थी कि वे 'सशक्त शैक्षिक व सामाजिक हितों' में छोड़ना चाहती हैं।

जब सरकार ने दिल्ली पुलिस कमिश्नर पद के लिए उन्हें उपेक्षित करते हुए, उनके जूनियर आई. पी. एस. कैडर, वाई एस. डडवाल को यह पद सौंप दिया तो उन्होंने वी. आर. एस. (वोल्यून्टरी रिटायरमेंट स्कीम) के लिए अर्जी दे दी, उन्होंने सरकार की इस कार्यवाही के खिलाफ सार्वजनिक रूप से रोष भी प्रकट किया। उन्होंने 35 वर्षीय कार्यकाल के दौरान, दिल्ली पुलिस व उसके बाहर, विभिन्न पदों पर कार्य किया। डी० सी० पी०

(ट्रैफिक) के रूप में उन्हें 'क्रेन बेदी' कहा जाने लगा था क्योंकि वे गलत स्थान पर पार्क किए गए वाहन को क्रेन से उठवा लेती थीं, फिर चाहे वह किसी वी. आई. पी. का ही क्यों न हो, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की कार भी उनके कानून से बच नहीं सकी थी।

(द टाइम्स ऑफ इंडिया, 28 दिसंबर, 2007)

बेदी ने खाकी को विदा दी

26 दिसंबर, बुधवार को अपनी वी. आर. एस. की अर्जी मंजूर होने पर, भारत की पहली महिला आई. पी. एस. अधिकारी किरण बेदी ने खाकी को विदा दे दी।

24 दिसंबर को गृहमंत्रालय से सेवानिवृत्ति का पत्र पाते ही......पुलिस बल के साथ उनके लंबे चले आ रहे संबंध का अंत हो गया।

जुलाई में.........मैग्सेसे विजेता किरण ने सरकार पर आरोप लगाया था कि वह पुलिस में महिलाओं के प्रति भेदभाव रखती हैं, उस समय उन्हें दिल्ली पुलिस कमिश्नर पद के लिए उपेक्षित कर दिया गया था।

वी. पी. आर. डी. की डायरेक्टर जनरल के रूप में काम कर रही बेदी ने कहा, ''मेरे पास कुछ रोचक योजनाएँ हैं। लेखन व यात्रा की योजना है। ये मेरे लिए काफी व्यस्त दिन होंगे।''

वे भारत की पहली महिला पुलिस अधिकारी हैं। खाकी को विदा देते हुए किरण ने शोक प्रकट किया कि पुलिस सेवा में उनकी बहनें, एक अज्ञात सत्ता ही बनी रहेंगी।

''पुलिस बल में महिलाएँ अब भी किसी अज्ञात अस्तित्व की तरह हैं। वे ऐसी ही रहेंगी'', वेदी ने कहा। उन्होंने पुलिस व्यवस्था में 'नकारात्मक' राजनीतिक हस्तक्षेप की चर्चा करते हुए कहा कि इससे देश की पुलिस व्यवस्था की क्षमता पर गहरा असर पड़ रहा है।

वे सबसे 'लाड़ली अधिकारी' रहीं। ऐसा सुनकर वे कहती हैं :- ''यदि ऐसा होता, तो मैंने प्रशिक्षण विभाग में चार साल न बिताए होते। कोई भी दुलारा पुलिस अधिकारी तिहाड़ नहीं जाता।'' सेवा-मुक्ति का पत्र पाने के बाद वे मंदिर गईं तथा भगवान के आगे हाथ जोड़े- ''धन्यवाद, प्रभु! अब आप मेरा ध्यान रखना।''

डेक्कन हेराल्ड, 28 दिसंबर, 2007

मैंने लगातार मिलने वाले विपक्ष के बावजूद 35 वर्ष सेवा की है। मैंने करियर के कदम-कदम पर बाधा देने वालों का सामना करते हुए, उनकी ईर्ष्या से जूझते हुए, पुरानी कानून व्यवस्था को चुनौती दी है, उसे सुधारने का साहस किया है। मुझे लगातार यही सुनना पड़ता था, ''यदि तुम इस तंत्र का हिस्सा नहीं बन सकतीं, तो इससे बाहर क्यों नहीं निकल जातीं?'' अब मेरे लिए उचित समय आ गया था कि मैं इस ईर्ष्या व घुटन से भरे माहौल से बाहर निकल आऊँ क्योंकि ताजा हालातों में, मेरे लिए कोई भी बदलाव लाने की गुंजाइश नहीं बची थी। पीछे मुड़कर देखती हूँ तो एहसास होता है कि शायद भीतर ही भीतर असंतोष पलता आ रहा था और जब मुझे उक्त पद के लिए भी उपेक्षित किया गया तो सारी दीवारें ढह गईं।

पिछले वर्षों में, मुझे डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस की कुछ वार्षिक कॉन्फ्रेंसों में हिस्सा लेने का मौका मिला है। उनमें प्रधानमंत्री, नौकरशाहों द्वारा तैयार लिखित भाषण पढ़ते हैं। मीडिया बड़ी तत्परता से भाषण के मुख्य अंशों को सहेज लेता। उसके बाद मैंने विशेष रूप से दीर्घकालीन पुलिस सुधारों पर कोई साहसी या निर्भीक पहल नहीं देखी। न ही पिछली कॉन्फ्रेंसों में लिए गए फैसलों की अंकेक्षण या जवाबदेही के लिए कोई गंभीर तत्परता दिखाई दी। मैं निजी रूप से लंबित मामलों के प्रबंधन में संसर्गी रही हूँ, जिन्हें समिति के तहत विचाराधीन (कॉन्फ्रेंस से ठीक पहले बनीं समितियाँ) दिखाया जाता है।

नौकरशाही राष्ट्र के विशालकाय प्रशासनिक तंत्र का मर्म है। ये नौकरशाह ही इस तंत्र के अदृश्य नियंत्रक माने जाते हैं। दुर्भाग्यवश कई दशकों से, तंत्र से जुड़े लोगों के उत्तरदायित्व पथरा से गए हैं, उन्हें प्रतिगामी दिया गया है। जब भी उनकी नौकरी से बाहर का कोई भी व्यक्ति बदलाव लाने की बात करता है तो उसे, उनके लिए धमकी मान लिया जाता है। उनके इस दुर्ग में ठहरने का एकमात्र उपाय यही है कि स्वयं को भी व्यक्ति उनकी मानसिकता के साँचे में ढाल ले।

2007 के मध्य तक, मैं अपनी पुलिस सेवा में शीर्ष तक पहुँच चुकी थी। मैं नई दिल्ली, भारत सरकार के गृहमंत्रालय के अधीन केंद्रीय पुलिस संगठन की 'डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस' थी। मेरे पद, क्षमता व योग्यता के अनुसार मेरी क्षमताओं का भरपूर उपयोग हो सकता था किंतु इसकी बजाए मुझे ऐसे संगठन में नियुक्त किया गया जो हाशिए पर था। संभवत: उन नियंत्रकों को मेरी उपस्थिति बुरी तरह खटक रही थी। ऐसा इसलिए भी था क्योंकि अब मैं उनके नकारात्मक साजिश की साक्षी बन चुकी थी। मैंने उस उच्चस्तरीय गुट को, पुलिस नेतृत्व को हाशिए पर लाते हुए देखा; जो कि राष्ट्र व उसके लोगों के भी हित में नहीं था। नतीजा तो आज आप सबके सामने है ही। भारतीय पुलिस पर जनता का कितना भरोसा है।

मैं 14 नवंबर, 2006 को संघीय गृह सचिव द्वारा रखी गई भेंटवार्ता की साक्षी रही हूँ, जिसमें सभी राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्य सचिव, प्रशासक व डायरेक्टर जनरल भी शामिल

थे। यह मीटिंग, भारत के सुप्रीम कोर्ट द्वारा पुलिस सुधारों पर लैंडमार्क जजमैंट के विषय में (नवंबर 2008 के मुंबई आतंकवादी हमलों के बाद राष्ट्रीय मुद्दा, जिसे हमने 'आंतकी युद्ध' की संज्ञा दी है) थी। एजेंडा की सूची में यह भी शामिल था कि 22 नवम्बर, 2006 को आदरणीय जज महोदय द्वारा सर्वोच्च अदालत में दिए गए निर्देशों के क्रियान्वयन स्तर का पुनरावलोकन किया जाए व उससे जुड़े मुद्दों पर चर्चा हो।

संघीय गृह सचिव ने अपनी बात शुरू करते हुए पूछा कि प्रत्येक राज्य सरकार इन निर्देशों के विषय में क्या सोचती है।

यहाँ इन निर्देशों का सार-संक्षेप दिया जा रहा है : (1) राज्य सुरक्षा कमीशन की स्थापना (जिसमें गृहमंत्री, प्रसंगिक नौकरशाह, पुलिस प्रमुख, विपक्षी दल के नेता तथा नागरिक समाज के कुछ सदस्य शामिल हों ताकि वाह्य निरीक्षण के साथ-साथ दीर्घकालीन नजरिया भी प्राप्त हो सके) (2) डी. जी. पी. का चयन तथा न्यूनतम कार्यकाल (पद संभालने से त्यागने तक; राजनीतिक व नौकरशाही चुनाव तथा निर्भीक व सुरक्षित नेतृत्व) (3) आई० जी० पुलिस व अन्य का न्यूनतम कार्यकाल सुनिश्चित करना (ताकि रैंक व फाइल की निरंतरता सुरक्षा व बेहतर जवाबदेही बनी रहे) (4) पूछताछ व छानबीन को कानून तथा व्यवस्था से अलग करना। केंद्रित छानबीन व दोषसिद्धि की पटती दर को संभालने के लिए। (5) पुलिस स्थापना बोर्ड का निर्माण (बेहतर कार्मिक नीतियों के लिए) (6) पुलिस कम्पलेंट अथॉरिटी की स्थापना (जवाबदेही बढ़ाने के लिए), (जिला व राज्य स्तरीय) (7) राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग की स्थापना (केंद्र सरकार के स्तर पर पुलिस प्रमुख, विपक्षी दल के नेता व राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में बाहरी विशेषज्ञों के चयन के लिए)

इन सभी निर्देशों के क्रियान्वित होने से, पुलिस नेतृत्व कायम होता व काफी हद तक नकारात्मक राजनीतिक व नौकरशाही हस्तक्षेप को रोका जा सकता था तथा पुलिस की जवाबदेही बढ़ाई जा सकती थी, इसके अलावा कई लंबित सुधारों पर काम हो सकता था, जिनमें नागरिक समाज स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति व पुलिस के साथ उनकी भागीदारी भी शामिल है। (विडबंना ये रही कि नवंबर 2008 के आतंकवादी हमलों के बाद इन पुलिस सुधारों के लिए सार्वजनिक कड़ा विरोध हुआ।)

एक-एक करके सभी राज्य मुख्य सचिवों ने शीर्ष न्यायालय के निर्देशों को एक्ज़ीक्यूटिव की शक्तियों का अतिक्रमण ठहराया। उन्होंने तय किया कि केंद्र तथा राज्य सरकार को इसके खिलाफ अपील करनी चाहिए। पुलिस प्रमुखों ने अपनी राय तो नहीं दी लेकिन अपने अधिकारियों (मुख्य सचिव) के सुझावों पर सहमति दे दी। उनमें से किसी में भी, पुलिस बल के नेता के रूप में अपनी बात कहने का साहस नहीं था। यह सचमुच काफी निराशाजनक था। इसकी तो उनसे उम्मीद भी नहीं की जा सकती थी। उनमें से डी जी पी, कर्नाटक ही अपवाद रहे।

यह मीटिंग जिस तरह रखी गई, यह काफी हद तक किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थी यह निर्देशों के प्रति राष्ट्रीय विरोध के स्तर रिकॉर्ड करने व यह दिखाने का माध्यम बनी कि केंद्र

सरकार कुछ अधिक नहीं कर सकी।

इस अवसर ने ऊँचे दर्जे पर होने वाले छल-प्रपंच को देखने व जानने का मौका दिया और मैंने देखा कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों पर उनके नेतृत्व की क्या प्रतिक्रिया रही। इससे मेरे मन की कड़वाहट और भी बढ़ गई और मैंने स्वयं को शक्तिहीन पाया।

पर मैंने फिर भी हिम्मत नहीं हारी। मैंने उसी मीटिंग में जोर दिया कि इस रवैए से तो हम अपने ही उत्तरदायित्व को उपेक्षित कर रहे हैं, और इतिहास हमें कभी माफ नहीं करेगा। मैंने बाद में गृहमंत्री को भी इस बारे में सूचना दी किंतु कोई फायदा नहीं हुआ (उन्हें भी आपकी समझ की कमी और लापरवाही की कीमत चुकानी पड़ी)

यहाँ ऐसी दो और घटनाएँ प्रस्तुत हैं; जो कि नौकरशाहों द्वारा पुलिस सुधारों की तोड़-मरोड़ का पर्दाफाश करती है; जिन्हें मैंने स्वयं देखा।

पहली, 11 जनवरी, 2007 को मैं सुप्रीम कोर्ट में उपस्थित थी ताकि मुख्य न्यायधीश ई. के. सब्बरवाल का फैसला सुन सकूँ, जो उन्होंने; भूतपूर्व डी. जी. पी. प्रकाश सिंह व अन्य द्वारा पुलिस सुधारों पर दी गई याचिका के मामले में देना था। (समादेश याचिका सिविल- संख्या 310, 1996 केवल मैं ही ऐसी पुलिस अधिकारी थी, जो वहाँ जाने का साहस कर सकी। मैं विशेष रूप से पुलिस सुधार के क्षेत्र में कायम होने वाले इतिहास की साक्षी बनना चाहती थी। मुझे बड़े अफसोस से कहना पड़ता है कि कोर्ट में कोई भी उच्च पुलिस अधिकारी मौजूद नहीं था, जबकि उस समय दिल्ली में सभी पुलिस नेता मौजूद थे, जो कि इस फैसले को सुनना चाहते थे। क्योंकि इस दिन, वे सभी 26 सितंबर, 2006 में लिए गए न्यायालय के फैसले के खिलाफ वकालत करने वाले थे। (गृह सचिव के साथ हुई मीटिंग में यही तय हुआ था।) वहाँ अनेक वकील (परिशिष्ट: 3 देखें) भी मौजूद थे, जो कि देश के सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जिनमें भारत सरकार के वरिष्ठ वकील भी शामिल थे। मैंने एक के बाद एक वरिष्ठ वकीलों को न्यायालय के उक्त फैसले के खिलाफ वकालत करते देखा। इनमें मेरी दिल्ली पुलिस के कानूनी वकील भी शामिल थे, जो कि पुलिस सुधारों के विरुद्ध थे। यह देखकर तो मैं सकते में आ गई, क्योंकि उसी समय, मैं उम्मीद लगाए बैठी थी कि दिल्ली पुलिस में लौटते ही, मैं शीर्ष न्यायालय के निर्देशों को क्रियान्वित करूँगी।

मैंने शीर्ष न्यायालय को बोलते सुना व देखा ''...हम अपने न्याय के पुनरावलोकन की आज्ञा नहीं दे सकते, जो कि 26 सितंबर, 2006 को दिया गया (अधिक विस्तार के लिए परिशिष्ट: 3 देखें)

कार्रवाई समाप्त होते ही, मैं तथा प्रकाशसिंह कोर्ट से बाहर आए मामले की रिपोर्ट बना रहे मीडियाकर्मियों ने हमें घेर लिया। मैंने कोर्ट के फैसले पर अपना आनंद व्यक्त किया। फिर मैं ऑफिस चली गई। कुछ ही घंटों में बॉस के साथ मेरी मीटिंग थी। फैसले का समाचार प्रसारित हो चुका था तथा मीटिंग में चर्चा का विषय था। बॉस ने मेज के आसपास बैठे दूसरे सहकर्मियों से फैसले के बारे में पूछा। चूँकि उन सबके पास सुनी-सुनाई जानकारी ही थी, जो कि पूरा सच

नहीं थी। मैंने सबके हित को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त जानकारी दे दी। मेरे इस प्रयास की सराहना करने की बजाए गृह सचिव (बॉस) ने मुड़ कर पूछा, ''आप कोर्ट में क्या कर रही थीं। क्या आज बी. पी. आर. डी. में आपके लिए कोई काम नहीं था। मैं फैसले पर उनकी असहजता को समझ सकती थी। मैंने मुस्कुराकर कहा, ''सर, आप भूल गए कि मैं बी. पी. आर. डी. की डी जी पी हूँ और पुलिस सुधार का यह क्षेत्र, मेरे उत्तरदायित्व क्षेत्र में आता है'', उन्हें अपने सहकर्मियों के सामने मुझसे मुँहतोड़ जवाब मिला। वे बस मन ही मन सुलगते रह गए और कुछ कहते नहीं बना। उन्होंने अब भी उन पुलिस सुधारों व परिवर्तनों के खिलाफ अपनी अनिच्छा प्रकट की जो कि पुलिस कार्रवाई का एक हिस्सा बन सकते थे। भारत के आजाद होने के बाद से, वे तथा उनके पूर्ववर्ती नेशनल पुलिस कमीशन की अनुशंसाओं व दूसरी रिपोर्टों के माध्यम से, अब तक अपनी चलाते आए थे।

दूसरे, शीर्ष न्यायालय के निर्देशों में से एक मेरे संगठन के लिए भी था कि एक निश्चित समय-सीमा (चार महीने) में उन अपराधों की सूची बनाकर कोई रिपोर्ट दी जाए, तो कि आंतरिक सुरक्षा के लिए खतरा बन सकते हैं तथा जिनकी सी. बी. आई. द्वारा छानबीन होनी चाहिए। इसके अनुसार, हमने राज्य पुलिस प्रतिनिधियों की मीटिंग बुलवाई। मीटिंग शुरू होने से ठीक पहले, उक्त गृह सचिव मेरे ऑफिस में केवल यही कहने के लिए पधारे, ''आप फैसले पर चर्चा नहीं करेंगी। सिर्फ वही हैं, जो कहा गया है।'' मैंने कहा, ''क्यों सर? यहाँ चुप रहने की क्या आवश्यकता है जबकि यह उसी आदेश की हिस्सा है, जिसे पुलिस सुधार निर्देशकों के साथ देखना चाहिए?'' इस पर उन्होंने उत्तर दिया, ''आप वही करें, जो कहा गया है।'' इस पर मैंने उनसे कुछ नहीं कहा, पर वही किया जो करना चाहिए था, हालांकि मैं असुरक्षा से घिरे उस व्यक्ति को देख सकती थी।

मामला यही खत्म नहीं हुआ। हमने न्यायालय के आदेशानुसार रिपोर्ट तैयार करके गृह मंत्रालय को भेज दी ताकि वहाँ से वकील के माध्यम से कोर्ट भेजी जा सके। कई तकाज़े भेजने के बाद भी हमें उनके ऑफिस से कोई जवाब नहीं मिला। समय-सीमा समाप्त होने को थी और रिपोर्ट जमा न कराना; कोर्ट की अवमानना कहला सकता था; तब हमने मंत्रालय के वकील से इस विषय में पूछा। उन्होंने कहा कि उन्हें मुख्यालय से इस विषय में कोई निर्देश नहीं मिले। हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नहीं क्या कि हम स्वयं सर्वोच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के पास रिपोर्ट जमा कराएँ। इसे भी सही नजरिए से नहीं लिया गया। ब्यूरो के सहकर्मियों ने मुझ तक यह संदेश पहुँचा दिया था।

मैंने एक मीटिंग में यह भी देखा कि किस तरह तत्कालीन संघीय गृह मंत्री शिवराज पाटिल के नेतृत्व में 'प्रमुख अधिकारियों का एक दल (मुंबई आतंकी युद्ध के फलस्वरूप त्यागपत्र देने को विवश किए गए) मनमाने तरीके से मॉडल पुलिस एक्ट, 2006 में दिए गए शब्दों के संशोधन कर रहा था (विस्तृत जानकारी के लिए www.prd.giv.in देखें।) मैं भी बी० पी० आर० डी० की डी० जी० पी० होने के नाते उस टीम की सदस्या थी, जिसे उस एक्ट को तैयार करने के लिए चुना गया था, मैं जानती थी कि कितने अथक प्रयासों के बल पर प्रत्येक

शब्द तथा अवधारणा को अंतिम प्रारूप दिया गया था।

कुछ स्वार्थी नियंत्रकों के कारण, पूरे देश में पुलिस सुधार असहाय अवस्था में हैं और रहेंगे, पुलिस सुधारों में उल्लेखनीय बदलाव आने की संभावना तभी है, जब नियंत्रक भी सही मायनों में उन्हें लागू करना चाहेंगे।

मेरी तरफ से तो यह पूरी तरह से तय था कि मैं इन विध्वंसकों के दल की नौकरी नहीं करूँगी और न ही उनके निर्देशानुसार चलूँगी, जो तंत्र को गुलाम बनाने पर तुले हैं। ऐसे लोग दूसरों को अपना गुलाम बनाने; उनकी पहल व हौंसले को कुचलने के सिवा, क्या नेतृत्व व दिशा दे सकते हैं। मैं ऐसे संदिग्ध इतिहास का हिस्सा नहीं बनना चाहती।

मैंने अपनी पुलिस सेवा के दौरान, सदा पूरी 'प्रतिबद्धता' के साथ काम किया कभी किसी के इशारों पर नहीं नाची, यही वजह थी कि वरिष्ठ मुझे अपनी नजरों से व यहाँ तक कि तंत्र से भी दूर रखना चाहते थे। प्राय: मुझे ऐसे स्थानों की नियुक्तियाँ दी गईं; जहां न तो कोई काम था और न ही उसकी संभावना। उन्होंने 'बैकयार्ड पोस्टिंग' के रूप में मुझे जेल और प्रशिक्षण कॉलेज में भी भेजा। वरिष्ठ मेरी रचनात्मकता को सामने लाने के अवसरों को छीनते रहे; इस तरह मैं जनता से बेहतर संप्रेषण कायम कर पाती, और पुलिस पहल व सुधार को कहीं प्रोत्साहित कर पाती लेकिन ऐसी रचनात्मकता उनके तंत्र के लिए खतरा बन जाती इसलिए मुझे दूर ही रखा गया। मुझे वह दिया गया, जिसे प्रभावशाली से जुड़े लोगों ने लेने से इंकार कर दिया था।)

जबकि हकीकत यह थी कि मुझे जिस भी ऑफिस में भेजा गया; मैं विभिन्न अभावों तथा कमियों से उबरने के लिए नए तथा व्यावहारिक समाधानों के साथ सामने आई; निंदकों को क्रोधित करने के लिए यही काफी था। उनके हिसाब से; मैंने जो भी किया वह केवल प्रचार पाने व उन्हें पीछे छोड़ने की ललक में किया। मैं मीडिया को अपने साथ शामिल करके, जनता को न सिर्फ समाज के विकास तथा कल्याण बल्कि देश की सुरक्षा में भी भागीदार बनाना चाहती थी। हम सब जानते हैं कि मीडिया की किसी से मित्रता नहीं होती। यदि वे लगातार मुझ पर रिपोर्टें देते थे तो ऐसा इसलिए था कि उन्हें कुछ नया मिल रहा था।

मेरी आखिरी नियुक्ति के दौरान भी यही हुआ। मुझे नई दिल्ली के बी० पी० आर० डी० का डायरेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। यह भारत सरकार की एकमात्र केंद्रीय एजेंसी है, जो पुलिस शोध को राष्ट्रीय स्तर पर आलोचनात्मक दृष्टि से देखती है। हालांकि यह ब्यूरो काफी हद तक खस्ताहाल तथा दुर्बल अवस्था में था।

वहाँ जाने पर, मैंने स्वयं देखा कि किस तरह ब्यूरो को उसके उचित संसाधनों तथा अधिकार से भी वंचित रखा जा रहा था। इसे अब तक प्रभावी तथा उत्पादक बनाने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किए गए थे। संगठन एक निष्क्रिय उपांग से ज्यादा नहीं था। स्टाफ सक्षम होने के बावजूद हाशिए पर था।

यहाँ शोध को कोई प्राथमिकता नहीं दी जाती थी। इसका मूल्य आँकने के लिए कभी कोई राष्ट्रीय अध्ययन नहीं किया गया था। वर्षों पहले, जो कुछ शोध हुए भी थे; उन्हें न तो

सार्वजनिक किया गया था और न ही सूचना तकनीक में तरक्की के बावजूद उन पर अमल किया गया था। ऐसे अध्ययनों की फाइलों, दराजों में पड़ी धूल फाँक रही थी। कई साधारण अध्ययनों को अकारण 'गोपनीय' करार दिया हुआ था। संगठन प्रमुख की वितीय शक्तियाँ भी काफी क्षीण थी क्योंकि धन का बेहद अभाव था। कार्यवाही इकाइयाँ लगभग टूटी हुई थीं, ब्यूरो की जेल इकाई को भी वही अधिकारी संभालते थे, जिन्हें दूसरे महत्त्वपूर्ण काम सौंपे जाने चाहिए थे।

संगठन का चार्टर (www.prd.giv.in देखें।) वास्तव में बाहरी लोगों को प्रभावी तथा महत्त्वाकांक्षी लग सकता है। मेरे लिए ये एक बड़ा उत्तरदायित्व था, जिसे संसाधनों के अभाव में पूरा करना था। ब्यूरो ऑफ पुलिस रिसर्च एंड डेवलेपमेंट का नाम अयथार्थ था। डी. जी. पी. का पद ठोस होने की बजाए प्रतीकात्मक था। वहाँ जाने के कुछ दिन बाद ही मैं ऑफिस की यथार्थ स्थिति को पहचान गई थी। उसके द्वारा दिए गए सभी सुझाव अधिकारियों की मेजों में सुप्तावस्था में पड़े मिलते।

मैंने गृह मंत्रालय व गृह सचिव को हर माह, एक पृष्ठ का नोट भेजने की पहल की, जिसमें बी. पी. आर. डी. द्वारा किए गए कार्यों व सरकार के साथ लंबित पड़े मुद्दों की चर्चा होती थी। मेरे द्वारा भेजा गया पहला नोट निम्नलिखित है:

इंटरऑफिस मैमोरैंडम

सेवा:- में संघीय गृह सचिव
भवदीय:- किरण बेदी, डी० जी०, बी० पी० आर० एंड० डी०
विषय:- संगठन की ओर से मासिक कार्य: अगस्त 2006
प्रतिलिपि:- आदरणीय गृह मंत्री

निम्नलिखित तथ्य अगस्त के प्रमुख कार्यों को प्रकट करते हैं।

1. प्रतिदिन सुबह 10 बजे इकाई प्रमुखों से विभागीय मीटिंग आयोजित की गईं ताकि व्यक्तिगत कर सकें, कार्यकारी जानकारी बाँट सके व वर्तमान तथा भावी कार्यों की प्राथमिकता तय कर सकें।
2. मासिक आधार पर पूरे विभाग की भी मीटिंग की गई ताकि कार्मिक व कल्याणकारी, मुद्दों का जायजा लिया जा सके, कार्य संभालने के तुरंत बाद ऐसी एक मीटिंग आयोजित हुई।
3. पुलिस आर्ट ड्राफ्ट बिल के लिए विशेषज्ञ सलाहकारों से प्रगति हुई। संगठन दल के अनेक सुझावों को सराहा गया, ड्राफ्ट में शामिल किया गया संगठन के सुझाव पर दो विशेषज्ञ (इनमें से एक विदेश से थे) बुलवाए गए। उनके योगदान से समिति के विषय तथा चर्चा में भी निखार आया।
4. कई नई पहल की गई तथा कई पहले से मौजूद अभ्यासों को सुधारा गया ताकि संगठन पूरी

योग्यता व उत्पादकता के साथ अपना मिशन पूरा कर सके।

a. संगठन की अद्यतन वेबसाइट पुलिस विभाग तथा सुधारात्मक सुविधाओं के प्रशिक्षण, शोध व विकास से जुड़े मुद्दों का केंद्र बन गई। इसके सदस्यों से फीडबैक ली गई। सेवा के हितों तथा मांगों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त सुधार भी लिए जाते रहेंगे।
b. संगठन कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, कल्याण व पदोन्नति से जुड़े मुद्दों को प्राथमिकता दी गई तथा तत्परता से समाधान किया गया।
c. बुलेटप्रूफ जैकेट, वर्ल्ड स्पेस रेडियो व सेना कल्याण हेतु प्रसारण, इलैक्ट्रॉनिक निगरानी तंत्र व फायरिंग रेंज आदि विषयों से जुड़ी परियोजनाओं पर ध्यान दिया गया।
d. ब्यूरो के तीन केंद्रीय जासूसी प्रशिक्षण स्कूलों की गतिविधियों का संयोजन किया गया। उनके प्रदर्शनों का पुनरावलोकन हुआ तथा भावी प्रगति के लिए कई नए कोर्स भी तैयार किए।
e. शोध से जुड़े कई मुद्दे पूरे हुए व लंबित मुद्दों पर चर्चा हुई। अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए वास्तविक योजना तैयार की जा रही है।
f. अक्टूबर में नियोजित कार्यशाला के रूप में तिहाड़ जेल को व्यावहारिक प्रशिक्षण का केंद्र मानते हुए, जेल की यात्राएँ व कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। जेल नीति ड्राफ्ट देश के सभी डी जी (जेल) तक पहुँचाया गया ताकि उन पर दिसंबर में होने वाली नेशनल कॉन्फ्रेंस में अंतिम चर्चा हो सके।
g. एम. एच. ए. को एक अलग नजर मद के रूप में, सुधारात्मक प्रशासन शोध के लिए, वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन का प्रस्ताव भेजा गया। दृश्य-श्रव्य प्रशिक्षण सामग्री के लिए भी अलग से राशि वितरण का प्रस्ताव भेजा गया।
h. ब्यूरो ने पिछली रिपोर्टों व अनुशंसाओं के अध्ययन से जाना कि संगठन के पुनर्निर्माण व एक विभाग के रूप में उद्देश्य पूर्ति के लिए; कई कमियाँ हैं; जिन्हें हम आने वाले सप्ताहों में संबोधित करेंगे।

मैं ऐसा नोट हर माह भेजती। किसी भी ऑफिस ने इन पर ध्यान नहीं दिया। कैसी उदासीनता थी। संभवत: इसमें एक संदेश भी छिपा था- वह था, ''तुम यह सब क्यों लिख रही हो? चुपचाप रहो व तंत्र जैसा है वैसा ही स्वीकार लो हमारे काम करने के तौर-तरीकों में बदलाव लाने की कोशिश मत करो।'' चूंकि मैं अपनी टेक से बाज नहीं आई इसलिए अक्सर वही वाक्य सुनने को मिलता है ''जब तुम इस तंत्र का एक हिस्सा नहीं बन सकतीं, तो बाहर क्यों नहीं निकल जाती?''

इन सबसे ऊपर, वही गृहमंत्री (जिन्होंने बाद में अपना पद खोया), जो कि ब्यूरो की खस्ता हालत से पूरी तरह से परिचित थे, उन्होंने मुझे निर्देश दिया कि उनके लिए पुलिस-विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए मुझे एक विस्तृत तथा पूर्णतया शोध पर आधारित परियोजना तैयार करनी होगी, ब्यूरो में उस समय चार्टर को पूरा करने योग्य साधनों तक का

अभाव था। (कहीं न कहीं मुझे इस प्रस्ताव में कोई स्वार्थ व राजनीतिक बू दिखाई दी और लगा कि संभवत: मुझे इसलिए यहाँ लाया गया था) जब मैंने परियोजना पर काम करने के लिए न्यूनतम अतिरिक्त साधनों की मांग की तो मेरे आग्रह को टाल दिया गया। मुझसे कहा गया कि उपलब्ध श्रमशक्ति से ही काम चलाओ। जब मैंने यह कहने का साहस दिखाया कि ब्यूरो इस काम के साथ न्याय नहीं कर पाएगा, क्योंकि उसकी उतनी क्षमता नहीं है; तो वे मेरे बॉस संघीय गृह सचिव से मुखातिब हुए व मदद माँगी। बॉस ने मुझे सहायता करने या अस्थायी अतिरिक्त मदद देने का आश्वासन देने की बजाए, मंत्री जी के काम को सहर्ष हामी भर दी। मीटिंग के बाद उन्होंने हम सबको अपने ऑफिस में बुलवाया। वहाँ, उन्होंने मनमाने ढंग से मेरे ब्यूरो अधिकारियों को वही काम करने के लिए कहा। मेरे आपत्ति जताने पर वे बोले, ''तुम चुप रहो'', मानो मैं कोई अड़ियल बच्चा थी, जो अपनी बारी आने से पहले बोल पड़ी। मैंने जवाब दिया, ''सर, मैं पूछ सकती हूँ क्यों? आपने गृहमंत्री को आश्वासन दिया है कि आप परियोजना पर ध्यान देंगे। कृपया मेरे अपर्याप्त साधनों को क्षीण न करें।''

उन्होंने मेरी सुनने की बजाए अपनी ही चलाई। ब्यूरो नेतृत्व से जुड़े कुछ लोग दोनों मीटिंगों में मौजूद थे। वे इन घटनाओं से क्षुब्ध हो उठे। उन्हें लगा कि काश वे उन घटनाओं के साक्षी न होते क्योंकि वे नहीं जानते थे कि हँसे या रोएँ या किसका पक्ष लें। वे दो अधिकारियों के बीच फँस गए थे।

किसी के दबाव में न आने व नाजायज तरीके से गुलामी न करने की मेरी आदत ही मुझे उलझाने के लिए काफी थी।

मैं आसानी से 'जी सर,' 'पक्का सर'; कहकर अपने ऊपर वालों को संतुष्ट कर सकती थी। फिर मैं उसी असंवेदनशीलता के साथ काम का भार अपने सहकर्मियों पर डाल देती। अध्ययन के नाम पर मैं पूरी दुनिया का व्यक्तिगत दौरा कर सकती थी (जैसा कि प्रलोभन भी दिया गया था) लेकिन मैंने अपने काम पर ही कंद्रित रहने का फैसला किया और अपने सहकर्मियों पर अतिरिक्त कार्यभार डालने से मना कर दिया।

मैंने नेशनल इन्फॉर्मेटिक्स सेंटर, नई दिल्ली की सहायता से बी पी आर डी की वेबसाइट तैयार कर संगठन को जनता के लिए खोल दिया, विविध विश्वविद्यालयों के रजिस्ट्रारों से नियमित मीटिंगें कीं ताकि वे अपने विभागों के माध्यम से पुलिस व जेल जैसे मुद्दों पर देशव्यापी शोध को प्रोत्साहन दे सकें- ब्यूरो को आधुनिक व विकसित बनाने की इस पहल को भी 'ऊपर वालों' ने 'तंत्र के लिए चुनौती' के रूप में लिया। ऐसा पहली बार हुआ (कुछ असफल प्रयासों के अतिरिक्त) कि भारत में शैक्षिक क्षेत्र को पुलिस स्टेशन के शोध से जोड़ने का प्रयास किया गया। इस कमी के कारण ही हम अब भी आपराधिक न्याय के क्षेत्र में उल्लेखनीय शोध का अभाव पाते हैं।

इस प्रक्रिया में, बी पी आर डी- को लाभ हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद पहली बार, भारत के योजना आयोग की ओर से, संगठन को नियोजित फंड प्राप्त हुए। इस उपलब्धि के लिए मैं 'हम लोगों' (मेरे सहकर्मी राकेश जारूहर डायरेक्टर, प्रशिक्षण तथा मैं स्वयं) की डॉ. मनटेक सिंह

आहलूवालिया, भारतीय योजना आयोग के उपाध्यक्ष 'डिप्टी चेयरमैन' से हुई भेंट व नए संघीय गृह सचिव, मधुकर गुप्ता (एक प्रतिष्ठित पुलिस अधिकारी के पुत्र, जिसकी सेवाओं से पुलिस सुधार के क्षेत्र में काफी आशाएँ हैं) के समर्थन को धन्यवाद देना चाहूँगी। आशा करती हूँ कि इस धनराशि से संगठन के कई भावी लक्ष्यों की पूर्ति संभव होगी।

मैंने तत्कालीन गृहमंत्री शिवराज पाटिल से मुलाकात का समय माँगा। मेरे आग्रह को समझते हुए, मुझे जल्द ही यह मौका दे दिया गया।

गृह मंत्री से मिलने पर मैंने उन्हें स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति (वी० आर० एस०) के लिए आवेदन दे दिया, जो कि निम्नलिखित था:

प्रिय सर,

आई. पी. एस. में पिछले 35 वर्षों से अंतहीन जोश व प्रतिबद्धता से काम करने के बाद, मैं स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति चाहती हूँ, तभी मैं अपने शैक्षिक, सृजनशील व एन. जी. ओ. हितों को पूरा समय दे पाऊँगी।

मैं आपको आश्वस्त कर सकती हूँ कि ऑफिस से बाहर रहने पर भी, इस सेवा के प्रति मेरी प्रतिबद्धता, आदर व समर्थन बरकरार रहेंगे।

आशा करती हूँ कि आप शीघ्र ही मेरा प्रार्थना-पत्र स्वीकार लेंगे।

भवदीया
डॉ० किरण बेदी

प्रार्थना-पत्र पर एक सरसरी नजर डालने के बाद, उन्होंने उसे एक ओर रख दिया और अपनी राम कहानी सुनाने लगे।

वे बताने लगे कि किस तरह पक्ष तथा विपक्ष दोनों दलों ने मिलकर उन्हें अयोग्य व असफल ठहरा दिया और वे किस तरह एक दुष्चक्र में फँस गए थे।

मैं समझ गई कि अपने फैसले पर जोर डालने का उचित समय नहीं था। उन्होंने यह भी कहा दिल्ली पुलिस कमिश्नर वाले मामले में भी फैसला उनके हाथ में नहीं था। मुझे भूला नहीं था कि वे यह बात पहले भी कह चुके थे।

मेरे मन में विचार आया कि मुझे रुकना चाहिए। मैंने गृहमंत्री को उनके समय के लिए धन्यवाद दिया और कहा, ''सर, मैं काम पर लौटूंगी।''

ज्योंही मैं नार्थ ब्लॉक से बाहर आई। जाने कहाँ से मीडिया वालों ने घेर लिया। शायद, वे भवन से मेरे बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। शायद उन्हें कहीं से ये बात पता चल गई थी उन्हें लगा कि दिल्ली पुलिस कमिश्नर वाले फैसले पर फिर से विचार हो रहा है। उन्होंने मुझसे पूछा कि वास्तव में हुआ क्या। मैंने उत्तर दिया, ''मैं काम पर लौट रही हूँ।'' (किस्मत से,

उन्होंने यह नहीं पूछा कि कब तक, उसका उत्तर केवल मैं ही जानती थी।)

मैं अपने कुछ सहकर्मियों के साथ संगठन के वार्षिकोत्सव की तैयारियों में लग गई, जो कि आने ही वाला था। हमने कुछ रोचक प्रबंध किए थे, जो शायद पहली बार होने जा रहे थे।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे तो नियंत्रकों को लगा कि मैंने हालात को स्वीकार कर लिया है, वे मेरे संगठन को और ज्यादा काम भेजने लगे; जैसे पुलिस मिशन की रिपोर्टें तैयार करना; यह नीरस कार्य ऑफिस की मेजें भरने से ज्यादा नहीं था।

अब मैंने जाने का फैसला कर लिया है, लेकिन अपनी शर्तों पर...

मैंने अपने काग़ज तैयार किए व स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के लिए गृह सचिव को प्रार्थना-पत्र भेज दिया; यह सामान्य पत्राचार से बिना कोई मुलाकात का समय लिए, भेजा गया।

मैंने वार्षिकोत्सव से अगले दिन को सेवा निवृत्ति के लिए चुना ताकि ब्यूरो के नाम एक अंतिम उत्तरदायित्व पूरा कर सकूँ।

अंततः अपनी नौकरी से विदा लेने का समय आ ही पहुँचा। लेकिन केवल इसी जन्म में, यदि मेरा पुनर्जन्म हुआ और यही मेरे माता-पिता बने तो मैं फिर से पूरे दृढ़ संकल्प के साथ लौटूँगी। मैं भारत के गृह मंत्री के रूप में भारतीय पुलिस का नेतृत्व करूँगी। यही वो उत्तरदायित्वपूर्ण ध्यान है, जहाँ से पुलिस, कैद व आपराधिक न्याय के सुधार उत्पन्न होते हैं।

तब भारत एक विशालतम व सुरक्षित प्रजातंत्र का ऐसा उदाहरण होगा जो किसी भी स्तर या लिंग के भेदभाव के बिना, सबको सुरक्षा का आश्वासन देगा।

37

गांधीवादी तरीकाः यदि मैं पुलिस कमिश्नर होती...

''सर, आप मुझे 'ब्यूरो ऑफ पुलिस रिसर्च एंड डेवलपमेंट' में क्यों भेज रहे हैं, जबकि मैं दिल्ली को 'नागरिक पुलिस' के लिए तैयार कर रही हूँ,''

मैंने गृह मंत्री शिवराज पाटिल से उनके निवास स्थान पर भेंट के दौरान यह पूछा। मैंने कहा, ''सर, वर्तमान दिल्ली पुलिस कमिश्नर जल्द ही अपना कार्यकाल समाप्त करने वाले हैं। आप मुझे यहीं क्यों नहीं रहने देते।'' (मैं तब सिविल डिफेंस तथा होम गार्डस की डी. जी. थी।)

''ताकि मैं सिविल डिफेंस व होम गार्ड के हजारों युवाओं को दिल्ली पुलिस की मजबूत बाँहें बनाने का लक्ष्य पूरा कर सकूँ। मंत्री महोदय चुप्पी साधे रहे।''

मैंने आग्रह किया:

''मैं पुलिस सुधार द्वारा तीन महीने में उन्हें प्रशिक्षित कर दूँगी। वे आपका नाम रोशन करेंगे। दिल्ली महानगर पुलिस के लिए एक मॉडल शहर बन सकती है।''

अंत में वे बोले:

''मैंने तय नहीं किया कि अगला पुलिस कमिश्नर कौन होगा।''

मुझे उत्तर से थोड़ी हैरानी तो हुई पर मैंने अपनी बात जारी रखी, ''सर, आप तो गृह मंत्री हैं। यदि आप तय नहीं कर सकते तो मेरा मामला यहीं खत्म होता है लेकिन यदि मुझे अनदेखा किया गया तो मैं चली जाऊँगी।''

उन्होंने कुछ नहीं कहा।

मैं उनके कमरे से बाहर आ गई। मुझे यह देखकर हैरानी हुई कि उनके निवास स्थान पर ही, मुझे कई लोग मिले, जो बोले कि वे मुझे पुलिस कमिश्नर के रूप में देखने के लिए प्रतीक्षारत थे उन्होंने इसी उत्सुकता में कहा, ''मैडम आप कृपया इस सिलसिले में श्रीमती 'ग' (श्रीमती सोनिया गांधी, कांग्रेस पार्टी अध्यक्ष तथा यू. पी. ए. सरकार की सभापति) से मिलें। हमारे मंत्री जी काफी कमजोर हैं। वे स्वयं कोई फैसला नहीं करेंगे।''

मैंने उनसे कहा कि मैं नियुक्ति की प्रार्थना लेकर किसी भी राजनीतिक अधिकारी के पास नहीं जाऊंगी।

यद्यपि, कई तरह की अफवाहें प्रचारित होती रहीं। मेरी सोनिया गांधी जी से भेंट की खबर भी फैली। दरअसल कुछ लोग वास्तव में, मुझे घुटने मोड़ कर हाथ जोड़े, नियुक्ति की भीख माँगते देखना चाहते थे।

जब मैं इन राजनीतिक गलियारों से दूर थी तो मुझे एक राजनीतिक दल की ओर से संसद का चुनाव लड़ने का प्रस्ताव आया। मैंने विनीत भाव से एक एस. एम. एस. में अपना आभार व्यक्त करके 'न' कह दी व लिखा कि मैं केवल नए पुलिस कमिश्नर की नियुक्ति की प्रतीक्षा करना चाहती थी।

मैंने अपने वचन का अक्षरश: पालन किया, अपनी सोच पर डटी रही और वही घटा, जिसका मुझे पहले ही आभास हो गया था। मुझे दिल्ली का पुलिस कमिश्नर नियुक्त नहीं किया गया। मुझसे दो साल कनिष्ठ अधिकारी को यह पद दे दिया गया। इस नियुक्ति की घोषणा को रात के खाने के बाद, काफी देर से प्रसारित किया गया ताकि समाचार को दबाया जा सके।

मेरे स्वाभिमान, न्याय के सहज भाव तथा विचारों ने प्रेरित किया कि मैं राह में आने वाली इन सब बाधाओं से परे हटकर, अपने समय की स्वयं मालिक बन जाऊँ।

दूसरे शब्दों में, मैंने स्वयं ही आगे बढ़ने का फैसला ले लिया। सरकारी सेवा से छूटते ही मैं इन सभी जंजालों से भी छूट गई। मैंने सरकार द्वारा आबंटित बंगला छोड़ दिया, जिसमें आगे की ओर सुव्यवस्थित लॉन तथा पिछले बरामदे में सब्जियाँ उगाई गई थीं। बाहरी लॉन, टेनिस कोर्ट के आकार का था। यह घर 'लुट्यन्स' दिल्ली में था, जिसमें स्टाफ क्वार्टर्स भी थे। यह प्रेजीडेंशियल एस्टेट से कुछ मीटर की दूरी पर था तथा दिल्ली के बेहतरीन सार्वजनिक पार्कों में से एक तालकटोरा गार्डन के साथ, इसकी चारदीवारी लगती थी। यहाँ मैं और मेरी मम्मी, कभी-कभी दिन में दो बार भी चहलकदमी करने जाते थे। मैंने ड्राइवर सहित कार व टेलीफोन कनैक्शनों को भी अलविदा कह दिया।

समय से पूर्व सेवा निवृत्ति चुनने पर- (जबकि दो साल की नौकरी शेष थी), मुझसे लगातार पूछा जाता रहा कि यदि मैं पुलिस कमिश्नर होती तो सुरक्षा के इतने गंभीर मसलों के बीच, शहर में पुलिस व्यवस्था कैसे कायम करती।

मैं लगातार कहती रही कि मुझे हर मोर्चे पर कड़ी मेहनत करनी पड़ती ताकि संपूर्ण वास्तविक नतीजे हाथ आ सकें। शहर की पुलिस व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन लाना पड़ता। कुछ भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता था; वे अपराध निवारण नीतियां, अपराध की छानबीन पहचान की प्रक्रिया की गुणवत्ता, कानून तथा व्यवस्था प्रबंधन, अधिकतम बुद्धिमत्ता के माध्यम से आतंकवाद निवारण पुलिस में जनता का भरोसा फिर से पैदा करना, बेहतर प्रशिक्षण देना हो या कुल यातायात प्रबंधन तथा कठोर कानूनों के बिना सड़क सुरक्षा की व्यवस्था हो।

द वीक पत्रिका के कवर पर किरण बेदी

द वीक पत्रिका द्वारा किए गए एक सर्वे में भारत की प्रेरणादायक महिलाओं की सूची में

सबसे ऊँचा स्थान किरण बेदी को मिला (सितम्बर 2002)

संयुक्त राष्ट्र के पीस कीपिंग मिशन के दौरान क्षेत्रीय दौरे पर किरण बेदी

अपने नवज्योति नशामुक्ति केन्द्र में नशे की आदत से छुटकारा पाने
की कोशिश करते लोगों से बातचीत करते हुए

नवज्योति गली स्कूल

इण्डिया विजन फाउण्डेशन : चिल्ड्रन ऑफ वैल्यूरेबल फैमलीज□ (CVF) नामक प्रोजेक्ट में सफल बच्चों के छात्रवृत्ति वितरण समारोह के दौरान किरण बेदी।

दिल्ली पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र में विपश्यना के दौरान किरण बेदी

तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन एवं उनकी पत्नी हिलेरी क्लिंटन के साथ
वाशिंगटन में नेशनल प्रेयर ब्रेकफास्ट मीटिंग के दौरान (फरवरी 1995)

अपनी फोर्स के साथ किरण बेदी (चंडीग□□)

अपनी बेबसाइट kiranbedi.com का उद्घाटन आध्यात्मिक गुरु दलाई लामा से करवाते हुए

मैं अब-तक उपेक्षित क्षेत्रों को भी संबोधित करती; पुलिस कल्याण, नेतृत्व का निखार, उचित प्रबंधन, अभ्यास व मानव संसाधन नीतियां, तंत्र निर्माण व निरीक्षण तंत्र; यह कार्य आंतरिक चौकसी व सिविल सोसाइटी के सहयोग से संभव होता, जिनमें शैक्षिक सुधार व शोध के लिए पुलिस की भी पहल होती।

सबसे ऊपर, मैं नेतृत्व की मिसाल कायम करती। मैं कड़ी मेहनत करती तथा प्रभावी तरीके से वे सब कार्य पहले स्वयं करती, जिनकी मैं दूसरों से अपेक्षा रखती।

दिल्ली पुलिस एक ऐसी आदर्श संस्था बन जाती जिसमें न केवल नवागंतुकों बल्कि वरिष्ठों के माध्यम से बहुत कुछ सीखा जाता। मैं जमीन से जुड़े पदों के लिए ब्रेनस्ट्रोमिंग सत्र तथा कार्यशालाएँ आयोजित करवाती। हमारे तंत्र में प्राय: कुछ पदों को सिर्फ उद्देश्यों का पालन करना होता है, उनके अपने विचारों या राय की कोई अहमियत नहीं होती। यदि परिवर्तन लाना हो, तो ऐसे पदों से प्राप्त राय तथा विचारों को भी पूरा मान दिया जाना चाहिए। निचले स्तर के साथ संवाद स्थापित करने के बाद, वरिष्ठों द्वारा लिए गए फैसले गुणवत्ता के लिहाज से काफी अलग होते। भारत सरकार में ऐसा नीति परिवर्तन अब तक नहीं हुआ। हालांकि मैंने इसे व्यक्तिगत रूप से देखा जाना व अभ्यास किया है तथा इसके सकारात्मक नतीजे भी देखे हैं;

फिर चाहे वह जिला स्तर पर अपराध निवारण व रोकथाम हो या कानून तथा व्यवस्था, यातायात हो या पुलिस प्रशिक्षण, जेल प्रबंधन हो या सामान्य प्रशासन।

कार्यवाही पर आधारित व्यावहारिक नीतियों के बेहतर नतीजे सामने आते। फिर सबके लिए कार्य व लक्ष्य सुनिश्चित होते, नियमित आकलन उन्हें पारदर्शी बना देते, जिससे टीम-भावना पर आधारित जवाब देही व पारदर्शिता में वृद्धि होती। शैक्षिक शोधों के प्रकाशन से वे प्रोत्साहित भी होते।

ऐसे सत्रों तथा कार्यशालाओं से वरिष्ठों को बिना किसी अपवाद के उपयोगी फीड बैक मिलती, पुलिस कर्मी सभी स्तरों पर ज्ञान अर्जित कर पाते, अपने वरिष्ठों के अनुभवों से लाभ उठाते। सभी में अपनी नौकरी के प्रति वचनबद्धता का भाव उदित होता।

यह सब मिलाकर, मेरे लिए पुलिस का गांधीवादी रूप बन जाता।

जब सब कुछ सामूहिक बोध, ईमानदारी व राष्ट्रीय सेवा की भावना पर आधारित होगा: तो किसी भी आधार पर भेदभाव कैसे हो सकता है? अमीरों-गरीबों, सुविधाभोगियों व दुर्बल-शोषित लोगों के लिए अलग-अलग नियम-कानून क्यों होते? क्या सभी कानून की नजरों में एक नहीं माने जाते? कानून उनकी रक्षा करते हुए कायम न रहता। किसी भी वर्ग से नकारात्मक हस्तक्षेप कैसे आता?

इससे कानून व नियम-कायदों के लिए सम्मान का भाव पैदा न होता? क्या ऐसे विकास से सुरक्षा की भावना में विस्तार न होता? लोग पुलिस के और पास न आते। बुद्धिमत्ता का सशक्तिकरण न होता? अपराधों की रोकथाम न होती? अपराधों की पहचानों में पहले से सुधार न होता? सही मायनों में पुलिस का स्वरूप सामने न आता।

क्या हम इसे गांधीवादी मॉडल न कहते? ऐसा मॉडल या नमूना; सादा, पारदर्शी, निष्पक्ष, निर्भीक, सहयोगी, सत्य का समर्थक, भेदभाव न करने वाला करुणामयी तथा अपराधियों को दंड देने वाला होता।

जब ऐसे मॉडल को उचित स्थान मिलता; तो सकारात्मक विकास भी सामने आते। मिसाल के तौर पर, पुलिस व लोगों के बीच आत्मीयता बढ़ती, आपसी भरोसा पैदा होता। पुलिस वालों के बीच किसी भी कमी या अधूरेपन की चर्चा होने पर, वे भविष्य में गलती के प्रति सावधान रहते। 'यहाँ छिपने-छिपाने लायक कोई गुंजाइश नहीं होती। 'लोग अपनी सुरक्षा तथा कल्याण में पूरी भागीदारी रखते। 'कुछ विशेष नागरिकों को पहचान कर, मामले सुलझाने की जिम्मेदारी सौंपी जाती, जिनसे समाज में शांति स्थापित करने में सहायता मिलती। 'जहाँ भी संभव होता, संसाधन आधार को विस्तृत रूप देने के लिए, महिलाओं, छात्रों, वरिष्ठ नागरिकों व अन्य स्वयंसेवकों की मदद ली जाती।

यह सब जानने के बाद भी, कोई भी पूछ सकता है: 'फिर भ्रष्टाचार व दूसरी बुराइयों को पनपने के लिए स्थान ही कहाँ बचता? जब पुलिस व जनता, दोनों ही चौकन्ने होते, तो आतंकवादियों को कौन शरण देता? 'नागरिक संदेहास्पद वस्तु या व्यक्ति की रिपोर्ट क्यों न

करती? 'महिलाएँ निर्भीकता से अपने खिलाफ हुई हिंसा की रिपोर्ट क्यों न करतीं? 'कोई भी चुपचाप अन्याय क्यों सहता? किसी के दबाव में आकर झूठी गिरफ्तारियां क्यों होतीं? 'पुलिस शिकायतें दर्ज करके, किसी का भी पक्ष न लेते हुए, कार्रवाई क्यों न करती? वर्तमान में गरीब तबके की शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। घटनाएँ रिकॉर्ड करने लिए आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल क्यों न होता? पुलिस भी आपराधिक मामलों में इन उपकरणों का प्रयोग क्यों नहीं करती? (वर्तमान में, पुलिस के सामने दिए गए बयान को कोर्ट में स्वीकृति नहीं मिलती)।

यदि सरकारी फंड पर्याप्त न होते तो नागरिक समाज भी वांछित उपकरणों की सहायता में हाथ बँटा सकता था। कॉर्पोरेट की मदद भी ले सकते थे क्योंकि अपराध का स्तर घटने से, वे भी लाभान्वित होते। ऐसी धनराशि उनके सामाजिक उत्तरदायित्व का एक हिस्सा होती।

मेरे लिए ये सभी पहलू गांधीवादी हैं तथा संभव भी हैं। मैं कोई अत्यधिक आदर्शवादी नहीं, सामूहिक नेतृत्व दृढ़ संकल्प से ये सभी उपर्युक्त उद्देश्य पूरे हो सकते हैं।

मैंने पहले अपने इन विचारों व योजनाओं को जिला स्तर पर फलीभूत करने में सफलता भी पाई है। चंडीगढ़ आई. 'जी. पी. के रूप में (अध्याय 29 देखें) पुलिस कमिश्नर का पद मुझे व मेरी टीम को, पूरी दिल्ली को संभालने लायक सशक्त बना देना।

मैं एक भी क्षण गँवाए बिना, आधारशिला तैयार कर देती। पुलिस बीट पद्धति व बीट बॉक्स के तंत्र को फिर से चालू कर दिया जाता, जो कि अभी इतनी सुचारू अवस्था में नहीं है। (आप दिल्ली पुलिस की वेबसाइट से उचित आँकड़े देख सकते हैं) इस एक कदम से दिल्ली पूरी तरह से हमारी नजरों में होती। इसका मतलब होता कि एक-एक इंच का क्षेत्र, थालियों में काम कर रहे वीर पुलिस अधिकारियों के हाथ में होता और वे लोगों का भरोसा तथा सहयोग पाने के लिए कार्यरत रहते। इससे अपराध होने से पूर्व ही उसकी रोकथाम में काफी मदद मिल जाती। नियंत्रण द्वारा पुलिस व्यवस्था से सशक्तिकरण द्वारा पुलिस व्यवस्था का भारी परिवर्तन होता। ऐसा सुव्यवस्थित तथा प्रेरित संगठन सदैव किसी भी तरह के आतंकी हमले की प्रतिक्रिया या प्रत्युत्तर देने के लिए तत्पर रहता।

इसी आधार पर पुलिस जनता सांझेदारी की नींव पड़ती, जिससे दोनों पक्षों के संप्रेषण में सुधार होता। इससे पुलिस के भीतर पदानुक्रम की कृत्रिम दीवारें भी गिर जातीं।

पुलिसिंग का कार्यसंपादन मॉडल-- पारंपरिक तरीका

पुलिस कमिश्नर
स्पेशल पुलिस कमिश्नर्स
ज्वाइंट पुलिस कमिश्नर्स
ज्वाइंट पुलिस कमिश्नर्स
एडीशनल पुलिस कमिश्नर्स
एडीशनल पुलिस कमिश्नर्स
डिप्टी पुलिस कमिश्नर्स
डिप्टी पुलिस कमिश्नर्स
डिप्टी पुलिस कमिश्नर्स
एडीशनल डिप्टी पुलिस कमिश्नर्स
एडीशनल डिप्टी पुलिस कमिश्नर्स
एडीशनल डिप्टी पुलिस कमिश्नर्स
असिस्टेंट पुलिस कमिश्नर्स
असिस्टेंट पुलिस कमिश्नर्स
असिस्टेंट पुलिस कमिश्नर्स
असिस्टेंट पुलिस कमिश्नर्स
इंस्पैक्टर्स
इंस्पैक्टर्स
इंस्पैक्टर्स
इंस्पैक्टर्स
इंस्पैक्टर्स
सब-इंस्पैक्टर्स
सब-इंस्पैक्टर्स
सब-इंस्पैक्टर्स
सब-इंस्पैक्टर्स
सब-इंस्पैक्टर्स
असिस्टेंट सब-इंस्पैक्टर्स
असिस्टेंट सब-इंस्पैक्टर्स
असिस्टेंट सब-इंस्पैक्टर्स
असिस्टेंट सब-इंस्पैक्टर्स
असिस्टेंट सब-इंस्पैक्टर्स
हैड कांस्टेबल
हैड कांस्टेबल
हैड कांस्टेबल
हैड कांस्टेबल
कांस्टेबल
कांस्टेबल
कांस्टेबल
कांस्टेबल
कांस्टेबल
कांस्टेबल
= आम आदमी
श्रेणीबद्ध, अधिकारवादी, अगम्य

पुलिसिंग का रूपांतरित मॉडल = गांधीवादी तरीका
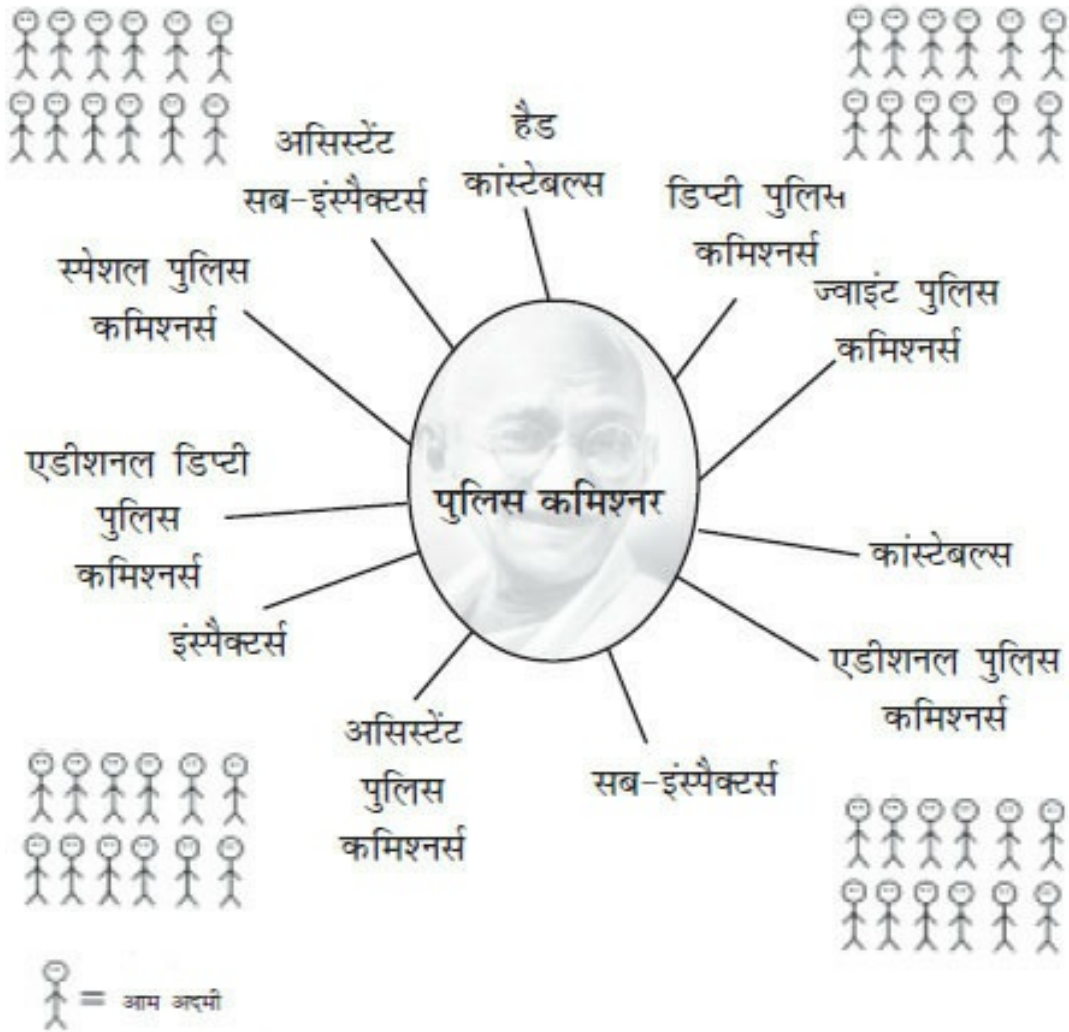
सक्रियात्मक, सामूहिक व गम्य

ऐसे सकारात्मक विकासों के बल पर, पुलिस व जनता तथा सेवा के विभिन्न पदों के बीच भी आपसी भरोसा पैदा होता। वीर पद्धति आश्वस्त करती है कि लोगों की शिकायतें सुनी जा रही हैं, पुलिस तथा नागरिकों के बीच संवाद स्थापित हो रहा है। यह पद्धति पुलिस को अपराधों के रोकथाम की शक्ति भी प्रदान करती है।

मैं इकाइयों में नियोजित या आकस्मिक दौरे करती, उनकी राय या सुझाव लेती; फिर उनके विश्लेषण के बाद मुद्दे सुलझाती व उन्हें समस्याएँ बनने ही न देती। मैं किसी भी एक इकाई में, सुबह नौ बजे ही पहुँच जाती, तथा ग्राउंड ड्यूटी से जुड़े पुलिस अधिकारियों को प्रभावी रूप से

अपना कर्तव्य निभाने के लिए प्रेरित करती। उनके अच्छे कार्य के लिए, उन्हें वहीं पुरस्कृत किया जाता। मैं अपनी पिछली नियुक्तियों में ऐसा करती आई हूँ और इसके बेहतरीन नतीजे भी पाए हैं। जहाँ रिपोर्ट से ज्यादा काम करने पर बल दिया जाता था।

दिल्ली में यातायात प्रबंधन, मेरी प्रमुख प्राथमिकता होता, क्योंकि अस्त-व्यस्त तथा खतरनाक वाहन चालन का सब पर असर पड़ता है। रात को सड़कों पर अधिक से अधिक यातायात सिपाही होते क्योंकि उसी समय कानून उल्लंघन की घटनाएं ज्यादा होती हैं। वे अपना कर्तव्य निभाने, यातायात को नियमित करते, सड़क अनुशासन कायम करने वे ट्रैफिक जाम पर काबू पाने के लिए आंतरिक रूप से प्रेरित होते। प्रमुख सड़कों तथा बाजारों में, अधिक से अधिक संख्या में सी. सी. टीवी कैमरे लगवाए जाते, जिसके लिए सरकारी अनुदान की संभव सहायता ली जाती। यदि और राशि की आवश्यकता होती तो मैं विभिन्न कॉर्पोरेट घरानों व मार्किट एसोसिएशन से उन्हें प्रायोजित करने को कहती। इस तरह निरंतर इलैक्ट्रॉनिक चौकसी के कारण अधिक से अधिक लोग 'स्कैनर' की पकड़ में आ जाते और रात को सड़कों पर सुरक्षा बढ़ जाती। सभी सबूत इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों पर आधारित होने से शिकायतों को अनदेखा करने की प्रवृत्ति छूट जाती। शहर पुलिस कमिश्नर व वरिष्ठ अधिकारियों को, अधिक से अधिक, अपने नीचे पाता।

जहाँ तक महिलाओं की सुरक्षा का सवाल था, तो पानी में काम करने वाली महिलाओं के नियोक्ताओं को एक निश्चित समय सीमा दी जाती कि वे महिला यात्रियों वाले वाहनों को कंपनी के मुख्यालय में लगे रेडियो सिस्टम से जोड़ें, इस तरह से वाहन की उपयुक्त स्थिति पता चल जाती। इस तरह उक्त महिला यात्री, चालक के नहीं बल्कि मुख्यालय के संपर्क में रहती (ये निजी वाहनों पर भी लागू होता) मैं महिला एन. जी. ओ. को भी प्रोत्साहित करती कि वे पुलिस थानों में जाकर, लोगों को पुलिस कार्रवाई के विविध पहलुओं की जानकारी दें। कुछ ही सप्ताह में, हम सिविल डिफेंस, होम गार्ड, एनसीसी कैडट व भूतपूर्व अधिकारियों को नागरिक-पुलिस की इस अवधारणा का परिचय दे देते। हाईस्कूल व कॉलेज के छात्रों को शोध व व्यावहारिकता शिक्षा के साथ; पेट्रोलिंग व सुरक्षा स्थापना के क्षेत्र में इंटर्नशिप के लिए प्रोत्साहित किया जाता। इस तरह, हम कुछ ही समय में तंत्र को इतना खोल देते कि पुलिस तथा जनता के बीच की गहरी खाई पर जाती।

तब तक, दोतरफा सूचना का प्रवाह भी निरंतर हो जाता। पुलिस-जनता मिल कर अपराध की पहचान व रोकथाम में सहयोग देते। लोगों में कानून के लिए डर के साथ-साथ आदर भी विकसित होता। अपराध को दर्ज कराने में कोई हिचक न रहती। कुछ भी माह में राजधानी, पहले से कहीं अधिक सुरक्षित स्थान हो जाती। सामूहिक, सुधारात्मक व सामुदायिक प्रयासों के बल पर, जनता भी सुरक्षा-व्यवस्था में बराबर की हिस्सेदार होती।

पूछताछ के मोर्चे पर भी पुलिस गांधीवादी नीति अपनाती। सब कुछ सत्य पर आधारित होता। तथ्य व बयान, वीडियो रिकॉर्ड होते ताकि कोई चाहे तो उन्हें देख सके हालांकि ऐसा अभी तक होता नहीं है। (आधुनिक तकनीकों का भरपूर इस्तेमाल होता। जज के सामने दिए गए बयानों

को कैमकॉर्डर में रिकॉर्ड किया जाता। सभी साक्ष्य पूरी सत्यता से एकत्र किए जाते), अदालतों को भी एहसास होता कि पुलिस किसी एक पक्ष का नहीं बल्कि सच का साथ देती है। वर्तमान की तुलना में दोषसिद्धि दर काफी ज्यादा होती, (वर्तमान में यह बमुश्किल 4 प्रतिशत है।)

उपयुक्त रूप से पोषित व व्यवस्थित बीट पद्धति तथा सुचारू पुलिस व्यवस्था के कारण अपराध दर घटती। सुधारात्मक व 'क्लोज़-वाच' पद्धति के कारण बार-बार अपराध करने वाले व्यावसायिक अपराधियों की अपराध दर भी घटती।

इस पद्धति से आतंकवादी हमलों की संभावना घटती। चूँकि जनता का भरोसा पुलिस के साथ होता इसलिए इंटैलिजेंस द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर पड़ताल में देर न लगती। अपराधियों को कहीं भी आसानी से शरण न मिलती। सेफ्टी ड्रिल, तत्काल प्रतिक्रिया दल के साथ नियमित प्रशिक्षण व जनता के सहयोग से, दिल्ली को सुरक्षित रखा जाता।

दिल्ली वास्तव में एक मॉडल बन जाती, संभवत: पुलिस व्यवस्था का एक सच्चा गांधीवादी मॉडल।

अपनी पैंतीस वर्षीय पुलिस सेवा में मैंने अपने वरिष्ठों के लिए नहीं बल्कि सेवा के लिए काम किया है यानी मदद चाहने वाली जनता के लिए। इसलिए, अब भीतर ही भीतर से विद्रोह उठने लगा था कि मैं किसके लिए काम कर रही थी? उन राजनेताओं व नौकरशाहों के लिए जिनका एकमात्र उद्देश्य ही स्व-स्थायीकरण है। मैं ऐसे लोगों के साथ काम कैसे कर सकती थी? मेरे लिए चुनाव स्पष्ट था, जो भीतर ही भीतर पलता आ रहा था। मैंने स्वयं को आजाद करने का फैसला ले लिया ताकि लोगों की सेवा कर सकूँ।

विडंबना तो देखिए, वही गृहमंत्री, जिन्होंने मुझसे कहा था कि पुलिस कमिश्नर की नियुक्ति उनके हाथ में नहीं थी, उन्हें उनकी नौकरी से निकाल दिया गया। उनका पाखंड व अक्षमता छिपी नहीं रह सकी, ऐसा कहने के लिए क्षमा चाहूँगी; यह भेद उनके डिजाइनर कपड़े भी नहीं छिपा सके। उन्हें अंतत: कीमत चुकानी पड़ी। त्रासदी तो यह है कि आतंकवादी हमलों में मरे व्यक्तियों के नाम पर हमने भी अप्राप्य क्षति उठाई। हमारी मध्ययुगीन, पुलिस व्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय रूप से सबके सामने बेपर्दा हो गई।

38

समय का सदुपयोगः सेवा के लिए धनोपार्जन

मैंने अपनी शर्तों पर काम करने के लिए 26 दिसंबर, 2007 को भारतीय पुलिस सेवा से सेवानिवृत्ति ले ली। एक ही सप्ताह के भीतर मैंने एक ई-पोर्टल लांच की, जो मैं जाने कब से चाहती थी; 'www.saferindia.com' इसमें उन लोगों की शिकायतें दर्ज होती हैं, जो पुलिस के पास शिकायत दर्ज कराने जाते तो हैं, पर किसी वजह से या पुलिस की अनिच्छा के कारण संभव नहीं हो पाता। भारतीय पुलिस तंत्र में शिकायत व 'एफ आई आर' दर्ज कराना आसान नहीं होता। 'ई-प्रोजेक्ट' ने शिकायत दर्ज कराने का प्रामाणिक व नया तरीका प्रस्तुत किया, यह जरूरत जाने कब से बनी हुई थी।

ई-पोर्टल पुलिस पर दबाव समूह

कुछ लोगों के लिए 24 घंटे काफी नहीं होते। डा० किरण बेदी, एक जानी-मानी पुलिस अधिकारी, वास्तव में एक दिन में 48 घंटे का काम करने का प्रयास करती हैं। दिल्ली पुलिस कमिश्नर का पद न मिलने के बाद उन्होंने स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति ले ली। ये आई.पी.एस. अधिकारी कहती हैं - 'मुझे नहीं लगता कि कम से कम थोड़े समय के लिए ही कोई महिला शीर्ष तक पहुंच पाएगी।''

तो बेदी अब क्या कर ही हैं? इस समय में ऐसा दिन चाहती हूँ जिसमें 48 घंटे हों। वे कहती हैं कि इस रूप में उनकी पहली प्राथमिकता यही है कि वे पुलिस सुधारों पर काम जारी रख सकें। इस संदर्भ में, उन्होंने 3 जनवरी, 2008 को एक ई. पोर्टल 'www.saferindia.com' लांच किया, जिसमें वे लोग शिकायत दर्ज करा सकते हैं, जिनकी शिकायत पुलिस ने लेने से इंकार कर दिया हो। ये उनकी एन.जी.ओ. 'इंडिया विज़न फाउण्डेशन' की ही एक परियोजना है। बेदी कहती हैं - 96 प्रतिशत अपराध तो दर्ज ही नहीं होते। अब सरकार व लोगों को पता चलना चाहिए कि इस नेशनल पोर्टल के माध्यम से भी शिकायत दर्ज हो सकती है। हम पुलिस पर दबाव समूह के रूप में काम करेंगे। यह पोर्टल दर्ज न हो सकीं व ध्यान न दी गई शिकायतों को संबंधित राज्य पुलिस मुख्यालयों को भेजेगा। यह ईमेल शिकायत रसीद का वैध प्रमाण होगी, जिसे पुलिस नकार नहीं पाएगी। मुंबई में नववर्ष की पूर्व संध्या पर दो युवतियों के साथ छेड़छाड़ के बाद, यह पहल सामने आई। पहले-पहले बेदी ने सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारियों, सिविल सर्वेंट व

कानून के (लॉ) छात्रों की मदद ली। बाद में उन्होंने आर.टी.आई. व मीडिया की सहायता लेने की योजना बनाई। उन्होंने मीडिया से कहा - ''यदि आप हमारे साथ मिल जाएं तो हम एक साथ बहुत कुछ करके दिखा सकते हैं।''

उन्होंने इस परियोजना के लिए अपनी बचत लगायी है किंतु वे यह भी मानती हैं कि वर्दी ने उन्हें इस सेवा के लिए समर्थन पाने में काफी मदद की। ''मैं अखबारों में लाख रुपए के विज्ञापन नहीं दे सकती, लेकिन जागृति फैला सकती हूं और सहारा बन सकती हूं।''

बेदी का मानना है कि पुलिस के पास 'सुधार की शक्ति', 'कार्य की शक्ति' व 'सब कार्य करने की शक्ति' है। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं कि उनकी पुलिसिंग की अवधारणा सदा 'शक्ति' से नहीं बल्कि समाज सेवा से जुड़ी रही। ''मेरे लिए ये कभी शक्ति का पर्याय नहीं थी। मैं एक वर्दी वाली नागरिक थी। मेरे लिए अपराध सबसे बड़ी प्राथमिकता रही। मैंने आसपास के लोगों को हमेशा प्रोत्साहित किया कि वे अपने परिवार से परे जाकर वृहत्तर समाज तक पहुंचे।''

वे कहती हैं - ''हर शनिवार, इतवार तथा अन्य छुट्टियां समाज सेवा के ही नाम थे। तभी मैं इसे आज तक संभालती आ रही हूं। इसे आपके भीतर से बाहर तक आना होता है। जेल सुधार, अपराध, कानून या फिर मादक द्रव्य उपचारक केंद्र'', बेदी पूरे जी-जान से जुटी हैं। इन दिनों वे लीड इंडिया अभियान में जज की भूमिका में है। भारत ने हमेशा सामाजिक नेता दिए हैं, जिन्हें कभी भी राजनीतिक नेताओं की तुलना में, पत्रों में स्थान नहीं मिला। लीड इंडियां गंभीर व कर्मठ सामाजिक नेताओं को सामने लाने की पहल में जुटा है।

(द टाइम्स ऑफ इंडिया, 7 जनवरी, 2008)

* नई पीढ़ी के नेताओं की राष्ट्रव्यापी पहचान के लिए टाइम्स ऑफ इंडिया का अभिमान

मैं चार मित्रों के दल; अचल पॉल, अरविंद वर्मा, नवीन वार्ष्णेय तथा सुश्री मालदीप सिद्धू की मदद से ई-पोटर्ल लांच कर सकी; ये विज्ञान, तकनीक जनसंचार व कानून आदि विविध क्षेत्रों के व्यवसायी हैं। इस सेवा के बल पर पूरे देश से शिकायतें आ रही हैं तथा लॉ छात्र इंटर्नशिप भी कर रहे हैं। इसमें एक पूर्णकालिक वेबमास्टर अनूप सिन्हा एक प्रशासक (उत्तरप्रदेश पुलिस के सेवा निवृत्त अधिकारी) के.के गौतम तथा एक स्वैच्छिक कानूनी सलाहकार राजकुमार यादव कार्यरत हैं।

'www.saferindia.com' में शिकायत दर्ज कराने की प्रक्रिया निम्नलिखित है : कोई ई-शिकायत मिलने पर वेबमास्टर इस मसले को उपयुक्त पुलिस मुख्यालय में भेज देता है, या दूसरे अधिकारियों को भेजने के बाद, एक प्रति प्रेषक को भेजी जाती है। जब प्रेषक से अपेक्षा की जाती है कि वह शिकायत की मुद्रित प्रति लेकर, संबंधित अधिकारी से मिले तथा उस बारे में पूछे। अब पुलिस नहीं कह सकती कि कोई शिकायत रिकॉर्ड में नहीं है क्योंकि वह ई-मेल

द्वारा पुलिस मुख्यालय में पहुंच चुकी है।

अब तक, हम हजारों शिकायतों पर काम कर चुके हैं तथा कई मामलों में बात आगे भी बढ़ी है। यह दावा इन इंटर्वों की रिपोर्टों पर आधारित है, जो समय-समय पर इस परियोजना से जुड़े रहे हैं। मुझे विमान में एक सहयात्री (स्कूल प्रिंसीपल) से इसकी फीडबैक प्राप्त हुई। उन्होंने बताया कि उनकी एक अध्यापिका की शिकायत पुलिस ने दर्ज नहीं की तो उन्होंने उसे सलाह दी कि वे पुलिस में जाकर इस वेबसाइट का नाम लें। अध्यापिका ने दोबारा पुलिस से जाकर कहा कि यदि उसकी शिकायत दर्ज न की गई तो वह 'www.saferindia.com' को मेल कर देगी। पुलिस ने झट से उनकी शिकायत दर्ज कर ली।

जनवरी 2008 में, इसकी शुरुआत के बाद से, सेफर इंडिया आंदोलन की सूची में, देश के विभिन्न हिस्सों के हजारों स्वयं सेवकों के नाम जुड़ गए हैं, उन्होंने राजधानी के आस-पास बड़े शहरों में केंद्र भी खोले हैं। लॉस्कूल के कई छात्रों ने भी इस परियोजना पर शोध किया है। उनमें से कुछ की रिपोर्ट वेबसाइट पर भी डाली गई हैं।

अपने समय की मालिक होने के बाद से, मैंने अब भारत तथा विदेशों से आए आमंत्रण भी स्वीकारने शुरू कर दिए हैं। ये आमंत्रण एक वक्ता के रूप में, पुरस्कार लेन-देन समारोह में अतिथि के रूप में मिलते हैं, जिन्हें मैं पहले नौकरी की प्राथमिकता के कारण स्वीकार नहीं पाती थी। इन अवसरों से मेरी गैर-लाभकारी संस्थाओं को काफी समर्थन मिलता है।

अब मैं विविध मुद्दों पर मीडिया के साथ आती हूं। पत्र-पत्रिकाओं में प्राय: स्तंभ लिखती हूं। मैं 'इंडिया टुडे' के महिला रेडियो चैनल रेडियो 'म्याऊं' पर 'टॉप कैट' नामक साप्ताहिक कार्यक्रम भी आयोजित करती हूँ। इसके अलावा अब मैं अपनी परियोजनाओं से कहीं बेहतर जुड़ गई हूं, जेलों में, गांवों में और देहातों में, इनसे प्रतिदिन 12,000 लोगों को लाभ होता है। इन दोनों संस्थाओं के 230 स्टाफ सदस्यों में अध्यापक, डॉक्टर, सलाहकार, प्रबंधक, निरीक्षक व लेखाकार शामिल हैं। 1999 से एक परियोजना अंकुरावस्था में चल रही थी किंतु अब अद्भुत रूप में सामने आई। मेरे जीवन पर 'यस, मैडम सर' नाम वृत्तचित्र तैयार किया गया। इसे ऑस्ट्रेलियाई फिल्म निर्माता मेगन डोनेमान ने प्रस्तुत किया है। यह दुनियाभर के फिल्म महोत्सवों में दिखाया गया। अकादमी पुरस्कार विजेता हेलेन मीरे, इसकी उद्घोषिका हैं। मैं भी टोरंटो, दुबई व एडलेड में हुई स्क्रीनिंग के दौरान निजी रूप से उपस्थित रही ताकि शो के बाद होने वाले प्रश्नोत्तर सत्र में हिस्सा ले सकूं। यह जहां कहीं भी दिखाई गई, लोगों ने इसके सम्मान में खड़े होकर तालियां बजाईं। पुरस्कारों में भी ये बाजी मार ले गई। इसे श्रेष्ठ वृत्तचित्र फिल्म का पुरस्कार (100,000 डॉलर के नकद पुरस्कार के साथ) मिला, अमेरिका के किसी भी फिल्मोत्सव में, किसी वृत्तचित्र को पहली बार इतनी बड़ी धनराशि मिली। 'सोशल जस्टिस पुरस्कार' (2500 डॉलर नकद), यह 2009 में सांता बारबरा फिल्म महोत्सव में दिया गया। 'यस, मैडम सर' ने ज्यूरी से भी ढेर सारे वोट बटोरे। (इस बारे में अधिक जानने के लिए इंटरनेट पर यस, मैडम सर वृत्तचित्र देखें।)

सेवा निवृत्ति के बाद भी जीवन रचनात्मक व उत्पादक कार्य से भरपूर रहा। पहले मैं कमाने

के लिए सेवा करती थी अब मैं सेवा के लिए कमा रही हूँ। पुरस्कार राशि, पुस्तकों से मिली रॉयल्टी, वक्ता शुल्क व पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो तथा टी.वी. से प्राप्त मानदेय, मेरी दोनों संस्थाओं को समर्पित है।

ज्योंही मैंने मुक्त उड़ान भरी, मुझे स्टार टी.वी. चैनल तथा भारत व अग्रणी रचनात्मक टी.वी. प्रस्तोता सिद्धार्थ वासु की ओर से एक ऐसा प्रस्ताव मिला; जो वास्तव में अद्भुत था; मुझे 'आपकी कचहरी' नामक टी.वी. शो की मेजबानी करने को कहा गया। यहां मैं दो पक्षों के बीच जज बनती हूं, जो स्वेच्छा से, इस शो के माध्यम से अपने झगड़े का कोई हल निकालना चाहते हैं। (इसमें कोई रीटेक या लिखित स्क्रिप्ट नहीं होती। यह भारत में अपनी तरह का पहला टी.वी. शो है। फीडबैक के अनुसार, यह दुनिया भर में देखा जाता है। मेरे लिए यह मेरे जीवनव्यापी कार्य का ही विस्तार है : सुनना, समझना, सलाह देना, राजीकरना, फैसला करना, कानूनी जागृति फैलाना और फैसला देना।

वन वूमन शो

यह शो स्वाभाविक लोगों, उनके जीवन से जुड़े असली विवादों, भावनाओं व घटनाओं से जुड़ा है। इसमें झूठे विवाद या भावनाओं का खेल नहीं होता। यहां तत्काल न्याय होता है। यहां नायक पूर्वाभ्यास या रीटेक्स नहीं है। यह जीवन के उस छिपे पहलू के बारे में है, जो सामने आने से डरता है। भारत की पहली महिला डी० जी० पी० किरण बेदी कहती हैं।

ये भूतपूर्व-आई० पी० एस अधिकारी टी.वी. के लिए नई नहीं हैं। दूरदर्शन पर गलती किसकी भी हिट रहा था। किरण लोगों की समस्याओं से एकाकार होकर, उन्हें हर संभव तरीके से सहायता देना जानती हैं।

उन्हें इस शो की प्रेरणा कहां से मिली। पूछने पर उन्होंने कहा, ''मैं लोगों की और प्रभावी तरीके से सहायता करना चाहती थी। किसी भी तरह के परिवर्तन को लाने के लिए दृश्य मीडिया एक सशक्त माध्यम हो सकता है।'' यह विचार सिनर्जी एडलैब के सिद्धार्थ बसु का था। ''वे मेरे परामर्शदाता थे और हमेशा एक परिवार जन की तरह पेश आए। उनकी पूरी टीम व्यावसायिक उमंग तथा प्रतिबद्धता से भरपूर है।''

किरण बेदी इस शो की मेजबान होने की सारी खूबियां रखती हैं। 35 वर्षीय व्यावहारिक पुलिस का अनुभव, एन.जी.ओ. का 20 वर्षीय अनुभव, कानूनी शिक्षा व घरेलू हिंसा जैसे विषय पर डॉक्टरेट जैसी योग्यताएं, उन्हें एक सशक्त व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जो विभिन्न मानसिक स्तरों वाले व्यक्तियों का सामना करके, उन्हें संभाल सकता है।

यह कार्यक्रम मानव व्यवहार की आकर्षक अंतर्दृष्टि तथा नियम-कानून की वैध जानकारी प्रस्तुत करता है। यहां सिविल मामले सुलझाए जाते हैं। यहां ऐसे मामले लिए जाते हैं, जहां दोनों पक्षों को कैमरे के सामने आकर, सवाल-तलब करने में संकोच नहीं

होता। इन्हीं के आधार पर किरण बेदी नतीजे निकालेंगी। इसमें पारिवारिक मुद्दे, व्यावसायिक संबंध व व्यक्तिगत मामलों से जुड़े मुकदमें शामिल होंगे।

''सिद्धार्थ की ताकतवर टीम में कई अच्छे वकील हैं, जो मामलों से जुड़े शोध व संक्षेपीकरण के साथ-साथ पूरी मदद देते हैं। इसके अलावा स्टार की पड़ताल तो है ही'', किरण कहती हैं।

वे इन दिनों अपनी दो संस्थाओं के साथ भी व्यस्त हैं, जो शिक्षा, प्रशिक्षण चिकित्सा, उपचार, झोपड़-पट्टी देहात व जेल में रह रहे स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों की देखभाल के माध्यम से प्रतिदिन 10,000 से भी अधिक लोगों तक पहुंचती हैं। वे उन लोगों की शिकायत दर्ज करने में भी मदद करती हैं, जिन्हें पुलिस मदद नहीं देती।

किरण कहती हैं, ''इस कार्यक्रम की विषय सामग्री में ही मेरी प्रेरणा छिपी है। यह समय की उस मांग पर खरा उतरता है, जिसके अनुसार स्वतंत्र व निष्पक्ष श्रोता चाहिए, जो कि प्रभावी मध्यस्थ हो सकते हैं। न्याय के आकांक्षी लोगों के लिए यह आशा की एक किरण के समान है।''

सोसाइटी, जनवरी 2009

अंतर केवल एक ही है! मैं इसे करोड़ों लोगों के सामने कैमरे के समक्ष करती हूं और वे इस पूरी प्रक्रिया के साक्षी होते हैं। ध्यान-समाधान पर आधारित एक सामाजिक आंदोलन भी चलाने का विचार है, जिससे कानून व्यवस्था एजेंसियों तथा न्यायालयों पर दबाव घटेगा; निष्पक्ष व व्यापक विशेषताओं वाले व्यक्ति केंद्रबिंदु होंगे।

इसी अवसर ने मुझे फिर से शहर में रहने को विवश कर दिया। ताकि मैं इससे जुड़ी तैयारियां कर सकूं। वैसे मैं दिल्ली हवाई अड्डे से करीब 25 किलोमीटर दूर अपने गुड़गांव स्थित ग्रामीण घर में जाने की योजना बना रही थी।

अब मेरी सामाजिक व रचनात्मक प्रतिबद्धताएं चाहती हैं कि मैं दिल्ली में ही रहूं।

मैं दिल्ली के शोर-शराबे व प्रदूषण से दूर किसी शांत-एकांत स्थान पर रह सकती थी। घर की साफ-सफाई व रख-रखाव के लिए सहायक रख सकती थी। लंबे समय तक आराम फरमाते हुए, मनचाहे काम कर सकती थी। एक ऐसे घर में रह सकती थी, जहां फलदार बाग हों। मैं घर के मंदिर में बने ध्यान कक्ष में अधिक से अधिक समय बिता सकती थी लेकिन दिल्ली में डेरा डाला ताकि पूरी उत्पादकता के साथ एक-एक क्षण का सदुपयोग हो सके। मुझे कई मिशन पूरे करने हैं। मुझे जल्द ही ऐसा घर मिल गया, जिसके बेसमेंट में बने ऑफिस से भी काम हो सकता था यानी कहीं भी आने-जाने में लगने वाले समय की बचत! मेरे लिए दिनचर्या इतनी व्यस्त हो गई है कि मुझे रविवार को छोड़कर, किसी दूसरे अवकाश का पता ही नहीं चलता। यदि मैं बाहर नहीं हूं तो वीरवार की सुबह ओपन हाउस सत्र या रेडियो-शो के

लिए है। मुझे ई-मेल या फोन के माध्यम से संपर्क करके, कोई भी ऑफिस से हर संभव मदद ले सकता है सबको उचित मार्गदर्शन दिया जाता है तथा जरूरत पड़ने पर फॉलोअप कार्यवाही भी होती है। इन दिनों 'www.saferindia.com' वेबसाइट पर काम चल रहा है। माइक्रोसॉफ्ट, एच. पी. व इंटैल जैसे कॉर्पोरेट अपना योगदान देने आगे आए हैं ताकि पूरे देश में एक पुलिस समुदाय स्थापित हो सके तथा पुलिस वालों के बच्चों को कंप्यूटर शिक्षा दी जा सके। यह परियोजना, पुलिस सुधारों की कड़ी में एक इतिहास है।

मुझे पूरा विश्वास है कि जीवन में प्रत्येक को अधिकतम संसाधन मिलते हैं, वह उन्हें कितना ग्रहण कर पाता है, यह उसके साहस पर निर्भर करता है। जीवन एक निरंतर सतर्कता पर आधारित निरंतर कार्यवाही है।

मेरे मामले में तो जीवन पुरस्कारों व परिणामों से भरपूर रहा है। जो कि मेरे माता-पिता का आशीर्वाद तथा दैवीय अनुकंपा है। यदि कोई शरीर व इंद्रियों से पूरी तरह सलामत है तो वह अपनी अधिकतम क्षमता का प्रयोग करने की जिम्मेदारी रखता है। आयु कोई बंधन नहीं है। मानसिक रवैया कहीं ज्यादा मायने रखता है।

उत्तरदायित्व की यही भावना मुझे निरंतर संचालित करती है। यह मेरा भीतरी प्रेरक बल है।

मैं कभी-कभी स्वयं से पूछती हूँ, मुझे ऐसे स्नेही माता-पिता क्यों मिले? प्रेरित अध्यापकों से बेहतरीन शिक्षा क्यों मिली? इतना अच्छा परिवार व मित्र क्यों मिले? इतनी अच्छी नौकरी और अब तक इतना अच्छा स्वास्थ्य क्यों मिला?

मैं दुनिया के सबसे अधिक आध्यात्मिक देश में क्यों जन्मीं, जो सदियों से ज्ञान का भण्डार है।

मेरे जीवन का लक्ष्य आगे ही आगे बढ़ते जाना है...

जहाँ तक मैं जा सकूँ...

इस जीवन में जितना दे सकूँ...।

जो कुछ भी अब तक हुआ, जिसके भी माध्यम से हुआ और जो भी मेरे पास है... मैं उन सबके लिए कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ!

परिशिष्ट 1

रैमन मैग्सेसे पुरस्कार

प्रशस्ति लेख

एशिया में और कोई भी सामाजिक संबंध द्विमुखी नहीं है जितना पुलिस और जनता के बीच का संबंध। जब पुलिस व्यवस्था कायम करने, जनता की सुरक्षा सुनिश्चित करने और किसी क्षेत्र को गतिहीन बना देने वाले यातायात का नियंत्रण करने का काम करती है तब उसकी सेवाएँ मूलत: शालीनता की प्रेरक होती हैं। फिर भी लगभग हर जगह उसकी प्रतिष्ठा पर अयोग्यता और छोटे-बड़े दुर्व्यहारों का कलंक लग ही जाता है। अधिकतर लोगों की दृष्टि में पुलिस वस्तुत: भली नहीं, बल्कि एक अनिवार्य बुराई-भर है। भारत की सबसे उच्च पदस्थ महिला पुलिस अधिकारी और दिल्ली की वर्तमान जेल-महानिरीक्षक किरण बेदी का विश्वास है कि पुलिस और अच्छा काम कर सकती है।

इनके रुढ़िविरोधी माता-पिता ने इनमें प्रतियोगिता की ओर 'समानता के स्तर पर सोचने' की भावना भरी और बेदी स्कूल में भी अग्रणी रहीं और पारिवारिक शौक टेनिस में भी। बड़ी आसानी से इन्होंने स्नातक और स्नातकोत्तर उपाधियाँ हासिल कीं और 1972 में, बाईस वर्ष की आयु में, इन्होंने एशियाई महिला लॉन टेनिस चैंपियनशिप जीती। उसी वर्ष वह पुलिस अकादमी में भर्ती हुईं और 1974 में गरिमामय भारतीय पुलिस सेवा की पहली महिला सदस्य बनीं। बेदी की नियुक्ति राजधानी में हुई और उनके पद और प्रतिष्ठा में तेज़ी से वृद्धि होती गई। 1978 में तलवार व लट्ठधारी आंदोलनकारियों का मुकाबला अकेले ही, सिर्फ पुलिस के डंडे से करके उन्होंने राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त किया।

दिल्ली के पश्चिमी व उत्तर जिलों की पुलिस डिप्टी कमिश्नर के रूप में, बेदी ने नीले और सफ़ेद रंग के पुलिस सहायता केंद्र बनवाकर वहाँ सिपाहियों को तैनात किया जिससे कि नागरिक रोज़ उनसे संपर्क कर सकें। उन्होंने अनुकूल कर्ज़ ओर सहायता का प्रबंध कर, अवैध शराब बनानेवालों को ईमानदारी से जीविका कमाने की ओर उन्मुख किया। उनकी पहल से महिला शांति समितियाँ स्थापित हुईं जिससे आस-पड़ोस में मैत्रीभाव विकसित हुआ। जैसे-जैसे समाज का सहयोग बढ़ता गया, अपराधों की संख्या गिरती गई। नशीले पदार्थों के सेवन और अपराधवृत्ति के बीच संबंध का अवलोकन कर, बेदी ने जनता की सहायता पर आधारित नशा मुक्ति केंद्रों की स्थापना की। आगे चलकर नार्कोटिक कंट्रोल ब्यूरो की उपनिदेशक के रूप में अधिक विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग के लिए उन्होंने इसी नमूने को और अधिक विकसित किया।

नई दिल्ली की यातायात व्यवस्था की अध्यक्ष के रूप में उन्होंने इतनी सावधानी से योजनाएँ तैयार कीं और इतने कठोर तथा निष्पक्ष रूप से उन्हें लागू किया कि 1982 के एशियाई खेलों के दौरान भी राजधानी के वाहनों का पंचमेल कारवाँ अबाध रूप से चलता रह सका- यद्यपि वह स्वीकार करती हैं कि इस प्रक्रिया में उन्होंने कुछ दुश्मन भी बना लिए।

1993 में बेदी जेलों (दिल्ली) की महानिरीक्षक बनीं और भारत के सबसे बड़े जेल-समूह, तिहाड़ का पदभार संभाला। निर्दयता से खचाखच भरे हुए इस संशोधन-स्थल में 8,000 से भी अधिक कैदी रहते थे जिनमें से 90 प्रतिशत केवल मुकदमे की राह देख रहे हवालाती थे। बेदी ने जल्द ही तिहाड़ की काया पलट दी। आज यहाँ के कैदी एक निश्चित कार्यक्रम के तहत काम, पढ़ाई और खेल आदि में व्यस्त रहते हैं। अनपढ़ कैदी पढ़ना-लिखना सीखते हैं और अन्य कैदी सहायक कॉलेजों से उच्च डिग्रियाँ प्राप्त करते हैं। जेल की वर्कशाप में कैदी अपने हुनर को चमकाकर, पैसा कमाकर तिहाड़ के नए बैंक में जमा करते हैं। अपनी पंचायत (निर्वाचित समिति) के द्वारा कैदीगण सामुदायिक अनुशासन तथा खेलों और मनोरंजन के आयोजन की जिम्मेदारी बाँट लेते हैं। योग की कक्षाओं में क्रोध रोकने और एकाग्रता सुधारने के लिए वे ध्यान की तकनीक सीखते हैं। चलती-फिरती याचिका पेटी में डाली गई शिकायतें सीधे उच्चाधिकारियों के पास जाती हैं और उन्हें गंभीरता से लिया जाता है। आज तिहाड़ की दुनिया बिलकुल बदली हुई है। बेदी की देखरेख में जो कैदी यहाँ हैं उन्हें सकारात्मक रुख के विकास और व्यावहारिक कौशलों के प्रशिक्षण के द्वारा दीवारों के दूसरी ओर की ज़िंदगी सरलता से बिताने के लिए तैयार किया जा रहा है।

बेदी द्वारा लाए गए हर नवीन परिवर्तन में एक पैटर्न है। इनमें से हर परिवर्तन पुलिस और जनता के बीच के प्रतिकूल संबंध को तोड़ने का प्रयास करता है और हर परिवर्तन दंड के कठोर हाथ को पुनर्वास के स्निग्ध-सहायक हाथ में बदलने की कोशिश करता है।

पैंतालीस साल की उम्र में भी बेदी में किशोरावस्था वाला ही अनुशासन, आत्मविश्वास और प्रतियोगी उत्साह बना हुआ है। वह व्यवस्था को चुस्त करने के लिए प्रवृत्त ही नहीं, अधीर भी हैं। वह मानती हैं कि ''धारा के प्रतिकूल चलना बहुत कठिन है। फिर भी इससे आप कम-से-कम वहाँ जाते हैं जहाँ और कोई नहीं पहुँच सकता।''

सरकारी सेवा के लिए 1994 के रैमन मैग्सेसे पुरस्कार के लिए किरण बेदी का चयन करके न्यास समिति इनके गतिशील नेतृत्व, अपराध नियंत्रण के लिए नए उपायों के प्रभावी प्रयोग, नशीली दवाओं के जाल में फँसे लोगों के पुनर्वास और मानवीय जेल-सुधारों द्वारा भारत की पुलिस में आत्मविश्वास जगाने के सफल प्रयास को मान्यता प्रदान करती है।

स्वीकृति भाषण

श्रीमान अध्यक्ष महोदय, श्रीमती मैग्सेसे, न्यासीगण, महिलाओं और सज्जनो!

बाईस साल पहले जब मैंने गरिमामय भारतीय पुलिस सेवा में दाखिल होने का निश्चय किया, तब मैंने उसमें 'करने की शक्ति', 'काम करवाने की शक्ति' और 'सुधारने की शक्ति' के लिए

बहुत संभावना देखी थी। मेरा यह विश्वास है कि किसी भी देश में पुलिस मानवाधिकारों और कानून के नियमों की सबसे बड़ी रक्षक हो सकती है। हालाँकि यह उन दोनों की सबसे बड़ी अतिक्रामक भी बन सकती है।

रैमन मैग्सेसे पुरस्कार जिस प्रकार औरों के लिए जादुई-सी स्थितियाँ बनाता है, उसी प्रकार अब मेरे लिए इसने यह स्थिति बना दी है:

1. इस पुरस्कार ने 'निवारण की शक्ति' को मान्यता दी है:

अपराध निवारण को अक्सर कम प्राथमिकता दी जाती है और पुलिस-कर्म में इसे कम महत्त्व दिया जाता है। केवल सुरागरसानी और ज़ब्ती को ही प्राथमिकता और सुर्खियों में स्थान मिलता है अपराध और शांति-भंग के निवारण को नहीं, जिनमें हिंसात्मक अपराधों की सारी संभावनाएं निहित रहती हैं।

2. जनता के सहयोग से पुलिस-कर्म करने की शक्ति:

'पुलिस-कर्म जनता के लिए है', इसलिए इसमें जनता को भी साथी बनाना चाहिए। अनेक प्रकार से यदि ऐसा एक बार हो जाए तो, यह सारी प्रणाली को पारदर्शिता और जवाबदेही प्रदान करता है। जो साधन केवल पुलिस से नहीं आ सकते वे भागीदार पुलिस-कर्म से आ सकते हैं।

3. दल की शक्ति:

पुलिस हो या सरकार, यदि इनके नेता कार्य-सिद्धि चाहते हैं तो उन्हें दलों का गठन करना होगा। यही नहीं, इन दलों को पहल लेने की अनुमति देनी होगी; उन्हें प्रतिनिधित्व, समर्थन और प्रशिक्षण देना होगा जिसका पूरा बल व्यावसायिक न्यायनिष्ठा पर हो; और उनके कार्यों के दख़लअंदाज़ी से बचना होगा। व्यक्तिगत उदाहरण बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं पर उपलब्धियां यदि साझी हों तो इनके कार्यों की सिद्धि के लिए भी प्रेरणा मिलेगी। इससे 'सुरक्षा बनाए रखना' ही नहीं, बल्कि 'सुरक्षा रचना' भी संभव होगा।

इस पुरस्कार ने मुझे अपने कार्य को बढ़ाने और संघटित करने के लिए उत्प्रेरित किया है। इसके लिए मैंने 'इंडिया वीज़न' नामक ट्रस्ट को पंजीकृत कराया है, जिसे मैं आजकल उज्जीवित कर रही हूं। जेल-सुधार, नशीले पदार्थों के व्यसन का निवारण महिलाओं को सबल बनाना, मानसिक आशक्तता और खेलकूद प्रवर्तन के क्षेत्रों में यह ट्रस्ट विभिन्न परियोजनाओं को आगे ले जाएगा। मैं इन परियोजनाओं में आपसे और अधिक समर्थन मांगती हूं।

मैं अपने पुलिस-जेल-जनता समाविष्टित दल और अपने परिवार की तरफ़ से फाउण्डेशन और फिलीपिन्स के प्रति पूर्ण कृतज्ञता व्यक्त करते हुए रैमन मैग्सेसे पुरस्कार स्वीकार करती हूं।

इस समारोह के लिए रवाना होने से ठीक पहले अपने जेल मुख्यालय से मुझे अपने डी आई जी श्री सारंगी का टेलिफोन मिला कि इस समय मेरे सारे-के-सारे 9,100 कैदी जेल परिसर के अंदर ही एक विशेष समारोह मना रहे हैं।

धन्यवाद
किरण बेदी

31 अगस्त, 1994
मनीला

परिशिष्ट : 2

किरण का जीवन परिचय
(वेबसाइट : www.kiranbedi.com)

जन्म-तिथि	9 जून
जन्म-स्थान	अमृतसर
माता-पिता	प्रकाश लाल व प्रेमलता पेशावरिया
भाई-बहन	कुल चार बहनें शशि, दर्शन में पी.एच.डी. तथा एक कलाकार। वे इन दिनों कनाडा में हैं। रीटा, क्लीनिकल मनोविज्ञानी, टेनिस चैंपियन तथा व्यवहारगत पद्धति पर लिखी पुस्तकों की प्रख्यात लेखिका, जिसे उन्होंने अपने पति डॉ. कीर्ति मेनन (क्लीनिकल मनोविज्ञानी) के सहलेखन में लिखा है। वे दोनों इन दिनों यू. के. में हैं। अनु, एक आप्रवास वकील, नेशनल टेनिस चैंपियन (तीन बार) तथा विंबलडन खिलाड़ी (इन दिनों अमेरिका में हैं।)
वैवाहिक स्तर	टैक्सटाइल इंजीनियर, टेनिस खिलाड़ी तथा समाजसेवी बृज बेदी के साथ विवाह।
संतान	एक पुत्री, सायना (मानद निर्देशक, नवज्योति), रूजबेह बरूचा (लेखक, पत्रकार व वृत्तचित्र निर्देशक) से विवाह।

शैक्षिक

सैक्रेड हार्ट स्कूल, अमृतसर; अंग्रेजी (आनर्स) में स्नातक, गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वीमन, अमृतसर; पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से राजनीति विज्ञान में स्नात्तकोत्तर उपाधि (विश्वविद्यालय में अव्वल स्थान प्राप्त), दिल्ली विश्वविद्यालय से कानून की डिग्री; दिल्ली के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नॉलजी के सामाजिक विज्ञान विभाग से पी.एच.डी (विषय-मादक पदार्थों का सेवन तथा घरेलू हिंसा); जवाहर लाल नेहरू स्मारक निधि द्वारा 'तिहाड़ जेल प्रबंधन' पर फेलोशिप प्राप्त; आई. जी. (जेल) के कार्यकाल के दौरान, गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर तथा न्यूयार्क लॉ स्कूल के सिटी विश्वविद्यालय से दो मानद उपलब्धियां।

खेल

नेशनल जूनियर टेनिस चैंपियन (1966); नेशनल सीनियर टेनिस चैंपियन (1976); एशियाई टेनिस चैंपियन (1972); इन्होंने अंतर्राष्ट्रीय टूर्नामेंटों में भी भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

करियर उपलब्धियां

1972 में भारतीय पुलिस सेवा में नियुक्ति (भारत में ऐसा करने वाली पहली महिला अधिकारी), अनेक पदों का दायित्व संभाला, जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं : (1) जिला पुलिस, नवें एशियाई खेलों के दौरान दिल्ली यातायात पुलिस (2) चोगम के दौरान गोवा में विशेष यातायात पुलिस (3) डिप्टी डायरेक्टर नारकोटिक कंट्रोल ब्यूरो (4) डिप्टी इंस्पैक्टर जनरल (मिजोरम) (5) इंस्पैक्टर जनरल ऑफ प्रिजन, तिहाड़ जेल, नई दिल्ली (6) दिल्ली उपराज्यपाल की विशेष सचिव (7) ज्वांइट कमिश्नर, दिल्ली पुलिस (8) इंस्पैक्टर जनरल ऑफ पुलिस (चंडीगढ़), (9) ज्वांइट कमिश्नर ऑफ पुलिस (प्रशिक्षण) दिल्ली पुलिस, (10) स्पेशल कमिश्नर इंटैलीजेंस (दिल्ली पुलिस), (11) संयुक्त राष्ट्र के पीस कीपिंग विभाग में सैक्रेट्री जनरल की सिविलियन पुलिस सलाहकार (12) डी जी, होमगार्ड व सिविल डिफेंस, और (13) डीजीबीपीआरडी

अलंकरण/पुरस्कार

राष्ट्रीय

- भारत के राष्ट्रपति से वीरता के लिए पुलिस पदक (1979)
- मादक पदार्थों शराब, तंबाकू व ड्रग्स के खिलाफ जीवन सुधार कार्यक्रम के लिए, अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार, इसाई कॉलेज व विश्वविद्यालय संघ द्वारा सम्मानित (1 सितंबर 1998)
- आई.आई.टी. दिल्ली के एल्यूमनी एसोसिएशन द्वारा राष्ट्रीय एकता में महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए सम्मानित (1999-2000)
- सामाजिक न्याय हेतु मदर टेरेसा पुरस्कार (2005)
- फैडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कामर्स एंड इंडस्ट्री पुरस्कार (2005)
- भारतीय पुलिस सेवा में परिवर्तनशील नेतृत्व के लिए पुरस्कार (2006)
- सूर्यदत्त राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित (2007)
- सोशल जस्टिस के लिए 'एमिटी वूमन अचीवर' घोषित (2007)
- पब्लिक सर्विस एक्सीलेंस पुरस्कार (2007)
- जी अस्तित्व पुरस्कार (2007)
- बाबा फरीद पुरस्कार (2007)
- इंडियन सोसायटी ऑफ क्रिमनोलॉजी की ओर से पुरस्कार (2008)
- प्राइड ऑफ पंजाब पुरस्कार (2008)
- बैंक ऑफ बड़ौदा की ओर से लाइफ टाइम एचीवमेंट अवार्ड (2008)

- ‘आज तक’ न्यूज चैनल से वूमन एक्सीलेंस पुरस्कार (2009)

अंतर्राष्ट्रीय

- नशीली दवाइयों के रोकथाम के क्षेत्र में नार्वे आधारित संस्था ‘इंटरनेशनल आर्गेनाइजेशन ऑफ गुड टेम्पलर्स’ द्वारा ‘एशियाई क्षेत्र’ पुरस्कार से सम्मानित।
- रैमन मैग्सेसे फाउंडेशन फिलीपिंस द्वारा सरकारी सेवा के लिए रैमन मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित (1994) (एशिया में किसी पुलिस अधिकारी को पहली बार यह पुरस्कार दिया गया, संभवत: पहली बार किसी पुलिस अधिकारी ने शांति पुरस्कार पाया है।)
- संपूर्ण व पहलयुक्त प्रबंधन के लिए जोसेफ बायस फाउंडेशन पुरस्कार (स्विट्ज़रलैंड) से सम्मानित (1997)
- अमेरिका व कनाडा में मानव कल्याण, महिलाओं के अधिकारों, बेहतरीन सेवाओं तथा धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए; अमेरिकन फैडरेशन ऑफ मुस्लिम्स द्वारा ‘भारत गौरव’ सम्मान से सम्मानित (अक्टूबर 1999)
- भारत में न्याय की गुणवत्ता में सुधार लाने वाली कार्रवाइयों के लिए, अमेरिका की वेस्टर्न सोसाइटी ऑफ क्रिमनोलॉजी द्वारा मॉरीसन टॉम गियोफ पुरस्कार से सम्मानित (2001)
- इटली की सांस्कृतिक व कलात्मक एसोसिएशन ब्ल्यू ड्रॉप ग्रुप मैनेजमेंट द्वारा वूमन ऑफ द ईयर पुरस्कार से सम्मानित (2002)
- कल्याणकारी पुलिसिंग के लिए चिन्मय पुरस्कार (अमेरिका 2007)
- यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ फ्लोरिडा व फैडरेशन ऑफ इंडियन अमेरिकन द्वारा ‘पावर ऑफ द डेडिकेटिड प्रोफेशनल’ पुरस्कार से सम्मानित(2003)
- यू.एन मैडल सम्मान (2004)
- एनीमैरी-मैडीसन पुरस्कार, 2008, (जर्मनी)
- प्रवासी पुरस्कार, 2008, कनाडा

महत्त्वपूर्ण निमंत्रण

- मादक पदार्थों के व्यसन व इसके निवारण, जेल सुधारों व मानवाधिकार जैसे विषयों पर अमेरिकी, यूरोपीय व एशियाई अंतर्राष्ट्रीय फोरमों में भारत का प्रतिनिधत्व।
- अमेरिका (1992) की अंतर्राष्ट्रीय पुलिस चीफ्स कॉन्फ्रेंस को संबोधित किया।
- 1995 में अमेरिका राष्ट्रपति के साथ नेशनल प्रेयर ब्रेकफॉस्ट के लिए आमंत्रित
- ब्रिटिश फॉरेन ऑफिस (1995) के निमंत्रण पर ब्रिटिश जेलों का दौरा व संबोधन
- डेनमार्क (1995) में संयुक्त राष्ट्र की वर्ल्ड सोशल समिट में भाग लिया।
- बीजिंग (1995) में संयुक्त राष्ट्र की महिला कॉन्फ्रेंस में भाग लिया।
- न्यूयार्क (1998) में संयुक्त राष्ट्र की मादक पदार्थों के व्यसन कांफ्रेस में भाग लिया।
- घरेलू हिंसा निवारण में कानूनी एंजेसियों को प्रशिक्षित करने के लिए मॉरिशस सरकार का

निमंत्रण (1998)
- पाकिस्तान, इस्लामाबाद में एंटी-नार्कोटिक नियोजन व विकास की सार्क कार्यशाला में हिस्सा लिया (1998)।
- यू.के., बक्सटन में प्रिज़न गवर्नर एसोसिएशन की वार्षिक सभा को संबोधित किया (मार्च 2000)।
- संयुक्त राज्य अमेरिका सरकार के जस्टिस विभाग द्वारा बैंकाक में आयोजित सीनियर क्रिमीनल जस्टिस एक्ज़ीक्यूटिव कार्यक्रम के चौथे सत्र को संबोधित किया (2000)।
- नार्वे, ओस्लो में 'वैलफेयर पुलिसिंग' के मुद्दे पर प्रोफेसर अमर्त्य सेन के साथ पैनल में रहीं (2002)।
- 13 अप्रैल, 2008 कनाडा में 'प्रवासी अवार्ड नाइट' में हिस्सा लिया।
- प्रवासी मीडिया ग्रुप, 14 नवंबर, 2008 (कनाडा)
- डी.पी.एस (शारजाह) की मुख्य अतिथि (2008)
- नवीं अनौपचारिक एशिया-यूरोप मानवाधिकारों पर मीटिंग में भाग लिया। फ्रांस (2009)
- हार्वर्ड, एमोरी, हार्टफोर्ड, मैरीलैंड, कोलंबिया, ब्रेक्ले, न्यूयार्क, इंडियाना, फ्लोरिडा, ऑक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में अतिथि वक्ता रहीं।

पुस्तकें तथा स्तंभ

- इट्स ऑलवेज पॉसिबल' पुस्तक का लेखन (स्टर्लिंग, नई दिल्ली, 1998), यह भारत विशालात्मक जेलों में से एक तिहाड़ जेल के रूपांतरण पर आधारित है। इसके साथ एक सीडी रोम भी है, जिसका शीर्षक इंडिया विज़न फांउडेशन ने तैयार किया है।
- एक मनोविज्ञानी तथा शोध छात्रा मीनाक्षी सक्सेना ने उनकी जीवनी 'द कांइडली बैटन' लिखी जो नई दिल्ली के 'बुक्स इंडिया इंटरनेशनल' से प्रकाशित हुई (2000)।
- सत्य कथानकों पर आधारित 'व्हाट वैन्ट राँग' अमेरिका की पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2000 (यह दूरदर्शन धारावाहिक भी बनी, जिसे भारत के राष्ट्रीय चैनल पर दिखाया गया तथा ऑल इंडिया रेडियो पर अब भी जारी है।)
- ई-गवर्नेंस पर 'गवर्नमेंट नेट' नामक पुस्तक का सहलेखन (सेज, नई दिल्ली)
- राष्ट्रीय दैनिकों में नियमित स्तंभ लेखन : हिंदुस्तान टाइम्स (चंडीगढ़ संस्करण), पंजाब केसरी, नवभारत टाइम्स तथा हिंद समाचार।
- 'एज़ आई सी इट' स्तंभों पर आधारित पुस्तक श्रृंखला (स्टर्लिंग, नई दिल्ली)

विशेष रुचियाँ

सामुदायिक कार्य
दो संगठनों की स्थापना, जो कि अब संयुक्त राष्ट्र निरीक्षक स्तर पर हैं।

1. नवज्योति इंडिया फांउडेशन, 1987 में रजिस्टर्ड (अधिक जानकारी के लिए www.navjyoti.org देखें)
2. इंडिया विज़न फांउडेशन, 1994 में रजिस्टर्ड (अधिक जानकारी के लिए www.indiavisionfoundation.org वेबसाइट देखें)

नवज्योति संस्था की उपलब्धि

- यह 16000 से अधिक मादक द्रव्य व्यसनियों को नि:शुल्क आवासीय, चिकित्सकीय, सामुदायिक-आधारित उपचार व मध्यस्थता दे चुकी है। नवज्योति ने :
- जेल, देहात व झोपड़ पट्टी के बच्चों के लिए बालवाड़ी, प्राथमिक तथा गली स्कूलों की स्थापना की है।
- महिलाओं व किशारों के लिए व्यावसायिक व साक्षरता केंद्रों की स्थापना की है।
- तिहाड़ जेल में महिलाओं के लिए बालवाड़ी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए हैं।

नवज्योति को 1999 में, संयुक्त राष्ट्र द्वारा मादक द्रव्य रोकथाम में प्रभावी कार्यक्रमों के लिए सर्ज सोटीरॉफ स्मारक पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार 26 जून, 1999 को मादक द्रव्यों के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय दिवस पर दिया गया।

नवज्योति को दिल्ली सरकार द्वारा प्रायोजित राज्य पुरस्कार भी दिया गया है जो कि शिक्षा तथा असहाय बच्चों के पुनर्वास क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए प्रदत्त किया गया।

इंडिया विज़न फांउडेशन प्रदान करता है :

- कैदियों के बच्चों की स्कूली शिक्षा
- जेल में महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण
- बच्चों के लिए सुधार गृह
- ग्राम समुदायों के लिए ग्रामीण विकास परियोजनाएं

अन्य

- सितंबर 2002 में 'द वीक' द्वारा आयोजित मत में भारत की 'सर्वाधिक प्रशंसित महिला' चुनी गयी।
- 'द वीक' तथा मार्केटिंग रिसर्च व ओपीनियन पोलिंग एजेंसी टी एन एस मोड द्वारा संयुक्त रूप से, 100 विख्यात भारतीयों में से दस सर्वाधिक प्रशंसित भारतीयों में पांचवां स्थान पाया। यह 10 सितंबर, 2000 के 'द वीक' में प्रकाशित हुआ।
- 'नोबेल शांति पुरस्कार' के लिए मनोनीत (पूरे विश्व में 1000) महिलाओं में से एक (2005)।

परिशिष्ट 3

पुलिस सुधारों पर किया गया न्याय : भारत के सुप्रीम कोर्ट की कार्रवाइयों का रिकॉर्ड'

प्रार्थी के लिए

श्री प्रशांत भूषण (वकील)

प्रतिवादी के लिए

श्री गोपाल सुब्रमण्यम (ए. एस. जी., एडीशनल सॉलिसिटर जनरल), श्री टी. श्रीनिवास मूर्ति, सुश्री सुषमा सूरी, सुश्री संध्या गोस्वामी, श्री विकास सिंह (ए. एस. जी.), श्री विकास शर्मा, श्री डी. एस. माहरा, श्री आर. सी कथिया, श्री बी.बी. सिंह, श्री कुमार राजेश सिंह, सुश्री सुपर्णा श्रीवास्तव, सुश्री पूजा मटलानी, श्री राजेश श्रीवास्तव, सुश्री रचना श्रीवास्तव, श्री अनिल श्रीवास्तव, श्री अरुण जेटली (सीनियर एडवोकेट), सुश्री विभा दत्ता मखीजा, डॉ. राजीव धवन (सीनियर एडवोकेट), डॉ. आर.जी. पाडिया (सीनियर एडवोकेट), श्री एस.डब्ल्यू. ए. कादरी, श्री राजीव दुबे, श्री कमनेंद्र मिश्रा, श्री के.एन. बालगोपाल (एडवोकेट जनरल, नागालैंड के ए. जी.), श्री एस बाला जी, श्री अरुणेश्वर गुप्ता (एडीशनल एडवोकेट जनरल, ए. ए. जी.), श्री नवीन कुमार सिंह, श्री मुकुल सूद, श्री शाश्वत गुप्ता, श्री डी.पी.सिंह, श्री ए. के. सिन्हा, श्री जे. एस. अत्ति (ए. ए. जी., हिमाचल प्रदेश), श्री विवेक सिंह अत्ति, श्री शेखर नाकादे, श्री रवींद्र एडसर, श्री संजय आर. हेगड़े, श्री अनिल के. मिश्रा, श्री विक्रांत यादव, श्री शशिधर, श्री रंजन मुखर्जी, श्री अतुल झा, श्री डी.के. सिन्हा, श्री कृष्णा सरन, श्री मीनाक्षी सरन, श्री सोनम पी वांगड़ी (ए. जी., सिक्किम) श्री ए. मरिअरपुधन, श्रीमती अरुणा माथुर, श्री वी. जी. प्रगासम, श्री एस वल्लीनयगन, श्री प्रभु रामसु.ब्रामण्यम, सुश्री इंदु मल्होत्रा, श्री मंजीत सिंह, श्री अजय सिवाच, श्री टी. वी. जॉर्ज, श्री के. एच. नोबिन सिंह, श्री एस. विश्वजीत मेटी, श्री डेविड राव, श्री के टी एस. तुलसी (सीनियर एडवोकेट), श्रीमती एच. वाही, सुश्री शिवांगी, श्री कुमार, अमित, श्री के. एन. मधुसूदन, श्री आर. सतीश, श्री ताराचंद्र शर्मा, श्री यू. हजारिका, श्री सत्य मित्रा, सुश्री सुमिता हजारिका, सुश्री ए. सुभाषिणी, श्री अनीस सुहरावर्दी, श्री टी. एल. वी. अय्यर (सीनियर एडवोकेट), श्री पी. वी. दिनेश, श्री एच. के. पुरी, श्री श्री नारायण, श्री वी. एन. रघुपति, सुश्री कविता वाडिया, श्री जे. के. दास, श्री आर. अय्यम पेरुमाल, श्री अशोक माथुर, श्री मोहनप्रसाद मेहारिया, श्री के. के. राय, श्री अनुव्रत शर्मा, सुश्री अनिल कटियार, व श्री गोपाल प्रसाद

सभी वकील.........वकीलों को सुनने के बाद कोर्ट ने निम्नलिखित आदेश दिए, इनका सारांश प्रस्तुत है:

तकरीबन तीन दशकों से सभी संबंधित सरकारें, अधिकारी व संस्थाएं, पुलिस सुधारों की इस माँग पर ध्यान दे रही हैं। अनेक आयोगों व समितियों का गठन हुआ, जिन्होंने अपनी रिपोर्टें दीं। नवंबर 1971 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय पुलिस आयोग की स्थापना की थी, जिसने तकरीबन चार साल तक, कई कोणों से विषय की जाँच-पड़ताल के बाद काफी बड़ी संख्या में रिपोर्ट प्रस्तुत की। कोर्ट में एक याचिका फाइल की गई, जिसके फलस्वरूप 22 सितंबर, 2006 को कोर्ट ने आदेश दिया। इस फैसले में राष्ट्रीय पुलिस आयोग की व अन्य समितियों की रिपोर्टों की मदद ली गई। इसमें ध्यान दिया गया कि पुलिस की वचनबद्धता, समर्पण, व जवाबदेही केवल कानून के प्रति होनी चाहिए। अब इन पुलिस सुधारों को विस्तृत रूप से लागू करने का समय आ गया है। फैसले में यह भी देखा गया कि निरीक्षण व नियंत्रण ऐसा हो कि पुलिस किसी भी तरह के दबाव या सत्ता के प्रभाव में आए बिना जनता की सेवा कर सके। निष्पक्ष भाव से अपराध की छानबीन करके सुरक्षात्मक कदम उठा सके। इसकी भूमिका परिभाषित होनी चाहिए ताकि सही वक्त पर पुलिस निर्भीक होकर उपयुक्त कदम उठा सके।

विद्वान सौलीसिटर जनरल सुश्री इंदु मल्होत्रा, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की विद्वान वकील सुश्री स्वाति मेहता तथा कॉमनवेल्थ ह्यूमन राइट इनिशिएटिव के विद्वान वकीलों तथा प्रार्थी के वकील को सुनने के बाद फैसले के विषय में निर्देश दिए गए। याचिका का नोटिस सभी राज्य सरकारों व केंद्र शासित प्रदेशों को दिया गया। जब बहस सुनी गई तो किसी भी राज्य सरकार, केंद्र शासित प्रदेश सरकार ने भी सुझाव नहीं दिया कि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, रिबेरो समिति, सोराब जी समिति या पुलिस आयोग की रिपोर्टों के सुझाव शामिल न हों। इस विषय में भारत सरकार के विद्वान सॉलीसिटर जनरल की भी यही स्थिति रही। एक पत्र का संदर्भ भी दिया गया, जिसे वर्ष 1997 में संघीय गृह मंत्री ने राज्य सरकारों को भेजा था, उन्होंने बिगड़ते हालात पर अपने विचार दिए थे कि यदि कानून व्यवस्था बनाए रखनी है तो हालात को संभालना चाहिए।

विविध रिपोर्टों का अध्ययन करने के बाद; केंद्र सरकार, राज्य सरकार तथा केंद्रशासित प्रदेशों को नोटिस जारी कर दिए गए; यह कार्य 31 दिसंबर, 2006 से पूर्व किया गया ताकि संबंधित समितियाँ, नए वर्ष के साथ ही काम शुरू कर सकें। केंद्र सरकार, राज्य सरकार व केंद्र शासित प्रदेशों के उच्च अधिकारियों को भी 3 जनवरी, 2007 तक अनुपालन के एफिडेविट जारी किए गए। हमें पूरी आशा थी कि निर्देशों के अनुपालन के लिए तीन माह का समय पर्याप्त था। कुछ राज्य सरकारों ने कुछ निर्देशों का पालन किया है लेकिन केवल सिक्कम राज्य ने सभी निर्देशों का पालन किया है।

हमने विराट, उत्तर प्रदेश व आंध्रप्रदेश के विद्वान वकील डा. राजीव धवन, नेशनल कैपिटल टैरीटरी ऑफ दिल्ली के विद्वान एडीशनल सॉलिसिटर जनरल श्री विकास सिंह, यूनियन ऑफ इंडिया के विद्वान एडीशनल सॉलीसिटर जनरल श्री गोपाल सुब्रमण्यम, मध्यप्रदेश राज्य के विद्वान वकील श्री अरुण जेटली, झारखंड राज्य के विद्वान वकील श्री बी. बी. सिंह, तमिलनाडु राज्य के विद्वान वकील श्री टी. आर. अंध्यारूजिना, उत्तराखंड राज्य की विद्वान वकील सुश्री

रचना श्रीवास्तव व कुछ अन्य राज्यों के वकीलों, जैसे नागालैंड आदि को सुना। हमने विद्वान वकील श्री प्रशांत भूषण व सुश्री स्वाति मेहता के द्वारा दिया गया अनुरोध भी सुना।

यद्यपि इन निर्देशों को उचित समय सीमा के भीतर पूरा हो जाना चाहिए था किंतु अब अतिरिक्त समय की प्रार्थना की गई है। वैसे हम यह स्पष्ट कर दें कि इन निर्देशों में सुधार के लिए झारखंड व अन्य राज्यों द्वारा अर्जियाँ दी जाने के बावजूद, हम 22 सितंबर, 2006 के फैसले पर संशोधन की अनुमति नहीं दे सकते। इसे किसी निश्चित आधार पर पाने की एक समुचित प्रक्रिया होती है इसी संदर्भ में, ध्यान दें कि यह मामला कई दिन तक सुना गया था और व्यावहारिक रूप से किसी भी राज्य सरकार या केंद्र शासित प्रदेश ने विविध रिपोर्टों में दिए गए सुझावों पर आपत्ति दर्ज नहीं की थी। इस दृष्टि से, हम केवल अतिरिक्त समय की प्रार्थना पर ध्यान दे सकते हैं ताकि राज्य सरकारों व केंद्रशासित प्रदेश, इन निर्देशों का अनुपालन कर सकें।

दूसरा निर्देशन, डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस के चुनाव तथा न्यूनतम कार्यकाल से संबंधित है। तीसरा निर्देश इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस तथा अन्य अधिकारियों के न्यूनतम कार्यकाल से संबंधित है। पाँचवाँ निर्देश, पुलिस स्थापना बोर्ड से जुड़ा है। इन तीनों निर्देशों में तो, अतिरिक्त समय देने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो भी कदम उठाए जाने हों, वे आज से लागू होंगे और किसी भी दशा में आज से चार सप्ताह से देरी नहीं होनी चाहिए।

हम पहले निर्देश; राज्य सुरक्षा आयोग, चौथे निर्देश; पूछताछ व कानून-व्यवस्था अलग करना; व छठा निर्देश-पुलिस शिकायत अथॉरिटी की पूर्ति के लिए 31 मार्च, 2007 तक का समय देते हैं। यदि कोई भी राज्य सरकार ने ऐसा कोई भी आयोग या अथॉरिटी बनाई है तो उन्हें भी निर्देशानुसार देखा जाएगा।

जहाँ तक राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग का प्रश्न है, हमने 2 जनवरी, 2007 का नोटिफिकेशन दिया था। यह कोर्ट के निर्देशानुसार नहीं है। केंद्र सरकार को इस कार्य के लिए भी 31 मार्च, 2007 तक का समय दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त बाकी सारी अर्जियाँ रद्द कर दी गई हैं क्योंकि हम कर चुके हैं कि आदेश में संशोधन पर विचार नहीं हो सकता।

हम सभी अधिकारियों को निर्देशों के अनुपालन का निर्देश देते हैं......' किसी भी राज्य में होने वाले चुनावों को, समय सीमा में निर्देश पूरे न करने का, आधार नहीं बनाया जाएगा।

---

1. प्रकाश सिंह व अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया व अन्य, टिट याचिका , संख्या डॉ., 1996। यह याचिका 11 जनवरी, 2007 को चीफ जस्टिस वाई. केसब्बरवाल, जस्टिस सी. के. ठक्कर व जस्टिस आर. बी. रवींद्रन द्वारा सुनी गई।
2. सभी वकील, यदि उल्लेख न किया गया हो।